# आधुनिक संस्कृत में

# यतीन्द्र विमल चौधुरी का योगदान

…रमा त्रिपाठी



21037



# आधुनिक संस्कृत में
# यतीन्द्र विमल चौधुरी का योगदान

" FORWARDED FREE OF COST WITH THE COMPLIMENTS OF RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN - NEW DELHI.

लेखक

डा० मनोरमा त्रिपाठी,

एम० ए०, पी०-एच० डी०, डी० लिट०

प्रिंसिपल, महिला महाविद्यालय, लखनऊ

प्रकाशक

भारतीय-संस्कृति-सस्थानम्

शाखा—अमीनाबाद, लखनऊ

प्रथम संस्करण १९८७

015

मूल्य रु० ५१/-

मुद्रक चन्द्रोदय मिश्र
मधुसूदन प्रेस
मदैनी, वाराणसी

# विषयानुक्रमणिका

# आमुख

आधुनिक संस्कृत-साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले कतिपय गण्यमान मनीषियों में स्व० यतीन्द्र विमल चौधुरी का नाम अग्रगण्य है। उनको और उनके कृतित्व को अर्वाचीन संस्कृत प्रेमियों के लिए प्रस्तुत करने के उदेद्श्य से यह मेरा ग्रन्थ-प्रणयन प्रवर्तित हुआ।

मेरी मान्यता है कि अतीत के महिमान्वित होने पर भी जिस साहित्य का वर्तमान सुसमृद्ध नहीं है उसका, महत्त्व क्षीण होने लगता है। हम संस्कृतज्ञ संस्कृत को अमरवाणी मानते हैं, इस दृष्टि से इस भाषा का वर्तमान स्वरूप विशेष रूप से परीक्षणीय है। इस युग में भी संस्कृत - साहित्य अनेक मनीषियों की सेवा के फलस्वरूप परिमाण तथा गुणोत्कर्ष दोनों दृष्टियों से महत्त्वशाली है। इस सत्य को प्रमाणित करने की भावना से मुझे आधुनिक साहित्य को प्रकाश में लाने की प्रेरणा मिली और इस विचारधारा के सर्वश्रेष्ठ प्रणयी और उन्नायक डा० यतीन्द्र विमल चौधुरी के कृतित्व को संस्कृत के साहित्यकारों के किए मैंने-प्रेरणा स्रोत बनाया। मेरी रूचि के अनुकूल डा० चौधुरी मुख्यतः संस्कृत नाट्यकार हैं। इन्होंने लगभग ३० नाटक और तीन काव्य लिखे। इन सबका अध्ययन करने पर उन के प्रति विशेष श्रद्धा वढती गई।

डा० चौधुरी भारतीय स्त्री-समाज के हितचिन्तको में अनन्य हैं। उन्होंने सर्वप्रथम नारी-सम्वधी विषय लेकर नई उद्भावनायें प्रस्तुत कीं। डा० चौधुरी ने अपने शोध-कार्य के द्वारा संस्कृत-कवत्रियों के कृतित्व पर प्रकाश डाला है तथा अपने नाटकों में भी आदर्श स्त्री चरित्रों को प्रमुख स्थान दिया है। यशोधरा, बिष्णुप्रिया, मीरावाई, सारदादेवी, लक्ष्मीबाई आदि सर्वकालपूज्य स्त्रीचरित्रों को उन्होंने अपनी नाट्य-कला के द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की है। इस तथ्य से इस नाट्यकार के प्रति मेरा आकर्षण प्रवलतर हो गया।

आकर्षण होने पर भी पुस्तक प्रणयन के लिए सामग्री का संकलन प्रमुख समस्या के रूप में सामने उपस्थित हुआ। यतीन्द्र विमल चौधुरी बंगाल

के प्रसिद्ध संस्कृत नाटककार थे और अपने जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने कलकत्ते में व्यतीत किया। अतएव सामग्री का संकलन करने के लिये मैं वहां गई और डा० यतीन्द्रविमल चौधुरी की पत्नी डा० रमा चौधुरी से मिली। उन्होंने सहृदयता के साथ मेरे कार्य में सहयोग देकर और मेरे आवास का प्रवन्ध करके अपनी आत्मीयता और उदारता का परिचय दिया। उनसे तथा उनके परिवार के अन्य सम्वन्धियों से मिलकर मैंने डा० चौधुरी के जीवन से सम्वन्धित सूचना प्राप्त की और तत्सम्वन्धी सामग्री संकलित की। डा० चौधुरी के निजी पुस्तकालय प्राच्यवाणी से तथा नेशनल लाइब्रेरी, रा॰ल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल संस्कृत परिषद् पुस्तकालय तथा संस्कृत-कालेज पुस्तकालय से मैंने यतीन्द्र के जीवन तथा साहित्य सम्बन्धी प्रकाशित तथा अप्रकाशित समस्त सामग्री संकलित की।

इस ग्रन्थ को मैंने ११ अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय में मैंने यतीन्द्र का जीवन-दर्शन और कृतित्व, द्वितीय अध्याय में यतीन्द्र के नाटकों का साधारण परिचय, तृतीय अध्याय में कथानक का पर्यालोचन, चतुर्थ अध्याय में चरित्र-चित्रण, पंचम अध्याय में देश-काल, षष्ठ अध्यायी में रस, सप्तम अध्याय में भाषा-शैली, अष्टम अध्याय में यतीन्द्र के काव्य, नवम अध्याय में यतीन्द्र की अनुसंधान प्रवृत्तियां, दशम अध्याय में सांस्कृतिक चेतना तथा अन्त में उपसंहार लिखा है।

इस उपक्रम में स्वर्गीय डा० यतीन्द्र विमल चौधुरी की पत्नी श्रीमती डा० रमा चौधुरी का उदात्त सहयोग सर्वोपरि है। डा० चौधुरी के मित्र श्री हेम-वन्धु नाग ने मुझे उन की जीवनी से अवगत कराया। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करती हूँ। डा० रमा चौधुरी की सखी श्रीमती दीप्ति चटर्जी के साथ रहकर मैं सरलतया अपना कार्य कर सकी। डा० रमा चौधुरी के सम्वन्धी श्री शंकरप्रसाद राय ने हस्तलिखित वंगला ग्रन्थों के पढ़ने में मेरी सहायता की।

आषाढस्य प्रथमदिवसे १९८७ ई०

मनोरमा रंजना

# समर्पण

श्रीमती रमाचौधुरी को उनकी आधुनिक
युग में संस्कृत की अत्युत्तम
सेवा के उपलक्ष में

# यतीन्द्र का जीवनवृत्त

पूर्वी बंगाल में कर्णफुली नदी के तट पर स्थित, दोनों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ चटगाँव नामक जिला है, जिसकी ऊँची-ऊँची चोटियों से बगाल की खाड़ी स्पष्टतः परिलक्षित होती है ऐसे रमणीक जिले में कधुखिल नामक समृद्ध गाँव में २ जनवरी सन् १९०८ ई० में यतीन्द्र का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम रसिकचन्द्र चौधुरी तथा माता का नाम नयनतारादेवी था। उनके पिता रसिक मास्टर के नाम से प्रसिद्ध थे। वे प्राइमरी पाठशाला के अध्यापक थे वह पाठशाला उन्होंने स्थापित की थी। उस गांव का वह प्रमुख विद्यालय था। गाँव के लोग रसिकचन्द्र को 'गुरु' कहते थे और उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

रसिकचन्द्र चौधुरी दयालु स्वभाव के थे। वे विद्यार्थियों को अपने घर पर पढ़ाया करते थे तथा निर्धन विद्यार्थियों को भोजन भी देते थे। इस प्रकार वह प्राचीन गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का अनुसरण कर रहे थे। उनके पास अपने पूर्वजों की थोड़ी सम्पत्ति थी। अपने अथक परिश्रम, धैर्य, साहस तथा उत्कट व्यक्तित्व के द्वारा उन्होंने पर्याप्त धन अर्जित किया, जिसका उपयोग उन्होंने अपने पुत्र यतीन्द्र को भारत तथा इंग्लैंड दोनों में उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिये किया।

यतीन्द्र की माता नयनतारादेवी सुन्दर स्त्री थीं। वे कोमलहृदया थीं। उनका मुख सदैव मुस्कराता-सा प्रतीत होता था। वे मृदुभाषिणी और दयालु प्रकृति की थीं। दीन-दुखियों के प्रति उनकी सहानुभूति थी। वे धार्मिक प्रवृत्ति की नारी थीं और ईश्वर के भजन-पूजन में विशेष ध्यान देती थीं। वे घण्टों बैठकर ईश्वर की उपासना किया करती थीं।

रसिकचन्द्र चौधुरी और नयनतारादेवी के तीन पुत्र और दो पुत्रियां थीं। उनके ज्येष्ठ पुत्र योगेन्द्रलाल बालावस्था से धार्मिक प्रकृति के तथा संसार से विरक्त थे। गाँव के जूनियर ट्रेनिंग कालेज से शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने अपने पिता के विद्यालय में अध्यापन किया। उनके उज्ज्वल चरित्र,

सरल वेश-भूषा और सार्वजनिक हित-भावना को देखकर गाँव के लोग उन्हें 'साधु' कहा करते थे। रसिकचन्द्र चौधुरी के द्वितीय पुत्र यतीन्द्र विमल और तृतीय पुत्र सुरेन्द्र थे। यतीन्द्र के जीवन पर अपने माता-पिता तथा बड़े भाई का प्रभाव पड़ा।

## शिक्षा-दीक्षा

यतीन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के विद्यालय में, अपने बड़े भाई की देख-रेख में हुई। वे कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। उनके पिता को संस्कृत से विशेष रुचि थी। वे घर पर भी यतीन्द्र को संस्कृत पढ़ाया करते थे। यतीन्द्र संस्कृत में उत्तरोत्तर रुचि लें, इस उद्देश्य से घर पर पढ़ाने के लिए अध्यापक की व्यवस्था थी। प्राइमरी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् यतीन्द्र ने स्थानीय हाई स्कूल में विद्याध्ययन किया। उनको संस्कृत में अधिकतम अंक प्राप्त होते थे। उनकी स्मरणशक्ति तीव्र थी। संस्कृत के प्रति अभिरुचि तथा तीव्र स्मरणशक्ति के कारण उन्हें अपनी पाठ्यपुस्तकों के सभी श्लोक कंठस्थ थे। विद्यालय में वे प्रतिभाशाली छात्र सिद्ध हुये।

सन् १९२५ ई० में यतीन्द्र ने प्रथम श्रेणी में कला-विभाग से मैट्रिक की परीक्षा उतीर्ण की। उन्होंने अनिवार्य हिन्दी, सहायक तथा अनिवार्य संस्कृत और सहायक गणित में विशेष योग्यता प्राप्त की। मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् यतीन्द्र ने प्रेसिडेन्सी कालेज, कलकत्ते में विद्याध्ययन किया। परीक्षा के कुछ दिन पूर्व अस्वस्थ हो जाने के कारण वे सुचारु रूप से अध्ययन नहीं कर सके। फलतः मेधावी होने पर भी उन्होंने इण्टरमीडियट परीक्षा में द्वितीय श्रेणी प्राप्त की। सन् १९२७ ई० में इण्टरमीडियट परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने १९२९ ई० में उसी कालेज से संस्कृत में आनर्स लेकर बी० ए० परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् वे दिल्ली-केन्द्र से इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठे किन्तु सफल नहीं हुये।

सन् १९२९ ई० में यतीन्द्र ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत विषय लेकर एम० ए० में अध्ययन प्रारम्भ किया। कुछ समय पश्चात वे पी=एच० डी० उपाधि हेतु अनुसंधान कार्य करने के लिये लंदन विश्वविद्यालय चले गये। उनकी इस लंदन-यात्रा पर उनके मित्र तथा संबंधी आश्चर्यचकित हो गये कि मध्यम परिवार के यतीन्द्र उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये विदेश किस प्रकार जा रहे हैं। यतीन्द्र अपने ही व्यय से विदेश जा रहे थे। उनके

पिता इतने धनाढ्य नहीं थे कि सरलता से इतना व्यय वहन कर सकते किन्तु यतीन्द्र की लगन देखकर उन्होंने उनको लंदन विश्वविद्यालय भेजा।

सन् १६२६ ई० में लंदन विश्वविद्यालय में प्रवेश करके यतीन्द्र ने निष्ठा-पूर्वक अध्ययन करके सन् १६३४ ई० में संस्कृत में अनुसंधान कार्य करके 'वैदिक-धार्मिक-कृत्यों में स्त्रियों की स्थिति'[1] पर शोध प्रबन्ध लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। अपनी विशेष योग्यता तथा प्रखर प्रतिभा के कारण लंदन विश्वविद्यालय में संस्कृत प्राध्यापक के पद पर तथा 'इण्डिया आफिस लायब्रेरी' लंदन में संस्कृत तथा पालि विभाग के अध्यक्ष के पद पर उनकी नियुक्ति हो गई। इन पदों पर वे सन् १६२६ ई० से सन् १६३७ ई० तक काम करते रहे।

## विवाह

यतीन्द्र का विवाह कलकत्ते में १६ फरवरी सन् १६३८ ई० में सुधांशु मोहन बोस, सेक्रेटरी पब्लिक सर्विस कमीशन, पश्चिमी बंगाल की पुत्री डा० रमा बोस, एम० ए०, डी० फिल० के साथ सम्पन्न हुआ। जिस समय यतीन्द्र लंदन विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक तथा इंडिया-आफिस-लायब्रेरी लंदन में संस्कृत-पालि विभाग के अध्यक्ष थे, उस समय कु० रमा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र में अनुसंधान कर रही थीं। उन्होंने सन् १६३७ ई० में डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त की। इन दोनों के भारत आने पर रमा के निवास—३, फैडरेशन, स्ट्रीट, कलकत्ता - ६ में ब्राह्म-रीति से इनका विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के अवसर पर नव-दम्पती ने मन्त्रोच्चारण किये। यतीन्द्र ने संस्कृत भाषा में तथा रमा ने बंगला भाषा में मंत्रों का पाठ किया।

## वृत्ति

इंग्लैण्ड से लौटने के पश्चात् यतीन्द्र सर्वप्रथम कलकत्ते में पश्चिमी बंगाल की सरकार द्वारा निर्मित 'संस्कृत-शिक्षा-समिति' के सेक्रेटरी नियुक्त हुये। कालान्तर में वे 'संस्कृत-शिक्षा-बोर्ड, भारतीय सरकार'[2] के बंगाल के प्रतिनिधि नियुक्त हुये।

---

1. Women in Vedic Ritual.
2. Board of Sanskrit Education, Govt. of India.

फिर वे पश्चिमी बंगाल की सरकार द्वारा निर्मित 'वंगीय-संस्कृत-शिक्षा-परिषद्' के सेक्रेटरी नियुक्त हुये। उपर्युक्त तीन महत्त्वपूर्ण पदों पर पश्चिमी बंगाल की सरकार ने यतीन्द्र को नियुक्त किया।

यतीन्द्र कलकत्ते में संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य रहे। वे प्रेसिडेन्सी कालेज कलकत्ते में संस्कृत-विभाग के प्राध्यापक तथा कुछ वर्षों के पश्चात् अध्यक्ष हुये।

## संस्थाओं से सम्बन्ध

यतीन्द्र बंगाल की प्रमुख धार्मिक संस्थाओं से संबन्धित थे। वे 'रामकृष्ण मिशन, इन्स्टीट्यूट आफ कल्चर,' दक्षिणेश्वर तथा बेलूर मठ आदि स्थानों पर जाते और भाषण देते थे। वे रामकृष्ण परमहंस तथा माता शारदामणि के परम भक्त थे। उनसे संबधित सभी संस्थाओं में वे भाग लेते थे। इन संस्थाओं में कार्य के अतिरिक्त 'प्राच्य वाणी' संस्था की स्थापना उन्होंने की।

## व्यक्तियों से सम्बन्ध :

यतीन्द्र का अपने विद्यार्थी जीवन में कतिपय उन सहपाठियों से घनिष्ठ सम्बन्ध था, जो विभिन्न राजनीतिक आन्दोलनों में भाग ले रहे थे। हेमबन्धुनाग, सूर्यसेन, अम्बिका चक्रवर्ती आदि इनके ऐसे प्रमुख मित्र थे। राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण सूर्यसेन को ब्रिटिश शासन ने फांसी दे दी थी।

जिस समय यतीन्द्र कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यक्ष पद पर नियुक्त थे, उस समय दिल्ली के प्रमुख विद्वान् हुमायूं कबीर, डा० कृष्णदत्त भारद्वाज, डा० प्रभाकर माचवे, अमर नन्दी, संजाव रेड्डी तथा मधुसूदन नन्दो से उनके घनिष्ठ संबंध थे।

## पारिवारिक सम्बन्ध

यतीन्द्र के पिता संस्कृत के विद्वान् थे। यतीन्द्र का संस्कृत के प्रति अनुराग देखकर उन्होंने उनके लिये विद्यार्थी काल में जगत्चन्द्र स्मृति तीर्थ नामक संस्कृत के अध्यापक की व्यवस्था की। यतीन्द्र के पिता ने अपनी

सामर्थ्य न होते हुये भी उनको लंदन भेजा। उनकी मृत्यु ८१ वर्ष की अवस्था में चट्टगांव में हुई।

यतीन्द्र की माता गुणवती, स्नेहमयी, पतिव्रता तथा धर्मपरायण महिला थीं। यतीन्द्र के हृदय में धार्मिक संस्कार उत्पन्न करने में उनकी माता का हाथ था। वे दानी प्रवृत्ति की थीं तथा दीन-दुखियों की सहायता करने के लिये निरन्तर तत्पर रहती थीं। ये समस्त गुण यतीन्द्र में पूर्णरूपेण विद्यमान थे।

यतीन्द्र के बड़े भाई योगेन्द्रलाल धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। यतीन्द्र के धार्मिक जीवन को बनाने में उनकी माँ और बड़े भाई का हाथ था। योगेन्द्रलाल ने युवावस्था में ही संन्यास ग्रहण कर लिया।

यतीन्द्र की पत्नी डा० रमा चौधुरी योग्य तथा सुशिक्षिता हैं। वे प्रखर बुद्धि की हैं। पति की अभ्युन्नति में उनका सहयोग रहा है। वे संस्कृत तथा दर्शन की श्रेष्ठ लेखिका हैं। भारत में संस्कृत का प्रसार करने के लिये वे अपने पति के समान अथक प्रयास कर रही हैं। उनके संचालन में यतीन्द्र के नाटकों का अभिनय भारत के विभिन्न नगरों में सफलता पूर्वक हो रहा है। अनेक वर्ष तक वे 'लेडीब्रेवोर्न कालेज' कलकत्ते में प्रधानाचार्या के पद पर आसीन रहीं हैं। ये आदर्श दम्पती विद्वत्समाज और जन-साधारण में 'वशिष्ठारुन्धती,' 'याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी,' 'मण्डनमिश्रोभयभारती' आदि नामों से प्रसिद्ध थे।[१]

यतीन्द्र अपने गुरुवर्ग पर श्रद्धा रखते थे। इतने सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी वे अपने प्रथम गुरु का आजीवन आदर करते रहे। एक बार कलकत्ते में संस्कृत विद्वानों की विशाल-सभा में वे अपने प्रथम विद्या गुरु को लाये और उनको सम्मानित किया। यतीन्द्र डा० सातकड़ि मुखोपाध्याय के प्रिय शिष्य थे। यतीन्द्र के जीवन पर उनका प्रभाव पड़ा। यतीन्द्र का विद्यार्थी काल में अपने सहाध्यायियों तथा अध्यापन काल में अपने शिष्यों तथा अध्यापक वर्ग के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा।

यतीन्द्र में लक्ष्मी और सरस्वती का सामरस्य था। उन्हें साहित्यिक क्षेत्र में आर्थिक कष्ट का कभी सामना न करना पड़ा। तत्कालीन सरकार ने उनकी सभी कृतियों का मूल्यांकन किया। उनको लगभग सभी ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये सरकारी सहायता प्राप्त हुई।

---

१. पाटलश्रीः, पृष्ठ १२

यतीन्द्र जीवन-पर्यन्त कभी रुग्ण नहीं हुये। उनकी अन्तिम रुग्णावस्था ही उनकी मृत्यु थी। ९ जुलाई सन् १९६४ ई० में सन्ध्या के समय वे यूनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट हाल में स्वामी विवेकानन्द की जन्मशती पर भाषण दे रहे थे। भाषण समाप्त करने के पश्चात् वे एकाएक हृत्पीड़ा से आक्रान्त हो गये। उनको तत्काल अस्पताल ले जाया गया। चिकित्सकों के प्रयास करने पर भी उनकी अवस्था में सुधार नहीं हुआ। दूसरे दिन १० जुलाई सन् १९६४ ई० को अस्पताल में माँ सारदामणि का नाम लेते-लेते उनकी मृत्यु हो गई। उस समय उनकी अवस्था केवल ५६ वर्ष की थी। उनके मरने पर भारत के अनेक मनीषियों ने उनके उदात्त व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुये संवेदना प्रकट की।

यतीन्द्र अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण संस्कृत साहित्य-क्षेत्र में विख्यात हुये। उनके व्यक्तित्व के बाह्य तथा आन्तरिक दोनों रूप आकर्षक थे। उनके व्यक्तित्व की सबसे बढ़ी विशेषता थी कि संसार का कोई भी प्रलोभन उनको अपने पथ से नहीं डिगा सका। दूसरी विशेषता यह थी कि वे अजातशत्रु थे। प्रायः देखा गया है कि जैसे-जैसे व्यक्ति उन्नति करता है, उनके प्रतिद्वन्द्वियों की संख्या में वृद्धि होती जाती है। यतीन्द्र इसके अपवाद थे। साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक किसी क्षेत्र में उनका कोई शत्रु नहीं था। डा० सातकड़ि मुखोपाध्याय ने उन्हें ऋषिकवि' के नाम से अभिहित किया[१]।

यतीन्द्र का शरीर सुडौल तथा आकृति शोभनीय थी। उनकी लंबाई ५ फुट ६ इंच थी। उनका श्वेत वर्ण था। उनका मस्तक विशाल था।

यतीन्द्र अपने विद्यार्थी जीवन में तथा लंदन में जब वे प्राध्यापक थे कोट-पैण्ट पहनते तथा अभिरुचि-सम्पन्न युवक की भांति टाई बांधते थे। उनकी वेशभूषा पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थी किन्तु जब वे भारत लौटे और संस्कृत का प्रचार अपने हाथ में लिया तब से उन्होंने विदेशी वेश-भूषा का परित्याग कर दिया और संस्कृत के पंडितों की भांति धोती और कुर्ता पहनना प्रारंभ किया। सभाओं में जाते समय वे ऊपर से एक शाल कन्धे पर डाला करते थे। वे सरल जीवन उच्च विचार के मानने वाले थे।

---

१. पाटलश्री : पृष्ठ १२

संस्कृत-साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण करने के पश्चात् यतीन्द्र की भोजन विधि में परिवर्तन हुआ। प्रारम्भ में वे आमिषाहारी थे किन्तु लंदन से लौटने के पश्चात् उन्होंने आमिषाहार छोड़ दिया। वे सादा भोजन ग्रहण करने लगे।

यद्यपि यतीन्द्र विनोदप्रिय स्वभाव के अवश्य थे तथापि वे अनुशासन-प्रिय थे। उनका कथन था कि प्रत्येक कार्य के संचालन के लिये अनुशासन की आवश्यकता है। वे समयपरायण थे तथा प्रत्येक कार्य में अनुशासन तथा व्यवस्था का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे।

यतीन्द्र भावुक थे। कभी-कभी जननी की स्तुति करते-करते वे इतने भक्तिविभोर हो जाते थे कि रोने लगते थे। दूसरों के दुःख को वे देख नहीं सकते थे और यथाशक्ति उनकी सहायता करते थे।

यतीन्द्र निर्भीक स्वभाव के थे। विनम्र होने पर भी उनमें स्पष्ट-वादिता थी। लंदन में रहने पर आंग्ल सत्ता के आधिपत्य में कार्य करने पर भी वे भारतीयों के हित का पक्ष निर्भीकता और स्पष्टवादिता से लेते थे। यह प्रवृत्ति उनमें आजीवन विद्यमान रही। धन तथा प्रतिष्ठा ने उनको कभी सन्मार्ग से विचलित नहीं किया। सत्ता और सम्पत्ति की उन्होने कभी चिन्ता न की।

यतीन्द्र विनीत थे। 'विद्या ददाति विनयम्' का सिद्धान्त उन्होंने सदैव अपने जीवन में अपनाया। उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करने पर भी उनको तनिक भी अहंकार नहीं था। लंदन से विद्याध्ययन करके जब वे कलकत्ते आये तो उनकी धात्री उनसे मिलने आई। उन्होंने उठकर तत्काल उसके चरण छुये। कलकत्ते में जब वे वर्गीय-संस्कृत शिक्षा समिति के सेक्रेटरी तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष थे तो उन्होंने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया था कि कोई भी व्यक्ति किसी भी समय मुझसे मिल सकता है।

यतीन्द्र उदार व्यक्ति थे। सभी कर्मचारियों के प्रति उनका सहानु-भूतिपूर्ण व्यवहार था। कार्यालय के पश्चात् उनके कर्मचारी अपनी पारिवारिक समस्याओं को लेकर उनके पास आते थे। यतीन्द्र यथासाध्य उनकी समस्याओं को दूर करने का प्रयास करते थे और उनकी समस्याओं में हाथ बटाते थे। वे कर्मचारियों की कन्याओं के विवाह में यथाशक्ति धन देते थे।

यतीन्द्र खेल-कूद के प्रेमी थे। यद्यापि वे स्वयं बहुत अच्छे खिलाड़ी नहीं थे, किन्तु खिलाड़ियों से उनको प्रेम था। उन्होंने अपने जिले में एक फुटबाल प्रतियोगिता प्रारम्भ की और उसके लिए अपने पिता के नाम से 'रसिकचन्द्र शील्ड' दान में दिया। वह प्रतियोगिता उनके गांव में हुआ करती थी। गांव के बाहर से आने वाले प्रतियोगियों के भोजन की व्यवस्था यतीन्द्र के व्यय से उनके घर पर होती थी।

यतीन्द्र बाल्य से धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। अपनी माता और बड़े भाई के प्रभाव से उनकी धार्मिक भावनायें और अधिक प्रबल हो गई थीं प्रायः चंडीमण्डप में जाकर कई घण्टों तक बैठे रहते थे। वे साधना में मग्न हो जाते और मन्त्र गा-गाकर ईश्वर-स्तुति किया करते थे। धार्मिक साहित्य के अध्ययन में उनकी रुचि थी। वे सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे।[१] वे माता सारदामणि की तन्मयता से साधना किया करते थे। कभी-कभी तो वे इतने ध्यान-मग्न हो जाते थे कि उनको अपनी पत्नी तथा अन्य उपस्थित लोगों की उपस्थिति का ज्ञान नहीं रहता था। वे पढ़ते-पढ़ते तीव्र स्वर में ओ मां ! चिल्लाने लगते थे।

यतीन्द्र संसार से विरक्त थे। विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहने पर भी वे विरक्त व्यक्ति के सदृश जीवन बिताते। लोगों से वार्तालाप करते-करते कभी-कभी वे भावपूर्ण मुद्रा से युक्त हो जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी अज्ञात प्रेरणा से प्रेरित होकर वे उसी के ध्यान में मग्न हों।

---

1. "The Late Dr. Chaudhuri was a man of deep and wide sympathies and was a great lover of all religions. He believed that faith is essential for human survival. Prof. Chaudhuri also believed that any living culture must be deeply rooted in faith. There are many divergent values in culture, but the aim of all cultures, is to establish inner harmony of the individual and harmony among individuals."

Hamayun Kabir
Ex-Minister, India Govt.

## अध्ययन

यतीन्द्र की अध्ययन में अभिरुचि थी। अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला तथा पालि-प्राकृत साहित्य में उनका बृहत् अध्ययन था। दशन शास्त्र से उन्हें प्रेम था।

## संगीत तथा अभिनय

यतीन्द्र संगीत के अनन्य उपासक थे। वे अभिनय के शौकीन थे। वे चैत्र संक्रान्ति के कुछ दिन पूर्व बंगाल में वाद्यकर हरगौरी, कालीनृत्य आदि से सम्बन्धित नाटक जा-जाकर शहरों में दिखाया करते थे। यतीन्द्र इनसे आकृष्ट होकर उनके पीछे-पीछे चलते थे तथा उसमें भाग भी लेते थे। इस रुचि के कारण कभी-कभी उनको विद्यालय जाने में बिलम्ब हो जाता था किन्तु अपना पाठ याद करने में वे कभी नहीं चूकते थे। अतः अध्यापकों के क्रोध के पात्र नहीं बनते थे। उनके बालकाल की यह रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। यह रुचि उनके नाटकों में प्रतिबिम्बित होती है। उनके नाटक अभिनेय हैं और उनका अभिनय उन्होंने भी किया।

## संस्कृत-प्रेमी

यतीन्द्र संस्कृत भाषा के अनन्य प्रेमी तथा श्रेष्ठ समर्थक थे। न केवल इस देश में अपितु विदेशों में भी उन्होंने संस्कृत की प्रतिष्ठा स्थापित की। संस्कृत पंडितों की दुर्दशा को देखकर उन्हें बहुत दुःख होता था। उन्होंने बंगाल के अनेक पंडितों को बुलाकर अपने यहां आश्रय दिया और उनको सरकारी नौकरियां दिलाने में सहायता पहुँचाई। उनके आकस्मिक निधन से पंडित-

---

2. Dr. Chaudhuri captures exceedingly India's ancient message of renunciation and sacrifice for a greater love than the love of this world, as only then can one approach this world and its way with detachment. It is not until man has cultivated such love that he can live a life of use to others and progress towards his own salvation.

Humayun Kabir
Ex. Minister, India Govt.

समाज को गहरा आघात पहुँचा[1]।

यतीन्द्र को संस्कृत से जन्मजात प्रेम था। इस प्रेम को विकसित करने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ। उनके बड़े भाई जब संस्कृत मंत्रों का गान किया करते थे तब वे बड़े ध्यान से सुना करते थे। बालावस्था में उनके परिवार के जब अन्य बच्चे खेलने जाते थे, उस समय यतीन्द्र चंडीमंडप में जाकर पुजारी के द्वारा पूजा करते समय गाये जाते हुए संस्कृत मंत्रों को बड़े ध्यान से सुनते थे और घर आकर अभ्यास करते थे। विद्यालय में उनको अन्य विषयों की अपेक्षा संस्कृत से विशेष अनुराग था।

यतीन्द्र जब इण्टरमीडियट कक्षा में अध्ययन कर रहे थे, उस समय ऐच्छिक विषयों में से अंकगणित तथा संस्कृत भी थे। छात्रावास के सुपरिण्टेन्डेन्ट को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यतीन्द्र पाठ्यक्रम से अतिरिक्त संस्कृत की पुस्तकों का अध्ययन कर रहे थे।

यतीन्द्र अपने माता-पिता के आग्रह पर इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए विदेश गये, परन्तु उनकी इच्छा थी कि वे उक्त परीक्षा में न बैठकर संस्कृत के उच्च साहित्य का अध्ययन करें। इस बलवती इच्छा के कारण वे इण्डिया आफिस लायब्रेरी में उपलब्ध संस्कृत पुस्तकों के अध्ययन में व्यस्त रहने लगे। परिणामस्वरूप वे उक्त परीक्षा में सफल नहीं हो सके।

कलकत्ते में यतीन्द्र अपने घर के सभी सदस्यों को संस्कृत पढ़ाया करते थे। संस्कृत के श्लोक गाते समय वे परिवार के लोगों के साथ अपनी प्यारी बिल्ली कावरी को भी अपने पास बिठाया करते थे। वे अपने घर के सेवक गजेन्द्रप्रसाद को संस्कृत के प्रार्थना के श्लोक सिखाते थे। एक दिन जब उसने थककर कहा—दादा बाबू! हमें संस्कृत समझ में नहीं आती तो उन्होंने उत्तर दिया कि जिस घर के कुत्ते, बिल्ली भी संस्कृत प्रेमी हैं, वहां

1. "The Pandit Samaj of Bengal is fatherless to-day His absence will be keenly felt by the pioneers of the preaching of sanskrit language in Bengal, may in India. His mission was like that of Swami Vivekananda."

Jitendra Nath Shastri
( Sarojini chatuspati )

तुम मनुष्य होकर भी संस्कृत नहीं सीख सकते ? उनकी इस उक्ति से वह लज्जित हुआ और उसने प्रार्थना के श्लोक याद कर लिये। ये सब उदाहरण उनके संस्कृत के प्रति प्रगाढ प्रेम के परिचायक हैं। यतीन्द्र तथा उनकी पत्नी ने विभिन्न प्रकार से 'कथाकत्ता' 'रात्रिपाठशाला' तथा सन्ध्याकालीन कक्षायें चलाकर संस्कृत पढ़ाने की व्यवस्था की। उन्होंने संस्कृत में भाषण, वाद-विवाद प्रतियोगिता कराकर और छात्र-छात्राओं को पारितोषिक वितरण करके उनको प्रोत्साहित करके संस्कृत का प्रचार किया। संस्कृत विद्वानों के सम्मानार्थ राजकीय भवन में सभायें अयोजित की[1]।

यतीन्द्र ने बच्चों को भी संस्कृत पढ़ाने का प्रयत्न किया। बालोपयोगी संस्कृत लिपि शिक्षा की रचना कर यतीन्द्र ने संस्कृत को बच्चों के लिये सुलभ और आकर्षक बनाया।

बंगाल की गर्वनर पद्मजा नायडू ने अपने एक संदेश में लिखा है कि संस्कृत के प्रचार तथा संस्कृत साहित्य की बृद्धि के लिए डा० चौधुरी ने जो निःस्वार्थ और अनिश प्रयास किया है, उसको भारतवासी कभी नहीं भूल सकते।

पश्चिमी बंगाल के भूतपूर्व शिक्षा मंत्री राय हरेन्द्रनाथ चौधुरी ने लिखा है कि डा० चौधुरी न केवल संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् थे वरं उन्होंने जनता की रुचि संस्कृत भाषा और साहित्य की ओर प्रखर करने के लिये अद्भुत प्रयत्न किये। श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य किसी भी साहित्य तथा भाषा के प्रसार के लिये अधिक उपयोगी हैं। इस कारण उन्होंने संस्कृत का प्रसार अपने नाटकों के अभिनय द्वारा किया।

---

1. "Fourteen years ago when he was placeed at the head of Sanskit learning by the then Govt. of undivided Bengal as the secretary of Govt. Bengal Sanskrit Association, the whole Pandit Samaj of India, specially of Bengal hailed him, because even as early as 1944, he was along with his learned wife.........was trying very hard for the propogation of Sanskrit learning in every possible way Kethakata, Night Schools, Evening classes, Debates, Award of Prizes, holding meetings for honouring Sanskrit poets in Govt. House, Staging of Sanskrit dramas frequently and so on and so forth."
श्री डा० अमेश्वर ठाकुर : निष्किंचन-यशोधरम्, भूमिका, पृष्ठ ११

तुम मनुष्य होकर भी संस्कृत नहीं सीख सकते।

यतीन्द्र ने कलकत्ते में संस्कृत विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिये विशेष प्रयास किया किन्तु उनका यह स्वप्न उनके जीवनकाल में साकार न हो सका। आज पश्चिमी बंगाल में संस्कृत विश्वविद्यालय बन रहा है। पश्चिमवंगप्रदेशे एकस्य पूर्णांगविश्वविद्यालयस्य स्थापनमासीद् यतीन्द्र-विमलस्य जीवनस्वप्नः। एतदर्थं तेन दीर्घ-दीर्घान् त्रिशद् वर्षान् निरवच्छिन्ना निरलसा च साधना कृता। अथ तस्य स्वप्नः सफलो भवितुं क्रमेत। हन्त ! यज्ञं सम्पूर्णं कृत्वा होताऽयं प्रस्थितः।[१] उनको आधुनिक संस्कृत साहित्य का भगीरथ कहा जा सकता है।

## भाषण क्षमता

यतीन्द्र में अद्भुत भाषण क्षमता थी। वे संस्कृत अंग्रेजी तथा बंगला भाषा में निरन्तर कई घण्टों तक धाराप्रवाह भाषण दे सकते थे।

## जीवन-दर्शन

यतीन्द्र विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन-दर्शन से प्रभावित थे। उनका कथन था कि सफलता का मार्ग कांटों से भरा हुआ है, किन्तु सफलता कांटों की पीडा को मधुर बना देती है।

आमार सकल कांटा धन्य करे फुटवे गो फुल फुटवे।
आमार सकल व्यथा रंगीन होय गुलाब होय उठवे॥

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा लिखी हुई उपर्युक्त पंक्तियों को उन्होंने अपने जीवन का आदर्श बनाया। जब वे विद्यालय में पढ़ते थे, उस समय उनकी प्रत्येक पुस्तक तथा अभ्यासपुस्तिका के प्रत्येक पन्ने पर ये पंक्तियां लिखी हुई थीं।

यतीन्द्र कविवर पन्त की उक्ति 'सुख दुःख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरण' के समर्थक थे। उनका कथन था कि दुःख के बिना सुख का कोई अस्तित्व नही है। जब तक मनुष्य दुःख का भोग नहीं करता, वह सुख का आनंद नहीं उठा सकता। सिद्धार्थ के यशोधरा से कहे गये कथन में 'जगति दुःखं बिना सुखं न लभ्यते'[२] में यह पूर्णतया प्रतिलक्षित होती है।

---

१. 'ऋषिकवियंतीन्द्रः' डा० सातकड़ि मुखोपाध्यायः पाटलश्री, जनवरी १९६७, पृष्ठ १५

२. निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ २२

यतीन्द्र जननी के परम भक्त थे। जननी जन्मभूमि और विश्वजननी की पूजा उन्होंने श्रेष्ठतम पूजा मानी है। उन्होंने लिखा है—

अस्माकं श्रेष्ठतमा पूजा मातृपूजा, जगज्जनन्याः पूजा देशजनन्याः पूजा सह च स्वीयजनन्या गर्भधारिण्याः पूजाः।[१]

उपर्युक्त भावना यतीन्द्र के सभी नाटकों में प्रतिलक्षित होती है। 'इसीलिये उन्होंने त्रेतायुग में उत्पन्न जगज्जननी सीता का द्वापर युग में अवतीर्ण विश्वजननी का श्री राधा का कलियुगपावनी जगदम्बिका श्री यशोधरा का गौरप्रभु मनोहारिणी श्री विष्णुप्रिया का तथा वर्तमान युगाधिष्ठात्री श्री सारदामणि देवी के जीवन चरित का आलम्बन लेकर मातृपंच की जगज्जननी और संस्कृत-जननी की सेवा में मन लगाया[२]।'

'मातृ' शब्द को वे 'कोष' के सभी शब्दों से महत्त्वपूर्ण मानते थे। इसकी व्याख्या करते हुये उन्होंने लिखा है—

अमृतमथितं सागरजननं मातरि निहितं तुलनाहीनम्।
'मा' क्षरकथनं कल्मषदहनं 'तृ' सदा भवाब्धि-तरणो-तरणम् ।।१।२५।।

—भारतविवेकम्, प्र० ४१

माता की महिमा का गान करते हुये यतीन्द्र ने 'श्री श्री मातृलीलातत्त्व' की रचना की। माता की महत्ता के विषय में उन्होंने लिखा है कि पृथ्वी पर प्राणी धन्य हैं। उनमें भी मनुष्य धन्य हैं। मनुष्यों में भी नारी धन्य हैं और उनमें भी मातायें धन्य हैं।[३]

---

१. मुक्तिसारदम्, पृष्ठ ४१ ( प्र० पा० )

२. नि० यशो० पृष्ठ ८

एतदर्थमेव त्रेताजाताया जगज्जनन्याः सीतायाः द्वापरयुगावतीर्णायाः विश्वजनन्याः श्रीराधायाः कलियुगपाविन्या जगदम्बिकाया यशोधरायाः गौरप्रभुमनोहारिण्याः श्री श्री विष्णुप्रियाया वर्तमानयुगाधिष्ठात्र्या श्री सारदामणिदेव्याश्च जीवनचरितान्यवलम्ब्य मातृपंचकतत्त्वपरिवेशनमूलिकायां देशसेवायां संस्कृतजननी सेवायां च मनो न्यवेशयत्।

नि०-यशोधरम् : आशीर्वाणी—हरिदासः सिद्धान्तवागीशशर्मणः, पृष्ठ ८

३. निष्किंचन यशोधरम्, पृष्ठ ४

यतीन्द्र का कथन था कि नारियों के कारण हमारी भारतीय सभ्यता शाश्वत है।[१] नारी के प्रति उनका आदर था। उनके प्रति वे आदर की भावना व्यक्त करते हुये लिखते हैं कि नारी कुल को, समाज को और विश्व का आभूषण है। संसार में नारी पुरुषों के लिए परम शरण हैं।[२]

यतीन्द्र नारी-प्रगति के समर्थक थे। स्त्रियों का अवगुण्ठन धारण करना उनको अभीष्ट नहीं था। उनका कथन था कि देश को सुदृढ बनाने के लिये स्त्री तथा पुरुष दोनों का उन्नत होना अनिवार्य है।

यतीन्द्र की ईश्वर में दृढ आस्था थी। वे प्राणियों की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना और सर्वश्रेष्ठ धर्म समझते थे।[३] किसी भी कार्य के सम्पन्न होने में वे भगवान् की इच्छा ही बलीयसी मानते थे।[४] उनका कथन था कि भगवत्प्राप्ति ज्ञान तथा तर्क से नहीं होती, किन्तु प्रेम और विश्वास उसके साधन हैं।

यतीन्द्र ऊँच नीच छुवाछूत आदि के विरोधी थे। उनकी दृष्टि में सृष्टि में उत्पन्न हुये सभी प्राणी एक समान हैं। वे विश्व-बन्धुत्व की भावना के पक्षपाती थे। उन्होंने लिखा है कि भारत में निवास करने वाले तथा अन्य देशों के निवासियों में कोई अन्तर नहीं है। सभी भगवान् की संतान है[५]।

यतीन्द्र साम्प्रदायिकता के विरोधी थे। हिन्दू मुसलमान, सिख और ईसाई सभी को समान समझते थे। उनका कोई शत्रु न था[६]।

मेलनतीर्थभारतम् में अशोक के द्वारा कहे हुये कथन में उनकी विश्व-बन्धुत्व की भावना दृष्टिगोचर होती है—

राज्यं मम न भारतवर्षं सीमाबद्धम्। मम राज्यं निखिलजगद्व्यापि। मानवमात्रं मम मातृस्थानमाधत्ते, प्राणिमात्रं शाश्वतस्नेहममत्वस्थानम्[७]।

विवाह के सम्बंध में यतीन्द्र की धारणा थी कि परस्पर अनुकूल आचरण करने वाले व्यक्तियों को दम्पति कह सकते हैं, केवल पाणिग्रहण या सप्तपदी से वे दम्पती नहीं होते—

---

१. निष्किंचन यशोधरम्, पृष्ठ ४
२. प्रीति विष्णुप्रियम्, पृष्ठ १६
३. शक्ति-सारदम्, पृष्ठ ४२
४. भारत-जनकम् पृष्ठ ६
५. भारत-जनकम् पृष्ठ १०
६. ,, ,, पृष्ठ २६
७. मेलनतीर्थ-भारतम्, पृष्ठ १४

पतिर्न पाणिग्रहमात्रती भवेज् जाया न जायेत च सप्तभिः पदैः ।
परस्परं यावनुकूलचारिणी तौ दम्पती तौ च सुखाकरौ भुवि[१] ॥१३॥

यतीन्द्र का कथन था कि जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये मानव-मन का प्रबल होना आवश्यक है । मनुष्य मन में जो विचार करता है अपने कार्यों द्वारा उसको साकार रूप देता है—

मन एव सोपानम् । मन एव झटिकावर्तै । मन एव गुरुः । मन एव विघ्नः । सर्वं मनस्येव । तस्मात् सर्वाग्रे मन एव स्थिरीकरणीयम्[२] ।

यतीन्द्र ईश्वर भक्त थे । भक्ति-सुख को संसार का सर्वोत्कृष्ट सुख मानते थे—

भक्तिसुखं सुखान्मुक्तेः सर्वथा हि विशिष्यते,
भक्ता मुक्तिं न वांछन्ति भक्तेस्तेषां हि याचनम्[३] ।

## कृतित्व

भारत में विद्याध्ययन करके सन् १९२९ ई० में यतीन्द्र उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये लंदन गये । एम० ए० की उपाधि के लिये उन्होंने सन् १९२९ में वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति[४] नामक शोध-प्रबन्ध लिखा । तदनन्तर शोध-कार्य में रत रहते हुये उन्होंने सन् १९३४ ई० में वैदिक धार्मिक कृतियों में स्त्रिया[५] नामक शोध-प्रबन्ध लिखकर पी-एच डी० की उपाधि प्राप्त की । यतीन्द्र सन् १९३३ ई० से १९३७ ई० तक लंदन विश्वविद्यालय में संस्कृत प्राध्यापक रहे । पी-एच० डी० करने के पश्चात् वे इंडिया आफिस लायब्रेरी लंदन में संस्कृत तथा पालि विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुये । सन् १९३४ से १९३७ ई० तक उन्होंने इस पद पर कार्य किया ।

सन् १९३७ ई० में यतीन्द्र भारत आये । सन् १९३९-४१ ई० तक उन्होंने सिटी कालेज कलकत्ते में अध्यापन किया । सन् १९४०-४१ ई० में वे प्रेसिडेन्सी कालेज कलकत्ते में संस्कृत विभाग के प्राध्यापक रहे । सन्

---

१.२ शक्ति-सारदम्, पृष्ठ ५, १९
३. महा० हरि, ,, १४
4. Position of Women in Vedic Age.
5. Women in Vedic Ritual.

१९४२ ई० से १९४९ तक उसी कालेज में उन्होंने संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद को समलंकृत किया। सन् १९४७ से १९४९ ई० तक वे संस्कृत कालेज, कलकत्ते में प्रिंसिपल रहे। सन् १९४९-१९६४ ई० तक वे वंगीय संस्कृत शिक्षा परिषद् के सेक्रेटरी-पद पर आसीन रहे। सन् १९६२ ई० में यतीन्द्र सेन्ट्रल संस्कृत बोर्ड भारत सरकार के सदस्य रहे। सन् १९४९ ई० से सन् १९६४ ई० तक वे संस्कृत बोर्ड पश्चिमी बंगाल की सरकार के सेक्रेटरी रहे। सन् १९४३ ई० में उन्होंने प्राच्यवाणी नामक प्राच्यगवेषणागार की स्थापना की और वे उसके सेक्रेटरी नियुक्त हुए।

सन् १९३९ ई० से यतीन्द्र ने लेखन का कार्य सुश्लिष्ट विधि से आरंभ किया। इस क्षेत्र में उनकी कृतियों को चार कोटियों में विभाजित कर सकते हैं—(१) मौलिक ग्रन्थ (२) शोध ग्रन्थ (३) सम्पादित ग्रन्थ, (४) आंग्ल भाषा से रूपान्तरित नाटक।

मौलिक ग्रन्थों के अन्तर्गत उनके संस्कृत-नाटक, पालि-नाटक, काव्य तथा स्फुट रचनायें आती हैं।

## संस्कृत नाटक

यतीन्द्र के नाटक प्रकाशन के अनुक्रम से नीचे लिखे हैं—

| | | |
|---|---|---|
| (१) स्वप्न-रघुवंशम् | —रचना काल | सन् १९५६ ई०[1] |
| (२) प्रीति-विष्णुप्रियम् | —प्रकाशन | सन् १९५६ ई० |
| (३) भक्ति-विष्णुप्रियम् | ,, | सन् १९६० ई० |
| (४) निष्किंचन-यशोधरम् | ,, | सन् १९६० ई० |
| (५) शक्ति-सारदम् | ,, | सन् १९६० ई० |
| (६) महाप्रभु-हरिदासम् | ,, | सन् १९६० ई० |
| (७) महिममय-भारतम् | ,, | सन् १९६१ ई० |
| (८) भारत-हृदयारविन्दम् | ,, | सन् १९६१ ई० |
| (९) भास्करोदयम् | ,, | सन् १९६१ ई० |
| (१०) आनन्दराधम् | ,, | सन् १९६२ ई० |

१. स्वप्न-रघुवंशम्-यतीन्द्र का सर्वप्रथम नाटक है, किन्तु इसका प्रकाशन नहीं हो सका।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ( ११ ) | दीनदास-रघुनाथम् | ,, | १९६२ ई० |
| ( १२ ) | विमल-यतीन्द्रम् | ,, | १९६३ ई० |
| ( १३ ) | भारत-विवेकम् | ,, | १९६३ ई० |
| ( १४ ) | भारत-राजेन्द्रम्[1] | रचना काल | १९६३ ई० |
| ( १५ ) | सुभाष-सुभाषम्[1] | ,, | १९६३ ई० |
| ( १६ ) | देशबन्धु-देशप्रियम्[1] | ,, | १९६३ ई० |
| ( १७ ) | रक्षक-श्रीगौरक्षम्[1] | ,, | १९६३ ई० |
| ( १८ ) | विश्व-विवेकम्[2] | ,, | १९६३ ई० |
| ( १९ ) | भारतजनकम् | प्रकाशन | १९६५ ई० |
| ( २० ) | अमर-मीरम् | ,, | १९६५ ई० |
| ( २१ ) | मेलनतीर्थ-भारतम् | ,, | १९६६ ई० |
| ( २२ ) | मुक्ति-सारदम् | ,, | १९६७ ई० |
| ( २३ ) | भारत-लक्ष्मी | ,, | १९६७ ई० |

इन नाटकों के अतिरिक्त यतीन्द्र के रुदित-राघम्, घृति-सीतम्, अग्नि-मन्त्र-साधनम् और मुक्ति-यज्ञ नाटकों का उल्लेख मिलता है। किन्तु न तो ये नाटक प्रकाशित ही हुये और न इनकी हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हैं रुदित-राघम् का केवल एक अंक प्राप्त हुआ है।

## पालि-नाटक

यतीन्द्र ने सन् १९५९ ई० में 'बिम्बसुन्दरीप्रतिबिम्बनम्' नाटक की पालि भाषा में रचना की। यह समस्त पालि साहित्य में एकमात्र नाटक है। इसका प्रकाशन यतीन्द्र के समय में न हो सका।

## काव्य

| | | |
|---|---|---|
| ( १ ) | शक्तिसाधनम् | प्रकाशन सन् १९५१ ई० |
| ( २ ) | श्री श्री मातृलीलातत्त्वम् ( गीत-संग्रह ) | सन् १९५९ ई० |
| ( ३ ) | श्री श्री विवेकानन्दचरितम् ( चम्पू-काव्य ) | सन् १९६३ ई० |

१. ये सभी नाटक अप्रकाशित हैं। इनकी हस्तलिखित प्रतियों से इनका रचना-काल ज्ञात होता है।

२. इस नाटक का प्रकाशन नहीं हुआ है।

## स्फुट रचना

( १ ) संस्कृत-लिपि शिक्षा — प्रकाशन सन् १९५० ई०

यह बालपयोगी संस्कृत-पुस्तक है।

यतीन्द्र जब लंदन में थे तब उन्होंने सह-लेखक के रूप में 'संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थ' नामक पुस्तक की चार भागों में रचना की,[१] जो १९४४ से १९५४ ई० तक प्राच्यवाणी संस्था से 'प्राच्यवाणी' पत्रिका नाम से प्रकाशित हुई। उसके सम्पादक श्री विमलचरण लॉ थे और सह-सम्पादक डा० यतीन्द्र विमल चौधुरी तथा उनकी पत्नी डा० रमा चौधुरी थीं।

## शोधग्रन्थ

यतीन्द्र ने सर्वप्रथम लंदन विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में १९३० ई० में 'वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति'[२] नामक शोध प्रबन्ध लिखा। उसके पश्चात् १९४४ ई० में 'वैदिक-धार्मिक-कृत्यों में स्त्रियाँ'[३] विषय पर शोध-निबन्ध लिखकर पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

भारत लौटकर १९३९-४० ई० में उन्होंने 'संस्कृत-साहित्य में नारियों का योगदान'[४] नामक शोध-ग्रन्थ को सात भागों में सम्पन्न किया। १९४०-४५ ई० में उन्होंने 'संस्कृत-साहित्य में मुसलमानों का योगदान'[५] नामक शोधग्रन्थ की तीन भागों में रचना की। १९४१-४६ ई० में उन्होंने 'संस्कृत साहित्य को मुसलमान राज्य में प्राप्त आश्रय'[६] नामक शोध-ग्रन्थ को तीन भागों में पूर्ण किया।

१९४१-४६ ई० में यतीन्द्र ने 'स्मृति साहित्य को बंगाल का योगदान' नामक शोध-ग्रन्थ को तीन भागों में लिखा। १९५१ ई० में उन्होंने 'वंगीय-दूत-काव्येतिहास' नामक शोध प्रबन्ध की रचना की।

---

1. इस पुस्तक की प्रतियां इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन में है।
2. The Position of Women in Vedic Age.
3. Women in Vedic Ritual.
4. Contributions of Women to Sanskrit literature 7 vols.
5. Contributions of Bengal to Smrti literature 3 vols.
6. Muslim Patronage to Sanskrit learning 3 vols.

## सम्पादित ग्रन्थ

१९४१-४७ ई० में यतीन्द्र ने 'संस्कृत-कोष-काव्यसंग्रह' ग्रन्थ का चार भागों में सम्पादन किया। इसके अन्तर्गत उन्होंने 'पद्यामृत-तरंगिणी' का सम्पादन १९४१ ई० में, 'पद्यवेणी' का सम्पादन १९४४ ई० में; 'सम्यालंकरण' का सम्पादन सन् १९४७ ई० में किया। १९४०-५५ ई० में यतीन्द्र ने 'संस्कृत-दूतकाव्य-संग्रह' का सात भागों में सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त उन्होने 'भ्रमरदूतकाव्य' का सम्पादन सन् १९४० ई० में, 'वाङ्मण्डनगुणदूतकाव्य', 'चन्द्रदूत-काव्य', तथा 'हंसदूत-काव्य' का सम्पादन १९४१ में, पान्थदूतकाव्य' का संपादन १९४९ ई० में, 'घटखर्पर-काव्य' का संपादन १९५३ ई० में और पदांकदूतकाव्य का संपादन १९५५ ई० में किया। 'संस्कृतदूतकाव्य-संग्रह' के संपादन के पश्चात् १९५० में यतीन्द्र ने 'मेघदूत' का मारुतमल्लिक की 'सुबोध' टीका देते हुए संपादन किया। १९४७-५३ ई० में यतीन्द्र ने ऐतिहासिक महा-काव्यों का चार भागों में संपादन किया। इसमें उन्होंने 'अब्दुल्ला-चरित', 'सुरजन-चरित', वीरभद्रचंपू' तथा 'जाम-विजय-काव्य' का संपादन किया। ऐतिहासिक महाकाव्यों के अतिरिक्त यतीन्द्र ने 'नृपति-नीति-गर्भित-वृत्ते, 'ईश्वर-विलास कव्य', 'शंभुराज-चरित', 'रामचन्द्रयशः-प्रबन्ध', 'धूर्तविड-म्बना', 'भूपशतक', 'संगीत-मालिका' आदि ग्रन्थों का संपादन किया।

## आंग्ल भाषा से रूपान्तरित नाटक

यतीन्द्र ने १९६३ ई० में शेक्सपियर कृत 'ओथेलो' और 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' नाटकों का 'ओथेलो' और 'वेनिस-वणिजम्' के नाम से संस्कृत भाषा में रूपान्तर किया। इन दोनों नाटकों का प्रकाशन उनकी मृत्यु के पश्चात् १९६७ ई० में हुआ है।

## बंगला ग्रन्थ

यतीन्द्र के बंगला भाषा में लिखे हुये मौलिक तथा शोधग्रन्थ प्रकाशन के अनुक्रम से नीचे लिखे हैं।

(१) पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर १९५० ई०

(२) गौडीय वैष्णवेर संस्कृतसाहित्ये दान (संस्कृत साहित्य में बंगीय-वैष्णवों का दान) (शोध-ग्रन्थ) सन् १९५१ ई०

(३) प्रबंधावली - ८ भाग, १९४५-५५ ई०

(४) बुद्ध-यशोधरा १९६३ ई०

(५) जननी-यशोधरा (अप्रकाशित)

## अनूदित बंगला-ग्रन्थ

यतीन्द्र ने श्री श्री चण्डी श्रीमद्भगवद्गीता का बंगला भाषा में अनुवाद किया। इनका प्रकाशन क्रमशः १९५० और १९५३ ई० में हुआ। उन्होंने १९५६ ई० में 'श्री श्री गौरतत्त्व' बंगला ग्रन्थ का संस्कृत भाषा में अनुवाद किया। इसका प्रकाशन १९५८ ई० में हुआ।

यतीन्द्र ने १९४४ ई० से १९५४ ई० तक 'प्राच्यवाणी' संस्था के द्वारा 'प्राच्य-वाणी' पत्रिका प्रकाशित की।

यतीन्द्र और उनकी पत्नी डा० रमा चौधुरी ने 'प्राच्यवाणी-संस्कृत-पालि-नाट्यसंघ' की स्थापना की। इस संघ के द्वारा उन्होंने देश के विभिन्न भागों तथा विदेशों में संस्कृत-नाटकों का अभिनय करके प्राचीन परंपरागत भाषा और विचारों को सार्वजनिक बनाने का प्रयास किया। इस संघ ने पालि-नाटक का अभिनय १९६० ई० में रंगून में किया। यतीन्द्र की मृत्यु के पश्चात् भी श्रीमती डा० रमा चौधुरी इस नाट्य संघ का संचालन करके देश के विभिन्न भागों में संस्कृत-नाटकों के अभिनय के द्वारा संस्कृत भाषा का प्रचार कर रही हैं।

द्वितीय अध्याय

# नाटकों का सामान्य परिचय

आधुनिक संस्कृत नाटककारों में डा० यतीन्द्रविमल चौधुरी का नाम उल्लेखनीय है। कथानक और कला की दृष्टि से इनके नाटक महत्त्वपूर्ण हैं। यतीन्द्र ने वैदिककाल से लेकर आधुनिक काल तक भारत की विविध अवस्थाओं और समस्याओं को नाटक का वर्ण्य विषय बनाया। वे संस्कृत को युगोचित प्रवृत्तियों से निर्भर तथा समृद्ध देखना चाहते थे। नाटकों को उन्होंने संस्कृत प्रसार का सर्वोत्तम साधन समझा। इसी कारण उनके नाटकों में पदे पदे संस्कृत भाषा का महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। देशप्रेम, नारी-महिमा, और धार्मिक भावनाओं से यतीन्द्र के नाटकों को पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) मातृभूमि विषयक नाटक,
(२) लोकनायकात्मक नाटक,
(३) नारीगौरवात्मक नाटक,
(४) वैष्णव भक्तों पर आधारित नाटक और
(५) आंग्ल भाषा से रूपान्तरित नाटक।

## मातृभूमि-विषयक नाटक

इन नाटकों की रचना करते समय यतीन्द्र का उद्देश्य भारत की महिमा का गान करना तथा भारतवासियों को देश-प्रेम की ओर उन्मुख करना है। 'मेलनतीर्थभारतम्' तथा 'महिममय-भारतम्' भारत की महिमा से परिपूर्ण नाटक हैं।

*मेलनतीर्थ भारतम्*

मेलनतीर्थभारतम् में लेखक के अनुसार भारतवर्ष आदिकाल से विभिन्न संस्कृतियों का मेलनक्षेत्र रहा है। वैदिककाल से अब तक अनेक देशों की संस्कृतियां यहां आईं और भारतीय संस्कृति में मिल गईं हिन्दु-मुस्लिम-सिख-ईसाई आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों को भारत मां ने अपनी

क्रोड में निर्विशेष भाव से पाला। विविध संस्कृतियों को आत्मसात् करने के लिये जितने प्रयत्न किये गये, उनका विशद वर्णन इस नाटक में उपलब्ध होता है।

भारतवन्दना से नाटक प्रारम्भ होता है। इस नाटक के प्रथम अंक में अथर्ववेद के सर्वक अथर्वा ऋषि अपने शिष्यों को उपदेश देते हैं। द्वितीय अंक के अनुसार मलयपर्वत पर अगस्त्य ऋषि अपनी पत्नी और शिष्यों के साथ बैठे हुये हैं। वे आर्यसभ्यता के विस्तार के लिये प्रयत्नशील हैं। तृतीय अंक में सम्राट् अशोक बौद्धधर्मानुयायी होकर भारतवर्ष और विदेशों में बौद्धधर्म का प्रचार करते हैं। उनके भाई महेन्द्र और बहिन संघमित्रा धर्म-प्रचार करने के लिये सिंहल देश जाते हैं। पंचम अंक में सम्राट् अकबर हिन्दू-मुसलमान-ईसाई आदि सभी धर्मों के मूल-सिद्धान्तों का समन्वय करके दिन-ह-इलाहि नामक नवीन धर्म चलाते हैं। षष्ठ अंक में महाप्रभु चैतन्य मुसलमान युवक हरिदास और हिन्दू रूपगोस्वामी को लेकर अस्पृश्यता दूर करने का प्रयत्न करते हैं। सप्तम अंक में स्वामी सारदानन्द और स्वामी विवेकानन्द विश्वमैत्री का पाठ लोगों को पढ़ाते हैं। अष्टम अंक में रवीन्द्रनाथ संसार का भ्रमण करके विद्यार्थियों के लिये हितकर विश्व-भारती सस्था का निर्माग करते हैं। नवम अंक में महात्मा गांधी नोआखालो नगरी में शान्ति स्थापित करने के लिये और हिन्दु-मुसलमानों में एकता उत्पन्न करने के लिये उपदेश देते हैं। वे दिल्ली नगरी में एशिया महाद्वीप और विभिन्न देशों से आये हुये प्रतिनिधियों के साथ विश्वमैत्री के संबन्ध में विचार करते हैं। बम्बई नगरी में मदनलाल नामक कोई दुष्ट व्यक्ति गांधो जी के ऊपर बम फेंकता है। भगवान् की कृपा से रक्षित होकर गांधी जी अपने अपराधी को क्षमा कर देते हैं। प्रार्थना के समय बिडला भवन जाते हुये गांधी जो के ऊपर कोई दुस्साहसिक व्यक्ति आग्नेय अस्त्र का प्रहार करता हैं। उससे आहत होकर गांधी राम-राम शब्द कहते हुये दिवंगत हो जाते हैं। सम्पूर्ण संसार इस आकस्मिक निधन से शोकाकुल हो जाता है। दशम अंक में नेहरू विश्व-मैत्री के लिये प्रयत्न करते हैं।

*महिममय-भारतम्*

महिममय-भारतम् वैदिक-पौराणिक-महम्मदीय तथा वर्तमान युग में नदी मातृपूजा तथा विभिन्न योजनाओं पर आधारित स्वल्पाकृति रूपक है। इस नाटक की रचना से संस्कृत नाट्य-साहित्य में एक नवीन विधाका आरम्भ

होता है। नवीन पद्धति पर लिखा हुआ लोकोत्तर कल्याण की भावना से परिपूर्ण यह नाटक संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। इसमें वैदिक काल से आधुनिक काल पर्यन्त कृषि के लिये उपयोगी योजनायें बहूद्देश्यमूल्यक-सेचन-परिकल्पना, विद्युदुत्पादन-परिकल्पना आदि वर्णित हैं, जिनसे लोग सुखी हों।

भारत की महिमा के गान के साथ नाटक प्रारंभ होता है। प्रथम अंक में वैदिक ऋषि सिन्धुक्षित् अपनी पत्नी और शिष्य के साथ सिन्धु नदी की पूजा करते हैं और भारत की महनीयता का वर्णन करते हैं। द्वितीय अंक में राग-रागिणी विकलांग नर-नारी के रूप में मार्ग पर लेटे हुए हैं। उसी समया नारद प्रवेश करते हैं। वे कहते हैं कि राग-रागिणी सामाजिकों की प्रशंस के अभाव में विकलांग हो गये हैं। नारद शिव के समीप जाते हैं। शिव मधुर स्वर से गाते हैं। उनका गीत सुनकर विष्णु द्रवित होते हैं। ब्रह्मा उस द्रवित जल को अपने कमण्डल में रख लेते हैं और संसार के कल्याण के लिये उस जल को गंगा के रूप में प्रवाहित कर देते हैं। तृतीय अंक में सम्राट् शाहजहां की पुत्री जहांनारा यमुना नदी की प्रशंसा में गीत गाती है। उसके पिता शाहजहां लाहौर से आकर उसको बताते हैं कि लाहौर के शासक अलीमर्दनखान गान्धार जलप्रणाली को देखकर प्रजा का हित करने के लिये उसके अनुसार नवीन आकार की जल प्राणाली का निर्माण करा रहें हैं। यह सुनकर जहांनारा हर्ष-विह्वल हो जाती है, क्योंकि उससे आठ वर्ष पहले उस प्राणाली का निर्माण करने के लिये उसकी मां का स्वप्न था, जो आज साकार हुआ। चतुर्थ अंक में राम और रहीम जगत्पिता महात्मा गांधी की वंदना करते हैं। अपने देश के विकास के लिये कार्य करते हुये वे परम शान्ति का अनुभव करते हैं। उसी समय चार दर्शक- दामोदर, पेलवकुमार, सनातन और मंजुलादेवी जाते हैं। ये चारों चार भिन्न प्रवृत्ति के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सनातन पुराने विचारों वाला व्यक्ति है। पेलवकुमार कवि है। दामोदर विनोदी स्वभाव का व्यक्ति है और मंजुलादेवी आधुनिक बालिका है। ये सभी नदी की पूजा करते हैं। पंचम अंक में सभी दर्शक माइथन बाँध पर जाकर उसको देखकर विस्मित और हर्षित होते हैं। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

## लोकनायकात्मक नाटक

यतीन्द्र के द्वारा लिखे हुये भारतीय नेताओं पर आधारित नाटकों में

भारतीय महापुरुषों के जीवन-वृत्त तथा उनके द्वारा लोक-कल्याण के लिये किये गये कार्यों का वर्णन है। ये नाटक एक ओर जहां भारतीय महापुरुषों के जीवनादर्श को हमारे सम्मुख रखते हैं, वहां इन महापुरुषों के उदात्त जीवन के अनुसरण द्वारा हमको अभ्युदयोन्मुख होने की प्रेरणा देते हैं।

### स्वप्नरघुवंशम्

स्वप्न-रघुवंशम् रघुवंश की कथा पर आधारित नाटक है।[1] इसकी कथा-वस्तु चौदह अंकों में निबद्ध है। नाटक के प्रारंभ में नान्दी-पाठ के द्वारा कालिदास की वन्दना की गई है।

राजा कुश का शयन-कक्ष है। उनकी राजलक्ष्मी रघुवंश के अतीत-ऐश्वर्य समृद्धि और यश के लिये विलाप करती है। वह कुश से अयोध्या लौट चलने और वहां पर अपनी राजधानी बनाने की प्रार्थना करती है। कुश उससे रघुवंश के अतीत यश और समृद्धि को सुनाने की प्रार्थना करते हैं। राजलक्ष्मी कुश की बात मान लेती है। वह अपनी शक्ति से कुश की स्वप्नावस्था उपस्थित कर देती है, जिससे वे रघुवंश की सुख-समृद्धि देख सकें।

कुश स्वप्न देखते हैं। वे स्वप्न में वसिष्ठ और दिलीप का संवाद, दिलीप की गोसेवा, रघु का प्रजा-पालन, ब्रह्मचारी कौत्स को दान देना, इन्दुमती का स्वयंवर और अज का पति के रूप में वरण, दशरथ का शासन, राम लक्ष्मण और हनुमान् के द्वारा लंका पर विजय, रावण का मरण, सीता की अग्नि-परीक्षा, अयोध्या आने पर राम के द्वारा सीता का निष्कासन, वाल्मीकि के द्वारा राम से सीता को ग्रहण करने की प्रार्थना, सीता का पाताल प्रवेश आदि सभी घटनायें देख लेते हैं। इसके पश्चात् उनका स्वप्न भंग हो जाता है। कुश राजलक्ष्मी को धन्यवाद देते हैं, जिसने उन्हें अपने पूर्वजों के ऐश्वर्य को दिखाया।

रघुकुल की स्तुति के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

---

१. यह नाटक यतीन्द्र का सर्वप्रथम नाटक है, किन्तु इसका प्रकाशन नहीं हो सका है। इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। १९८५ ई० में नवम्बर मास में यह नाटक कालिदास-जयन्ती के अवसर पर उज्जैन में अभिनीत हुआ।

*भारतहृदयारविन्दम्*

भारत-हृदयारविन्दम् अरविन्द के पावन जीवन पर आधारित देश-प्रेम तथा भक्ति से परिपूर्ण नाटक है। नाटक की कथावस्तु पांच अंकों में विभक्त है। इसके प्रारंभ में नान्दी पाठ के द्वारा अरविन्द की वन्दना की जाती है। नाटक के प्रथम अंक में अरविन्द केम्ब्रिज में निवास करते हुये भारतवासियों की स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपायों पर विचार करते हैं। द्वितीय अंक अरविन्द के बड़ौदा राजकालेज में अध्यापन का आख्यान है। वे मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये शपथ-ग्रहण करते हैं। तृतीय अंक में अरविन्द तथा तिलक १९०७ ई० में सूरत प्रदेश में होने वाले कांग्रेस-सत्र में पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति पर बल देते है। चतुर्थ अंक में अरविन्द मानिकतला बम-विस्फोट-षड्यन्त्र में भाग लेने के सन्देह में बन्दी बना लिये जाते हैं। पंचम अंक में अरविन्द राजनीतिक कार्यों को छोड़कर पाण्डुचेरी में आश्रम स्थापित कर वहीं वास करते हैं।

*भास्करोदयम्*

भास्करोदयम् नाटक के प्रारंभ में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की स्तुति की गई है। प्रथम अंक के अनुसार रवीन्द्र के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ से धनादायक राजकीय आदेश पत्र लेकर चतुर्दश सहस्र मुद्रा लेने आता है। कोषाध्यक्ष कैलास उनसे भीतर छिप जाने के लिये कहते हैं परन्तु वे ऐसा नहीं करते और अर्थादायक के उपस्थित होने पर उसी के साथ शैरिफ महोदय के समीप चले जाते हैं। द्वितीय अंक में देवेन्द्रनाथ के चाचा प्रसन्नकुमार उनको यह परामर्श देते हैं कि वे सांसारिक व्यवहार अपनाकर कठिनाइयों से मुक्त हों। कवि का प्रकृति से अनुराग दिखलाया गया है। चतुर्थ अंक में झमरु तथा डगरु के वार्तालाप से ठाकुर परिवार की आधुनिकता का ज्ञान होता है। पंचम अंक में रवीन्द्र के साहित्यिक कार्यों का उल्लेख किया गया है। रवीन्द्र दिन रात साहित्यसाधना में लीन रहते हैं। उनकी साहित्यिक रुचि को जानकर उनकी मां प्रसन्न होती हैं। षष्ठ अंक के अनुसार रवीन्द्र देश-प्रेम से परिपूर्ण कवितायें लिखते हैं। सप्तम अंक में ज्योतिरिन्द्रनाथ रवीन्द्रनाथ, अक्षय चौधुरी, दिवेन्द्रनाथ तथा स्वर्णकुमारी भारती पत्रिका को प्रकाशित करने का विचार करते हैं, । अष्टम अंक में रवीन्द्र और उनकी भाभी की विनोदवार्ता होती है। नवम अंक में रवीन्द्र के द्वारा लंदन में

किये गये कार्यकलापों का वर्णन है। दशम अंक में रवीन्द्र के द्वारा वाल्मीकि-प्रतिभा नामक नाटक की रचना और उसके अभिनय का वर्णन है है। एकादश अंक में रवीन्द्र के काव्य सान्ध्यसंगीत की रचना करने का उल्लेख है। इस काव्य की रचना के पश्चात् रवीन्द्र का सुप्रतिष्ठित कवि के रूप में जीवन आरम्भ होता है। द्वादश अंक के अनुसार रवीन्द्र प्रभात-संगीत की रचना करते हैं। त्रयोदश अंक में रवीन्द्र प्रकृति-परिशोध नामक काव्य की रचना करते हैं। चतुर्दश अंक में ठाकुर परिवार के द्वारा बालक पत्रिका का संचालन प्रारम्भ किया जाता है। पञ्चदश अंक में रवीन्द्र अपने पिता को माघोत्सव के अवसर पर रचित कविता सुनाते हैं। देवेन्द्रनाथ प्रसन्न होकर उनको ५०० ) का पारितोषिक प्रदान करते हैं।

*भारतजनकम्*

भारत-जनकम् नाटक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के अध्यवसायों पर पर आधारित नाटक है। नाटक के प्रारम्भ में नान्दी पाठ के द्वारा गांधी जी की वन्दना की गई है। नाटक की कथावस्तु १६ अंकों में विभक्त है। प्रथम अंक में प्रस्तावना में नटी·सूत्रधार के वार्तालाप से भारत की महिला वणित की गई है। भारतवर्ष में समय-समय पर अनेक महापुरुष हुये, जिन्होंने एकता के लिये प्रयत्न किये। महात्मा गांधी का नाम उनमें अग्रगण्य है। द्वितीय अंक में गांधी जी के अफ्रीका देश में किये कार्यों का वर्णन है। गांधी जी के कार्यों को देखकर नेटालवासी कुछ आंग्ल युवक उनपर ईंट-पत्थर फेंकते हैं और पैरों से ठोकर मारते हैं। उसी समय पुलिस सुपरिण्टेडेंट की पत्नी आकर उनकी रक्षा करती हैं। तृतीय अंक में नेटाल देश में जुलु निवासियों के प्रति किये गये अंग्रेजों के अत्याचारों को देखकर गांधी जी दुःखी होते हैं। वे उनके कष्टों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। चतुर्थ अंक में गांधी जी की पत्नी कस्तूरबा रोगपीडित हैं। चिकित्सकों के अनुरोध करने पर भी वे गोमांस नहीं ग्रहण करती हैं। पंचम अंक के अनुसार गांधी देशवासियों के लिये हितकर कार्य करने हेतु अपराध में कारागार भेज दिये जाते हैं कारागार से बाहर आये हुये गांधी को भारतीय महम्मदीय पठान मीर आलम मारने का प्रयत्न करता है। ईश्वर की कृपा से गांधी जी के प्राणों की रक्षा होती है। षष्ठ अंक में जोहान्सवर्ग में मुसलमानों के प्रार्थना-मन्दिर के प्रांगण में भारतीय एकत्रित हैं। गांधी उनको उपदेश देकर, उनको आंग्ल शासकों के अत्याचारों से अभिज्ञ कराते

हैं। सप्तम अंक में गांधी के उपदेश से प्रभावित होकर दो युवक मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रयत्न करते हुये बन्दी बना लिये जाते हैं। और उनको प्राणदण्ड मिलता है। अष्टम अंक में ओयेष्ट और श्री कालेनवाक् आंग्ल शासकों की नीति की निन्दा करते हुये, भारतवासियों की स्वतन्त्रता के विषय में विचार-विमर्श करते हैं। वे गांधी के सत्य और अहिंसा के धर्म को स्वीकार करते हैं। नवम अंक में कस्तूरबा आदि नारियों का समुदाय धर्म का पालन करते हुये कारागार में कष्ट भोगता है। दशम अंक में सभी राज्याधिकारी भारतवर्ष के वायसराय लार्ड हार्डिंग्ज का अभिनंदन करते हैं। वायसराय गांधी जी के अफ्रीका देश में किये गये कार्यों की प्रशंसा करते हैं। एकादश अंक के अनुसार गांधी हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिये २१ दिन का अनशन करते हैं। द्वादश अंक में गांधी द्वारा नमक-कानून के उल्लंघन करने का उल्लेख है। त्रयोदश अंक में गांधी त्रिवेन्दम् नगर में अस्पृश्यता निवारण के लिये उपदेश देते हैं। चतुर्दश अंक में माता कस्तूरबा दिवंगत महादेव का स्मरण कर शोकाकुल हैं। पंचदश अंक के अनुसार गांधी कलकत्ते में उपस्थित हैं। १५ अगस्त सन् १९४७ को सभी हर्षमग्न होकर स्वतन्त्रता दिवस मनाते हैं। षोडश अंक में गांधी के साथ सभी हिन्दु-मुसलमान अपने पारस्परिक विद्वेष को छोड़कर 'वार्षिकोर' नामक उत्सव में सम्मिलित होते हैं। महात्मा गांधी के साथ हिन्दु कन्यायें कुरान का पाठ करती हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

## *भारतविवेकम्*

'भारत-विवेकम्' स्वामी विवेकानन्द के जीवन-चरित पर अवलम्बित नाटक है। इसकी कथावस्तु १२ अंकों में विभक्त है। परमहंसदेव किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में हैं, जो उनके धर्म तथा दर्शन का प्रचार कर सके। उसी समय तरुण नरेन्द्र उनसे मिलता है। परमहंसदेव युवक नरेन्द्र को अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार करने के लिये उपयुक्त मात्र समझते हैं। नरेन्द्र रामकृष्ण परमहंस को अपना गुरु मानते हैं और उनसे ईश्वर के स्वरूप के विषय में वार्ता करते हैं। नरेन्द्र पर आधारित परमहंसदेव की कल्पनायें साकार होती हैं। नरेन्द्र धर्म तथा दर्शन में विशेष ख्याति प्राप्त कर, परिव्रज्या ग्रहण करते हैं। खेतडी-नरेश के आग्रह से वे विवेकानन्द नाम रखकर, परमहंसदेव के धर्म का, भारतीय संस्कृति और दर्शन का देश-विदेश में प्रचार करते हैं और जनता को सन्मार्ग दिखाते हैं।

विश्वविवेकम्

'विश्व-विवेकम्' विश्व को विवेक देने वाले स्वामी विवेकानन्द के उत्तर जीवन पर अवलंम्बित नाटक है। इसमें आठ अंक हैं। स्वामी विवेकानन्द भारतीय हिन्दु धर्म के प्रतिनिधि होकर धर्ममहासम्मेलन में भाग लेने के लिये शिकागो जाते हैं। वहां वे सेवा-धर्म का उपदेश देते हैं। वे भारतीय संस्कृति को सर्वोत्कृष्ट सिद्ध करते हैं। अर्थाभाव तथा वस्त्राभाव के कारण उनको वहां अनेक यातनायें सहन करनी पड़ती हैं।

भारतराजेन्द्र

'भारत-राजेन्द्रम्' भारत के राजेन्द्र, स्वाधीनता के नायक, गांधिशिष्य: भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद के जीवन-चरित पर अवलम्बित नाटक है। इसकी कथावस्तु बारह अंकों में विभक्त है।

राजेन्द्रप्रसाद कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करते हैं। उनके बड़े भाई महेन्द्रप्रसाद उनको उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिये इंग्लैंड भेजना चाहते हैं किन्तु राजेन्द्रप्रसाद की पत्नी श्रीमती राजवंशी देवी तथा बहिन भगवतीदेवी के आकुल होने के कारण उनको विलायत भेजने का विचार स्थगित करना पड़ता है। राजेन्द्रप्रसाद महात्मा गांधी के सम्पर्क में आते हैं। उनसे प्रभावित होकर वे देश-सेवा-कार्य में लग जाते हैं। वे अनेक बार कारावास के कष्ट सहते हैं किन्तु अपने कर्तव्यपथ से वे विचलित नहीं होते हैं। भारत को स्वतंत्र कराना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। वे इस उद्देश्य में सफल होते हैं। स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् वे स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति होते हैं।

सुभाष-सुभाषम्

'सुभाष सुभाषम्' नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जीवन-चरित पर लिखा गया छः अंकों का नाटक है। नाटक के प्रारंभ में नांदी पाठ द्वारा सुभाषकी स्तुति की गई है। कलकत्ते में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् सुभाष उच्च शिक्षा-प्राप्त के लिये विदेश जाते हैं। वहां आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में सफल होकर प्रशिक्षण लेकर भी वे भारत के पराधीनता-पाश को छिन्न-भिन्न करने के लिये आई० सी० एस० पद त्याग देते हैं वे दिन-रात भारत को स्वतंत्र करने की योजनायें बनाते रहते हैं। इनके त्यागमय जीवन को देखकर गांधी जी प्रभावित होते हैं। सुभाष गांधी के विश्वास-

पात्र बन जाते हैं। वे चितरंतजनदास, यतीन्द्रमोहन सेन, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद आदि 'नेताओं के साथ मिलकर कार्य करते हैं। वे अनेक बार जेल जाते हैं। वे जेल की यन्त्रणाओं से विचलित नहीं होते वरं जेल को अपना कल्याण-स्थान मानते हैं। वे जापान जाकर वहां के प्रवासी भारतीयों को लेकर 'आजाद-हिन्द-सेना' बनाकर भारत के स्वातन्त्र्य के लिये आजीवन प्रयत्न करते हैं। वे नारियों के लिये 'झांसी-राज्ञो-वाहिनी' सेना के संचालन करने का विचार करते हैं। वे भारत-भूमि को स्वतन्त्र कराने के लिये शपथ ग्रहण करते हैं। भरतवाक्य के साथ, जिसमें भारत की स्वतन्त्रता की और उसकी समृद्धि की कामना की गई है, नाटक समाप्त होता है।

## देशबन्धु-देशप्रियम्

'देशवन्धु-देशप्रियम्' चितरंजनदास के जीवनचरित पर लिखा हुआ नौ अंकों का नाटक है। उनका जीवन देश प्रेम और त्याग से भरपूर है। देश-वासियों के दुख देखकर, भारत की आर्तदशा से पोडित होकर वे वकालत छोड़कर देश सेवा में रत हो जाते हैं। उनके वकालत छोड़ने पर उनके परिवार के सदस्य विरोध करते हैं किन्तु वे देश सेवा को अपना एकमात्र लक्ष्य समझते हैं। महात्मा गांधी से मार्गदर्शन पाकर वे सुभाषचन्द्र बोस, यतीन्द्रमोहन सेन आदि के साथ कार्य करते हैं। वे आसाम-बंगाल-रेलवे-स्ट्राइक में मज़दूरों का साथ देते हैं। पुलिस उनको बन्दी बनाने की धमकी देती है किन्तु वे तनिक भी चिन्ता नहीं करते हैं। बड़े बाजार कलकत्ते में वैदेशिक वस्त्रों के विक्रय-निरोध के कारण वे बन्दी बना लिये जाते हैं। इस प्रकार भारत को स्वतंत्रता के लिये वे अनेक बार कारावास का कष्ट भोगते हैं।

## रक्षकश्रीगोरक्षम्

'रक्षक-श्रीगोरक्षम्' गोरक्षनाथ के जीवनचरित पर आधारित नाटक है। इसकी कथावस्तु ७ अंकों में विभक्त है। मत्स्येन्द्रनाथ किसी ऐसे साधक की खोज में हैं जो उनके धर्म का प्रचार कर सके। वे अपने साधक की खोज करते हुये अयोध्या के समीप जयश्री नगर में एक ब्राह्मणी के घर पहुँचते हैं। वह ब्राह्मणी सन्तान के अभाव में बहुत दुःखी हैं। वे ब्राह्मणी को सन्तानलाभार्थं भस्म देते हैं और उसको वह भस्म खाने का आदेश देकर

चले जाते हैं। वे जाते समय ब्राह्मणी के घर से फल खाकर प्रस्थान करते हैं, भोजन ग्रहण नहीं करते। इससे ब्राह्मणी का चित्त क्षुब्ध हो जाता है। वह अपनी पड़ोसिन से इस सम्बन्ध में बात करती है। पड़ोसिन के मना करने पर वह भस्म नहीं खाती और उसको एक गढ्ढे में डाल देती है। बारह वर्ष पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ पुनः उसके घर आते हैं और उसके पुत्र के विषय में पूछते हैं। ब्राह्मणी डरती हुई उन्हें बतलाती है कि मृत्यु के डर से उसने भस्म न खाकर एक गर्त में डाल दिया। मत्स्येन्द्र-नाथ उसको बतलाते हैं कि उसी गर्त में तुम्हारा पुत्र होगा। ब्राह्मणी उस गर्त के समीप जाती है और बारह वर्ष के पुत्र को देखती है। पृथ्वी से रक्षित होने के कारण उसका नाम गोरक्षनाथ रखा जाता है। मत्स्येन्द्रनाथ उसको अपना शिष्य बनाते हैं। वे उसको अपना उत्तर-साधक मानते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ उससे कहते हैं कि गो (पृथ्वी) द्वारा तुम्हारी रक्षा हुई है अतः तुम गो (पृथ्वी,गाय) की रक्षा करने का व्रत लो। गोरक्षनाथ गोरक्षा का व्रत लेते हैं वे मत्स्येन्द्रनाथ के आदेशों का पालन करते हुये ब्रह्मविद्या का प्रचार करते हैं। यह नाटकयोगविद्या-प्रकाशक है।

## नारी-गौरवात्मक नाटक

यतीन्द्र मातृशक्ति के उपासक थे। उन्होंने धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा अन्य क्षेत्रों की गौरवशालिनी नारियों के जीवनचरित, तथा कार्यों का उल्लेख अपने नाटकों में किया।

### *प्रीतिविष्णुप्रियम्*

'प्रीति-विष्णुप्रियम्' महाप्रभु की पत्नी महाजननी विष्णुप्रिया के जीवन-चरित पर उपजीवित नाटक है। विष्णुप्रिया चैतन्यदेव की शक्ति, सह-धर्मिणी तथा प्रथम शिष्या थीं। उनके कारण चैतन्य का धर्म भारतवर्ष में फैला।

इस नाटक की कथावस्तु ११ अंकों में निबद्ध है। गंगा के तट पर विष्णुप्रिया को देखकर महाप्रभु की माता शचीदेवी उसकी ओर आकर्षित होती हैं। वे अपने पुत्र गौरांग के साथ उसका विवाह करना चाहती हैं। विष्णुप्रिया की आयु लगभग चौदह वर्ष और महाप्रभु की आयु बाइस वर्ष की है। अपनी मां को इच्छा और आज्ञा के अनुसार महाप्रभु विष्णुप्रिया से

विवाह करते हैं। महाप्रभु अपने धर्म का प्रचार करते हुये पाखण्डियों का उद्धार करते हैं। विष्णुप्रिया को महाप्रभु के विरह की आशंका होती है। वे रात में स्वप्न देखती हैं कि उनके पति उनको छोड़कर जा रहे हैं। इस स्वप्न से वे व्याकुल हो उठती हैं और महाप्रभु से कहती हैं कि मैं सब प्रकार के दुःखों को सहन करने में समर्थ हूँ, किन्तु आपका विरह नहीं सहन कर सकती। गौरांग उनको सान्त्वना देते हुये कहते हैं कि हम दोनों का कदापि विरह नहीं हो सकता।

*भक्तिविष्णुप्रियम्*

'भक्ति-विष्णुप्रियम्' भी विष्णुप्रिया के जीवन पर आधारित उनका भक्ति से परिपूर्ण नाटक है। इसकी कथावस्तु सात अंकों में निबद्ध है। इसमें महाप्रभु के गृहत्याग से लेकर उनके समाधिस्थ होने तक की घटनाओं का वर्णन है।

गयाधाम से आगमन के अनन्तर महाप्रभु का चित्त अशान्त हो जाता है। वे संसार के कष्टों को देखकर दुःखी होते हैं। वे प्रव्रज्या-ग्रहण-क्रम से संसार के दुःखों को दूर करने की इच्छा करते हैं। अपने इस विचार को वे मां और पत्नी को बतलाते हैं। वे दोनों व्याकुल होती हैं किन्तु वे महाप्रभु के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहतीं। महाप्रभु विष्णुप्रिया को अपनी मां तथा भक्तों की सेवा और देखभाल का उत्तरदायित्व देकर और अपने धर्म प्रचार का भार सौंप कर स्वयं निष्क्रमण कर जाते हैं। विष्णुप्रिया वैष्णवधर्म का प्रचार करती हैं। कुछ समय के पश्चात् वे वैष्णव-धर्म के प्रचार कार्य को भक्तों को समर्पित कर पंचत्व को प्राप्त होती हैं।

*निष्किञ्चनयशोधरम्*

'निष्किंचन-यशोधरम्' नाटक सिद्धार्थ की सहधर्मिणी यशोधरा के त्याग पूर्ण, यशस्वी एवं उज्ज्वल चरित पर आधारित है।

नाटक की कथावस्तु सात अंकों में विभक्त है। इसके अनुसार यशोधरा सायंकाल अपनी गृहवाटिका में भ्रमण कर रही है। उसी समय राजा शुद्धोधन के राजपुरोहित से उनकी भेंट होती है। राजपुरोहित कुमार सिद्धार्थ के लिये उपयुक्त गुणवाली वधू की खोज में हैं। यशोधरा उनके विचार को जान जाती है और कुमार सिद्धार्थ से विवाह करने के हेतु अपनी

स्वीकृति दे देती है। सिद्धार्थ यशोधरा की विवाह - संबंधी प्रतियोगिता में विजयी होते हैं और उनका विवाह यशोधरा से हो जाता है। कुछ समय पश्चात् रात्रि में एक भयंकर स्वप्न देखकर यशोधरा का हृदय कांप उठता है। यशोधरा को पुत्र उत्पन्न होता है। पुत्रजन्म का समाचार पाकर सिद्धार्थ व्याकुल होते हैं और उसी रात्रि में गृहत्याग देते हैं। सिद्धार्थ के निष्क्रमण से राजप्रासाद में हाहाकार मच जाता है। सिद्धार्थ वन में जाकर और तपश्चर्या करके बुद्धत्व प्राप्त करते हैं। वे कपिलवस्तु में आते हैं। यशोधरा अपने सप्तवर्षीय पुत्र राहुल को संन्यास धर्म में दीक्षित कर देती हैं। यशोधरा माता गौतमी से प्रार्थना करती हैं कि वे आप बुद्ध से स्त्रियों को उनके पवित्र संघ में प्रवेश करने का अधिकार दिलायें। बुद्धदेव स्त्रियों को भिक्षुणी के रूप में संघ में प्रविष्ट होने का अधिकार देते हैं। यशोधरा भिक्षुणी बनकर उनके संघ में प्रविष्ट होती हैं और ७८ वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्त करती हैं।

## शक्तिसारदम्

'शक्ति-सारदम्' रामकृष्ण परहंस की सहधर्मिणो सारदामणि के उदात्त जीवनचरित पर अवलम्बित नाटक है। इसकी कथावस्तु पांच अंकों में विभक्त है। इस नाटक में सारदामणि के दक्षिणेश्वर आने से रामकृष्ण के तिरोधान-पर्यन्त की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

सारदामणि, की अवस्था लगभग १८-१९ वर्ष की है। वें अपने पिता रामचन्द्र मुखोपाध्याय के साथ दक्षिणेश्वर आती हैं। चार वर्ष के पश्चात् वे रामकृष्ण परमहंस से मिलती हैं। वे उनको आश्वस्त कराती हैं कि अपने पति को गार्हस्थ्य धर्म में प्रवृत्त कराने नहीं आई, अपितु उनके आध्यात्मिक मार्ग में उनकी सहायक बनने आयी हूँ। पति-पत्नी संसार का हित करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। रामकृष्ण सारदामणि को काली का रूप मानकर उनकी पूजा करते हैं। एक दिन जयरामवाटी से दक्षिणेश्वर को लौटती हुई सारदामणि मार्ग भूलकर अपने साथ के लोगों से बिछुड़ कर अकेली रह जाती हैं। एक भयंकर डाकू कालू बागड़ी उनपर प्रहार करने का यत्न करता है। वे उसे पिता शब्द से सम्बोधित करती हैं। पिता शब्द को सुनते ही उस अत्याचारी डाकू का जीवन परिवर्तित हो जाता है। वह उनको अपनी कुटिया में ले जाता है। डाकू और डाकू की पत्नी उन्हें अपनी पुत्री के समान मानकर स्नेह तथा ममतापूर्ण व्यवहार

करती हैं। रामकृष्ण कण्ठरोग से पीड़ित हैं। वे काली की स्तुति में गीत गाते हैं। गीत गाने से कण्ठरोग के बढ़ने की आशंका के कारण सारदामणि उनका गाना रोकती हैं। वे उनको अपने तिरोधान के सम्बन्ध में सूचित करते हैं। सारदामणि व्याकुल हो जाती हैं। रामकृष्ण उनको उपदेश देते हैं कि आत्मा अमर है। शरीर नष्ट होता है, आत्मा नहीं। वे भगवान् की स्तुति में पुनः एक गीत गाते हैं और समाधिस्थ हो जाते हैं।

### मुक्तिसारदम्

'मुक्ति-सारदम्' नाटक सारदामणि के उत्तरचरित पर आधारित है। इसकी कथावस्तु १२ अंकों में विभक्त है।

रामकृष्ण परमहंस के निधन के पश्चात् सारदामणि शोक से आक्रांत हैं। वे सधवा स्त्री के समान वेशभूषा धारण करती हैं। इसपर कामारपुकुर गांव के लोग विरोध करते हैं किन्तु उनकी भक्ति से भीत होकर उनके भक्त बन जाते हैं। सारदामणि विवेकानन्द को अपना पुत्र मानती हैं। विवेकानन्द धर्म का प्रचार करने के लिये विदेश जाने के लिये उनसे अनुमति मांगते हैं। पहले तो वे उनके विचार का अनुमोदन नहीं करतीं किन्तु जब रामकृष्ण की अशरीरिणी वाणी उनको आज्ञा देती है तब वे उनको विदेश-गमन की अनुमति प्रदान करती हैं। सारदामणि रोगक्रान्त हो जाती हैं। सेवकों के निरन्तर आग्रह करने पर भी वे दुग्धादि ग्रहण नहीं करतीं। वे अपने शरीर का त्याग करना चाहती हैं। उनके इस विचार को जानकर भक्तगण दुःखी होते हैं। वे सबको धैर्य बंधाती हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

### आनन्दराधम्

'आनन्द-राधम्' राधा के जीवन पर आधारित नाटक है। इसमें शाश्वतानन्दरूपिणी राधा के जीवन की घटनाओं का वर्णन किया गया है। इसमें १२ अंक हैं।

गोकुल में नन्द का भवन है। नन्द और यशोदा के वार्तालाप से प्रतीत होता है कि वन में अकस्मात् दारुण झंझावात और वृष्टि में राधा ने कृष्ण की रक्षा की। राधा वृन्दावन में राधाकुंज में तुलसी का पूजन कर रही हैं। कृष्ण गोपदेवता नामक सखी का वेष धारण कर

समीप आते हैं। वे उनके समक्ष कृष्ण की निन्दा करते हैं। राधा कृष्ण की निन्दा नहीं सुन सकतीं। कृष्ण अपना रूप प्रकट कर देते हैं। राधा परीक्षा में सफल होती हैं। कार्तिकपूर्णिमा की रात्रि है। कृष्ण गोपियों के साथ रासलीला कर रहे हैं। गोपियां कृष्ण का गुणगान करती हैं।

यशोदा और नन्द कृष्ण को पुत्र के रूप में पाकर आनन्दित हैं। रात्रि में कृष्ण वियोग का स्वप्न देखकर नन्द का हृदय कांप जाता है। इस स्वप्न को सुनकर यशोदा चिन्तित हो जाती हैं और वे कृष्ण से वृन्दावन न छोड़ने की प्रार्थना करती हैं। कंस कृष्ण का वध करने का विचार करता है। वह कृष्ण और बलराम को बुलाने के लिये यज्ञ का आयोजन करता है। अक्रूर को उन्हें बुलाने भेजता है। तर्क-वितर्क के पश्चात् अक्रूर उनको लाने के लिये प्रस्थान करता है। वह गोकुल आकर नन्द को अपने आने का उद्देश्य बतलाता है। नन्द उन दोनों को मथुरा भेजने के विषय में चिन्तित होते हैं किन्तु कृष्ण धनुर्यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये मथुरा जाने का हठ करते हैं। वे राधा की स्वीकृति लेने के लिए उनके पास जाते हैं। राधा उनके मार्ग में बाधक न होकर उन्हें जाने की स्वीकृति देती हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोकुलवासी दुःखी होकर विलाप करते हैं। मथुरा में कृष्ण का चाणूर के साथ तथा बलराम का मुष्टिक के साथ मुष्टियुद्ध होता है। कृष्ण और बलराम उन दोनों का वध कर देते हैं। तत्पश्चात् कृष्ण कंस का वध कर देते हैं। कृष्ण मथुरा से उद्धव के द्वारा गोपियों के पास संदेश भेजते हैं। गोपियां कृष्ण की निष्ठुरता पर बुरा भला कहती हैं। राधा कृष्ण के विरह में आकुल हैं। उनकी सखी वृन्दा कृष्ण को लेने मथुरा जाती हैं। वह वहां से आकर बतलाती है कि वे राजकार्य में व्यस्त होने के कारण गोकुल नहीं आ सके। बलराम आकर नन्द और यशोदा से कहते हैं कि कृष्ण के वृन्दावन आने तक में कृष्ण का प्रतिनिधि होकर आपकी सेवा करूँगा। भरतवाक्य से नाटक समाप्त होता है।

*अमरमीरम्*

'अमर-मीरम्' कृष्णभक्त मीरा के जीवन-चरित पर आधारित नाटक है। इसमें मीरा का विवाहोत्तर जीवन-वृत्त प्रपञ्चित है। इसकी कथा-वस्तु ११ अंकों में विभक्त है।

देवमन्दिर में मीरा कृष्ण की आराधना कर रही हैं। वे कृष्ण को

अपना पति मानती हैं। मीरा की कृष्ण भक्ति पर उनकी सास और ननद उन पर क्रुद्ध होती हैं और उनको 'कुलकलंकिनी' कहती हैं। मीरा के पति भोजराज वहां आते हैं। वे मीरा के 'परपुरुष' को चारों ओर ढूंढते हैं किन्तु उन्हें कोई नहीं दिखलाई पड़ता। वे विस्मित हो जाते हैं। कुछ समय के पश्चात् मीरा के दर्शन की इच्छा से सम्राट् अकबर तानसेन के साथ छद्मवेष धारण करके उसके पास आते हैं। वे कृष्ण मूर्ति को भेंट करने के लिए मीरा को एक कण्ठहार देकर चले जाते हैं। उनके चले जाने पर भोजराज कण्ठहार पर अकबर का नाम देखकर क्रुद्ध होता है और मीरा को आत्महत्या करने का आदेश देता। प्राणत्याग करने की इच्छा से मीरा वानस नदी के जल में गिरने को उद्यत होती हैं, तभी कृष्ण का भक्त रामदास उनको आकर बचाता है। वह मीरा को अपने आश्रम में ले जाता है। रामदास उनको अपने धर्म में दीक्षित करता है। इसी बीच भोजराज पश्चात्ताप करते हैं। अपनी मां और भाई के वारंवार आग्रह करने पर भी वे पुनर्विवाह को उद्यत नहीं होते, अपितु मीरा को ही पुनः मेवाड़ लाने का प्रयत्न करते हैं। वे संन्यासिवेष धारण करके वृन्दावन जाते हैं। वे मीरा से कृष्ण भक्ति की चर्चा करके, कुछ समय पश्चात् अपना रूप प्रकट करके उनसे मेवाड़ लौटने को प्रार्थना करते हैं। पतिव्रता मीरा पति की आज्ञा का उल्लंघन न करके अनिच्छा से भोजराज के साथ मेवाड़ लौट आती है। भोजराज की मृत्यु के अनन्तर उनका छोटा भाई विक्रमदेव मेवाड़ का राजा होता है। उसको मीरा की कृष्णभक्ति अच्छी नहीं लगती। वह मीरा के जीवन का अन्त करने के लिये उनके पास विष भेजता है। जब विषपान से भी मीरा की मृत्यु नहीं होती, तब वह अपशब्दों का प्रयोग करके उनको राजप्रासाद से निष्कासित कर देता है। मीरा वृन्दावन में रूपगोस्वामी के आश्रम में आती हैं। वे दिन-रात कृष्णभक्ति में लीन रहती हैं। कालान्तर में मेवाड़ से एक ब्राह्मण आकर उनको बतलाता है कि आपके मेवाड़त्याग के पश्चात् मेवाड़राज और मेवाड़ की प्रजा दुःखी है। वह मीरा से मेवाड़ लौटने को प्रार्थना करता है। यह सुनकर मीरा कृष्ण से अनुमति पाने के लिये ध्यानमग्न हो जाती हैं और उस ब्राह्मण के देखते-देखते ही कृष्णमूर्ति में विलीन होने लगती हैं। वे मेवाड़वासियों के लिये मंगलकामना करती हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

*भारत-लक्ष्मी*

'भारत-लक्ष्मी' नाटक झांसी की रानी लक्ष्मीवाई के देशप्रेम और त्यागमय जीवन पर आधारित है। नाटक की कथावस्तु १० अंकों में निवद्ध है।

लक्ष्मीबाई के शिशु पुत्र की मृत्यु हो जाने से राजा गंगाधर राव दुःखी हैं। राज्य की रक्षा और वंश चलने की आशा से रानी एक शिशु गोद ले लेती हैं। गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात् 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के आदेशानुसार दत्तकपुत्र राज्याधिकार नहीं प्राप्त करता है। अतः रानी को झांसी-राज्य छोड़ने का आदेश मिलता है। रानी प्रण करती हैं कि लड़ते-लड़ते प्राण दे दूँगी, परन्तु अपनी झांसी कभी नहीं छोड़ूंगी। लक्ष्मीबाई प्रतिज्ञा करती हैं कि जब तक मैं झांसी की सर्वाधिष्ठात्री महारानी नहीं बन जाऊंगी, तब तक चोटी नहीं करूंगी। उनका कर्मचारी दुलाजि उनके साथ विश्वासघात करके अंग्रेजों से जा मिलता हैं और सब रहस्य उनको बता देता है। वे मोरोपन्त ताम्बे, लक्ष्मणराव और जवाहर सिह के साथ मिलकर युद्ध की तैयारियां करती हैं। वे चिमाबाई, मन्दार, काशी आदि के सहयोग से 'रानी-लक्ष्मी-नारी-सेनावाहिनी' का संघटन करती हैं। रानी अपने दस वर्षीय पुत्र दामोदर को पीठ पर बांधकर शत्रुओं को पराजित करती हुई ग्वालियर दुर्ग पहुँचती हैं। अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुये वे युद्धरत होती हैं और वीरगति प्राप्त करती हैं।

## वैष्णव भक्तों पर आधारित नाटक

*महाप्रभु-हरिदासम्*

'महाप्रभु-हरिदासम्' नाटक महाप्रभु के प्रिय शिष्य हरिदास के पावन जीवन पर आधारित है। हरिदास जाति से यवन था, किन्तु महाप्रभु के धर्म का उसने आदर किया। उसने अपने जीवन की चिन्ता न करके अनेक कष्ट सहकर भी उनके धर्म का अनुयायी बना रहा। नाटक की कथावस्तु सात अंकों में निवद्ध है।

रामचन्द्रखान हरिदास के यश से ईर्ष्या करते हुए उसको भक्तिमार्ग से च्युत करने के लिये अपने राज्य की सुन्दरी लक्षहीरा को उसके समीप

भेजते हैं। हरिदास साधना के उद्यान के एकान्त में हरिनाम जपने में मग्न हैं। लक्षहीरा तीन दिन तक उनको विचलित करने का प्रयत्न करती है। अन्त में हरिदास की भक्ति के प्रभाव से और हरिनाम के महात्म्य को सुनने से स्वयं हरिभक्त हो जाती है। हरिदास ईश्वर की महिमा के विषय में भक्तों को उपदेश देते हैं। अनेक व्यक्ति उनके भक्त बन जाते हैं। 'फुलिया' ग्राम के शासक सम्राट् हुसेन शाह हरिदास की भक्ति से क्रुद्ध होकर उनको बन्दी बनाने का आदेश देते हैं। रहीम और करीम नामक दो राजपुरुष उनको बन्दी बनाकर कारागार ले जाते हैं। वहां अनेक कष्ट सहकर भी वे भगवान् की कृपा से बच जाते हैं। कारागार में भी उनके मुख पर अपूर्व तेज विद्यमान रहता है। हरिदास को विचारालय में उपस्थित किया जाता है। मुलुकपति उनसे हिन्दुधर्म छोड़ने और मुसलमान धर्म अपनाने का हठ करता है। हरिदास अपनी हरिभक्ति पर दृढ रहते हैं। अन्त में काजिगोडाई आदेश देता है कि उनको बाइस हट्टस्थानों पर वेत्राघात से जर्जरित करके उनको जीवनलीला समाप्त करके उनको यमलोक भेज दिया जाय। राजकर्मचारी इक्कीस हट्टस्थानों पर उनको बेंत से पीटते हैं। बाइसवें हट्टस्थान पर जब वे नहीं मरते, तब राजकर्मचारी उनको नदी में फेंक देते हैं। वहां महाप्रभु का अविर्भाव होता है। महाप्रभु और हरिदास हर्षविभोर होकर नृत्य करने लगते हैं। हरिदास को ज्ञात होता है कि मेरी रक्षा करने के लिये महाप्रभु ने वेत्रप्रहार स्वयं अपनी पीठ पर सहे। चाँद काजी की आज्ञा की अवहेलना करते हुये हरिदास अपने भक्तों के साथ कीर्तन करते हुये उसके निवास स्थल पर पहुँचते हैं। चाँद काजी महाप्रभु का भक्त बन जाता है। हरिदास प्राणियों के उद्धार और मुक्ति के सम्बन्ध में महाप्रभु से वार्तालाप करते हैं। हरिदास महाप्रभु के बिना इस संसार में नहीं रह सकते। वे महाप्रभु से पहले ही प्राणत्याग करने का निश्चय करके भोजन ग्रहण नहीं करते। वे प्रासाद का भी केवल एक ही कण ग्रहण करते हैं। महाप्रभु को जब इस बात की सूचना मिलती है, तब वे शीघ्र ही हरिदास के समीप पहुँचते हैं और उनको समझाते हैं। किन्तु हरिदास का दृढ निश्चय जानकर वे उसके मार्ग में बाधक नहीं बनते। हरिदास स्वेच्छया मृत्यु का वरण करते हैं। उनकी मृत्यु से महाप्रभु तथा उनके भक्तगण शोकसागर में डूब जाते हैं। महाप्रभु उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

## विमल-यतीन्द्रम्

'विमल-यतीन्द्रम्' वैष्णवाग्रगण्य भगवदावतार रामानुज के जीवनचरित पर आधारित नाटक है। नाटक की कथावस्तु १७ अंकों में निबद्ध है। इसमें रामानुज की नैसर्गिक प्रतिभा, उपनिषदों के प्रति श्रद्धा और गुरु भक्ति प्रपञ्चित है।

रामानुज गुरु के समीप विद्याध्ययन करते हैं। उनके गुरु यादव-प्रकाश छान्दोग्य उपनिषद् के एक मन्त्र के अंश को अशुद्ध व्याख्या करते हैं। उसको सुनकर रामानुज दुःखी होते हैं। वे गुरु के समक्ष उस मन्त्र की अन्य प्रकार से व्याख्या करते हैं। जिसे सुनकर गुरु रामानुज को इहलोकलीला समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं। गुरु की कुमन्त्रणा जान-कर वे गौण्डारण्य चले जाते हैं। वहां लक्ष्मीनारायण व्याघदम्पती के रूप में आकर उनको रक्षा करते हैं। वैष्णवधर्म प्रचारक यामुनाचार्य रामानुज को देखकर हर्षित होते हैं। उनके हृदय में विश्वास हो जाता है कि वे ही हमारे धर्म का प्रचार करने लिये उपयुक्त विद्वान् हैं। कावेरी नदी के तट पर स्थित श्मशान में यामुनाचार्य का मृतशरीर रखा हुआ है। उनकी तीन अंगुलियां टेढ़ी हैं। यामुनाचार्य के शिष्य वररंग से उनको यामुनाचार्य की तीन इच्छाओं के विषय में ज्ञान होता है। उनकी प्रथम इच्छा थी ब्रह्मसूत्र के वैष्णवभाष्य की रचना। द्वितीय, अज्ञानी मनुष्यों में द्राविड आम्नाय का प्रचार करना; तृतीय महामुनि पराशर और शुष्क उपनाम रखकर दो उत्तर साधकों को तैयार करना। रामानुज उनकी तीनों इच्छाओं को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करते हैं। यामुनाचार्य को टेढ़ी अंगलियां तत्काल सीधी हो जाती हैं।

रामानुज अपने भक्तों के साथ भारत में भ्रमण करके वैष्णव धर्म का प्रचार करते हैं। उनके भूतपूर्व गुरु यादवप्रकाश उनकी कीर्ति सुनकर उनके शिष्य हो जाते हैं। मुस्लिम-बौद्ध-जैन आदि सभी मतावलम्बी उनके भक्त हो जाते हैं। वे उपनिषदों की व्याख्या करते हैं। ब्रह्मसूत्र के भाष्य की रचना करते हैं। वे महात्मा गोष्ठीपूर्ण से रहस्यमन्त्र सीखकर उसको सभी लोगों को सिखाते हैं, जिससे सभी का कल्याण हो सके। वे चण्डाल रमणी और यवन कन्या को अपने धर्म में स्वीकार कर लेते हैं और यामुनाचार्य की तीनों इच्छायें पूर्ण करते हैं।

## दीनदास-रघुनाथम्

'दीनदास-रघुनाथम्' रघुनाथदास गोस्वामी के जीवन पर आधारित नाटक है। नाटक की कथावस्तु १२ अंकों में विभक्त है।

नाटक के प्रारम्भ में नान्दी पाठ द्वारा रघुनाथ की स्तुति की जाती है। रघुनाथ संसार से विरक्त हैं। उनका मन सांसारिक वस्तुओं में लगाने के लिये उनके पिता विविध प्रयत्न करते हैं। रघुनाथ की प्रवृत्ति संसार का त्याग करने की है। उनकी इस प्रवृत्ति को देखकर उनकी पत्नी व्याकुल हो जाती है। मुसलमान भूस्वामि चौधुरी अपनी कूटनीति से रघुनाथ के पिता और चाचा की सम्पति हरण कर लेता है। वे लोग घर छोड़कर भाग जाते हैं। रघुनाथ अपने को शत्रु पक्ष को समर्पित कर देता है। कारागर में रघुनाथ के देदीप्यमान मुख को देखकर और उनके निर्भीक तथा सत्य व्यवहार से मुग्ध होकर चौधुरी उनको मुक्त करके उनकी समस्त सम्पत्ति लौटा देता है। रघुनाथ का मन संसार में नहीं लगता है। एक दिन वे सभी प्रहरियों की दृष्टि से ओझल होकर अकस्मात् घर छोड़कर चले जाते हैं। वे पाणिहाटि नामक स्थान पर पहुँचते हैं और नित्यानन्द से मिलते हैं। वहां वे महाप्रभु के दर्शन करते हैं। महाप्रभु के पुरी चले जाने पर वे उनकी शरण में जाने के लिये पुरी जाते हैं। मार्ग में दस्युदल उन्हें घेर लेता है। दस्युपति उनको मारने का प्रयत्न करता है, किन्तु दस्युपत्नी उनकी सौम्य आकृति और मधुर व्यवहार से आकृष्ट होकर उन्हें बचा लेती है। रघुनाथ दस दिन पैदल चलकर पुरी पहुँचते हैं। इन दस दिनों में वे केवल तीन बार ही भोजन ग्रहण करते हैं। महाप्रभु उनकी इस भक्ति से प्रसन्न होते हैं। रघुनाथ के पिता उनके पास पर्याप्त धन तथा एक रसोइये को भेजते हैं। रघुनाथ केवल थोड़ा-सा धन रखकर शेष सब धन तथा रसोइये को लौटा देते हैं। जो धन वे अपने पास रखते हैं, उससे महाप्रभु को भोजन करा देते हैं। महाप्रभु के महातिरोधान के पश्चात् रघुनाथ अपनी जीवनलीला समाप्त करने के उद्देश्य से वृन्दावन आते हैं। यहां पर उन्हें महाप्रभु के दो भक्त सनातन तथा रूप गोस्वामी मिलते हैं, जो रघुनाथ से अपना पथप्रदर्शन चाहते हैं। रघुनाथ उनका मार्गदर्शन करते हुये कठोर त्याग और तपोमय जीवन व्यतीत करते हैं। कुछ समय पश्चात् सनातन तथा रूप गोस्वामी की मृत्यु हो जाने के कारण रघुनाथ अपने एकाकी जीवन से ऊबने लगते हैं। रघुनाथ अपने

जीवन के अन्तिम दिनों में नित्यानन्द की पत्नी जाह्नवीदेवी से मिलते हैं और मिलकर हर्षित होते हैं। उन दोनों के नेत्रों से स्नेहाश्रु प्रवाहित होते हैं। जननी की स्तुति के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

## आंग्ल भाषा से रूपान्तरित नाटक

यतीन्द्र ने आंग्ल कवि शेक्सपियर के द्वारा विरचित 'ओथेलो' और 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' नाटकों का ओथेलो तथा वेनिस-वणिजम् नाम से संस्कृत भाषा में अनुवाद किया।

अंग्रेजी के 'ओथेलो' और 'मर्चेण्ट आफ् वेनिस्' से यतीन्द्र कृत 'ओथेलों' और 'वेनिस्-वणिजम्' में कतिपय विभिन्नतायें हैं। प्रथम, यतीन्द्र ने इन नाटकों के प्रारम्भ में शेक्सपियर की स्तुति की है। द्वितीय, उन्होंने नाटकों को संक्षिप्त किया है। उन्होंने प्रायः शृंगारित दृश्य छोड़ दिये हैं। जिन दृश्यों का वर्णन रुचिकर नहीं है, उनको भी छोड़ दिया गया है। उनके नाटकों के बीच-बीच में सुन्दर गीत गर्भित हैं।

आंग्ल भाषा के नाटकों का रूपान्तर करते समय यतीन्द्र का ध्येय था कि अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद के द्वारा संस्कृत नाटक-साहित्य और कला का संवर्धन किया जाय और उसकी विशेषताओं को ग्रहण किया जाय। रूपान्तर करते समय भी यतीन्द्र ने अपनी मौलिकता अक्षुण्ण बनाये रखी। इसका निदर्शन इन नाटकों के बीच-बीच में गीतों के समावेश से होता है।



तृतीय अध्याय

# कथानक - समीक्षा

यतीन्द्र के नाटकों को जीवन-चरितात्मक कहा जा सकता है। भारत-हृदयारविन्दम्, भारत-जनकम्, भारत-विवेकम्, विश्व-विवेकम्, भास्करोदयम्, भारत-राजेन्द्रम्, सुभाषसुभाषम्, देशबन्धु-देशप्रियम्, रक्षक-श्रीगौरक्षम्, निष्किंचन-यशोधरम्, अमर-मीरम्, प्रीति-विष्णुप्रियम्, भक्ति-विष्णुप्रियम्, आनन्द-राघम्, शक्ति-शारदम्, मुक्ति-शारदम् भारत-लक्ष्मी। विमल-यतीन्द्रम्, महाप्रभु-हरिदासम्, दीनदास-रघुनाथम् आदि इसी श्रेणी में आते हैं। अन्य नाटकों में मातृभूमि की गौरव गाथा है। इनमें देश को विभिन्न समस्याओं को पाठकों के समक्ष रखा गया है। महिममय-भारतम् और मेलनतीर्थ-भारतम् इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

## कथा-वस्तु संरचना

यतीन्द्र के नाटकों के कथानक की प्रमुख विशेषतायें हैं उनका सुगठित क्रमबद्ध और रोचक होना। सभी नाटकों के कथानक क्रमबद्ध तथा सुगठित हैं। घटनाओं को एक शृंखला में गूंथ देने में नाटककार का कौशल प्रकट हुआ है। कथा के मध्य से एक भी सूत्र हटा देने पर कथानक में कुछ कमी मालूम पड़ने लगती है। कथानक के सुघटन के लिये उन्होंने आवश्यक वस्तुओं का ग्रहण और अनावश्यक का त्याग किया है।

यतीन्द्र के नाटकों के कथानक रोचक हैं। कथानक को रोचक बनाने के लिये नाटककार ने आकस्मिक और अप्रत्याशित अलौकिक घटनाओं का संचयन किया है। घटनायें विलक्षण होने पर भी असंगत नहीं हैं। वे सम्भावना के क्षेत्र का उल्लङ्घन नहीं करतीं। यतीन्द्र के मातृभूमि विषयक नाटकों के कथानकों में सम्बद्धता का अभाव है। घटनाओं का बाहुल्य है। उनमें कथानक एक दूसरे से उत्पन्न होने वाली घटनाओं से संयोजित नहीं हैं। उन घटनाओं में तारतम्य या कारणकार्य सम्बन्ध नहीं है। वे केवल पात्रों के चारों ओर घूमती हैं। इन नाटकों में नाटककार का मुख्य उद्देश्य विविध कालों में भारत के माहात्म्य को प्रदर्शित करना था। इस कारण नाटककार

ने समयान्विति का ध्यान नहीं रखा। नाटककार आधुनिक आंग्ल नाट्य परम्परा से प्रभावित प्रतीत होता है, जिसमें अब समयान्विति का बंधन आवश्यक नहीं रह गया। समय और स्थान की अन्विति के बिना भी नाटक सफल हो रहे हैं[१]।

यतीन्द्र ने अपने सभी नाटकों में कथावस्तु का विन्यास छोटे-छोटे दृश्यों में किया है। अंकों का दृश्यों में विभाजन नई प्रणाली है। अभी तक संस्कृत साहित्य में जितने भी नाटक हैं, उनमें दृश्य-विभाजन अपवाद रूप से ही है। मुद्राराक्षस के कुछ अंकों का दृश्यों में विभाजन हुआ है, परन्तु सभी अंकों में दृश्य विभाजन नहीं हुआ है। नाट्य-सबंधी इस प्राचीन परम्परा को तोड़कर नाटककार नाट्यरचना में अधिक स्वातन्त्र्य का अनुभव करता है और उसकी रचना सफल होती है। यहां पर भी नाटककार पर आधुनिक आंग्ल नाट्य-साहित्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है[२]।

कथा-वस्तु-घटन में नाट्यकार ने प्राचीन और अर्वाचीन दोनों पद्धतियों का सम्मिश्रण किया है। प्राचीन नाट्य-परम्परा के अनुसार नाटककार ने नांटकों में प्रस्तावना, नान्दी, विष्कम्भक, प्रवेशक, भरतवाक्य आदि का समावेश किया है। नाट्य तत्त्वों के सम्बन्ध में वे भारतेन्दु के मत को आंशिक रूप से मानते थे। भारतेन्दु ने लिखा है—अब नाटक में कहीं आशीः प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं विलोभन, कहीं संफेट, कहीं पंचसन्धि की कोई आवश्यकता नहीं रहीं[३]। यतीन्द्र ने विलोभन और संफेट आदि तत्त्वों का कहीं प्रयोग नहीं किया, किन्तु कथानक की अधिकारिक तथा

---

1. The unities of place and time, are no more than formal conventions, dictated in part by the real needs of the theatre' but capable of being frequently broken without disaster.'

   The Anatomy of Drama by Marjorie Boulton, p.14

2. There seems to be an escape from the unchanging rules which uptil now presided over the drama, by which I mean the division into clear-cut acts with an unfolding of the plot and a denouement·

   Twentieth Century Drama by Bamber Gascoigne, p. 9

३. भारतेन्दु ग्रन्थावली; भाग १, पृष्ठ ७२२

प्रासंगिक कथाओं को कलात्मक ढंग से संगठित और सुयोजित सन्ध्यंगों के ऊपर नाटककार ने ध्यान नहीं दिया किन्तु पंचसन्धियों, कार्यावस्थाओं और अर्थप्रकृतियों का निर्वाह हुआ है।

भक्तिपरक नाटकों के नायकों का ध्येय संसार के कष्टों को दूर कर मुक्ति पाना है। वे प्राणियों के दुःख-निवृत्ति का उपाय सोचते हैं एवं विवाह को अपने मार्ग का बाधक समझते हैं। या तो वे वैवाहिक बन्धन में बंधने से पूर्व घर से निकल जाते हैं या विवाह हो जाने पर भी पत्नी को छोड़कर प्रव्रज्या ले लेते हैं और वन में जाकर घोर तप करते हैं। अनेक नाटकों में नायक दस्युओं से आक्रान्त हो जाता है। उसके प्राणों की आशा नहीं रहती। तभी दस्यु पत्नी का ममत्व जाग्रत् हो जाता है और वह उसकी रक्षा करती है। अनेक स्थलों पर नायक अथवा नायिका के आपत्ति-ग्रस्त होनेपर भगवान् किसी न किसी रूप में प्रकट होकर उसकी रक्षा करते हैं।

भारतीय नेताओं पर आधारित नाटकों के नायक देश-सेवा करते हुये अपना जीवन त्याग देते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य देश का उत्थान करना है।

## अलौकिकता[1]

यतीन्द्र के सभी नाटकों में अलौकिक घटनाओं का सफल संयोजन किया गया है। पात्रों के कठिनाई में पड़ने पर किसी न किसी रूप में देवता अवतरित होकर उनकी रक्षा करते हैं। सिद्धार्थ के निष्क्रमण में देवताओं का हाथ है, जैसा छन्दक के कथन से ज्ञात होता है—

देवताः सर्वा निश्चितं राजपुत्रस्य सहाया आसन्। तस्य निर्गमनसमये राजपुरी तमःपिच्छला जाता। भीम-कठोर-प्राचीरसन्निबद्ध-महासंरक्षण द्वाराणि स्वत एवोद्घटितानि। संकेतमात्रेण यथाऽहम् अचलं तथा कण्टकोऽपि। हृतचेतनावावां कायमग्रेसरीकृत्य कथमपि न चलनात् परिभ्रष्टौ[2]।

माता गौतमी के नेत्रों की ज्योति लुप्त हो जाने से यशोधरा स्वयं अपनी दिव्य शक्ति से उनके नेत्रों को पुनः ज्योति प्रदान करती हैं[3]।

---

1. Supernatural Elements.

२-३ निष्कंचन-यशोधरम्, पृष्ठ ४६, ६७

शक्ति-सारदम् नाटक कालीमन्दिर से लौटते समय सारदादेवी पथ भूलकर अकेली रह जाती हैं। उसी समय कालु बाग्दी दस्यु उन्हें घेर लेता है। किन्तु सारदामणि की मधुर वाणी सुनकर दस्युपत्नी का वात्सल्य उमड़ आता है और वह उनको पुत्री मानकर उनकी रक्षा करती है। दस्यु उस दिन से अपनी हीन-वृत्ति छोड़ देता है। इस आकस्मिक परिवर्तन में ईश्वर मातृ रूप में सारदामणि की सहायता और कालु बाग्दी को दस्युवृत्ति से निवृत्त करता है। दस्यु कहता है—

स एव भगवान् अद्य मां समुद्धतुं मातुराकारेण समागतो नु किम्? पूर्वोक्तेभ्योऽप्यहं पाषण्डतम इति हेतोः पुरुषरूपं विहाय कोमलमधुरनारीरूपं भगवता घृतं किम्[१]?

विमल-यतीन्द्रम् नाटक में रामानुज के प्राणों की रक्षा करने के लिये लक्ष्मी और नारायण व्याधपत्नी और व्याध का रूप धारण करके आते हैं। व्याध तथा व्याधपत्नी प्यासी हैं। उनकी तृषा शान्त करने के लिये रामानुज जल लेने जाते हैं। अकस्मात् उनको एक वापी दिखलाई पड़ती है, जो पहले नहीं थी। उससेजल लाकर रामानुज उनको जल पिलाते हैं। वे जब पुनः जल लेकर लौटते हैं, तब तक व्याध दम्पती अन्तर्धान हो जाते हैं[२]।

'अमर-मीरम्' नाटक में मीरा का देवर विक्रमदेव मीरा के लिये कालकूट विष भेजता है। मीरा उसे पी लेती हैं किन्तु भगवान् कृष्ण की कृपा से विष का उनपर प्रभाव नहीं पड़ता अदृष्ट रहकर भगवान् कृष्ण स्वयं गरल पान करते हैं[३]। अमर-मीरम् के अन्तिम अंक में इसी प्रकार का आश्चर्यजनक दृश्य दृष्टिगोचर होता है, जब मीरा मेवाड़ से आये हुये ब्राह्मण के समक्ष श्रीकृष्ण की मूर्ति में समा जाती हैं[४]।

'प्रीति-विष्णुप्रियम्' नाटक में विष्णुप्रिया अपने गृह-मन्दिर में स्थित कृष्ण भगवान् की मूर्ति के सम्मुख गौरांग महाप्रभु से विवाह करने की कामना करतीं हैं। श्रीकृष्ण प्रकट होकर उनको आशीर्वाद देते हैं—तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण होगा।

---

१. शक्ति सारदम्, ,, २४

२. विमल - यतीन्द्रम्, पृष्ठ १५

३-४. अमर-मीरम् ,, ३३, ५०

राधारमण:– अथमहं श्रीकृष्णस्त्वां प्राप्तोऽस्मि। विष्णुप्रिये! विरम विरमाश्रुसेकात्। देवि! आसीस्त्वमेव युगयुगान्तरे गोलोकविहारिण: प्राणप्रिया। कथमद्यस्वस्वरूपं विस्मरसि।...स्वस्वरूपं विजानीहि, स्थिरा भव अचिरेणैव कालेन मनोरथस्तव संपूरयिष्यते[1]।

भक्ति-विष्णुप्रियम् नाटक में महाप्रभु गृहत्याग के समय कालरात्रि के प्रभाव से विष्णुप्रिया को सुला देते हैं क्योंकि उनको यह विदित था कि धीरा होने पर भी विष्णुप्रिया उनके विरह को सहन नहीं कर सकेगी[2]।

महाप्रभु-हरिदासम् में राजकर्मचारी जब हरिदास को २२ स्थानों पर ले जाकर बेंत से पीटते हैं तब महाप्रभु अवतीर्ण होकर हरिदास की रक्षा करते हैं और स्वयं वेत्राघात सहते हैं। उनकी पीठ पर बेंत के चिन्ह होते हैं। वे हरिदास से कहते हैं–

यदा यवनास्त्वां मारयितुं द्वाविंशतिस्थानेषु वेत्राघातजर्जरितमकुर्वन् तदा तान् कर्तयितुं चक्रहस्त: अहं वैकुण्ठादवातरम्। यदा ते सर्वप्रयत्नै: त्वां मारयितुमयतन्त, तदा त्वं तेषाम् अमंगलनिवारणाय ध्यानपरोऽभव। यतस्त्वं तेषां कुशलकाम आसी: ततो मे चक्रमपि विफलमजायत। किन्तु वेत्राघातो यथा त्वां न पीडयेत्, तदर्थम् अहं स्वपृष्ठेन तं सर्वं परिगृहीतवान् स्वचक्षुषा मम पृष्ठे तत्प्रमाणं पश्य। त्वद्दु:खवहनापारगोऽहं झटित्येव वैकुण्ठात् धराधाम आगतवान्[3]।

इस नाटक के पंचमांक में जब माधव नित्यानन्द तपस्वी को आहत कर देता है उस समय चारों ओर अन्धकार फैल जाता है और सहसा महाप्रभु प्रकट होकर उसकी रक्षा करते हैं[4]।

'मुक्ति-सारदम्' नाटक के पंचमांक में 'विवेकानन्द मां सारदामणि से धर्मप्रचारार्थ विदेश जाने की अनुमति चाहते हैं। सारदामणि उनको स्वीकृति नहीं देतीं। उस समय रामकृष्ण की वाणी उन्हें सुनाई पड़ती है। वे उनसे विवेकानन्द को विदेश जाने की स्वीकृति देने के लिये कहते हैं।–

देवि विश्वकल्याणकारिणि सारदे सारदायिनि! कथं भीता जायसे।

---

१. प्रीति-विष्णुप्रियम् ,, १७

२. भक्ति-विष्णुप्रियम् ,, ७

३-४. महाप्रभु हरिदासम्, पृष्ठ ४३; ४६

बिभेषि किमु सागरात् किमुत साध्वि वैदेशिकाद्
विलोक्य दृशा हि मामयमहं पुरस्ते स्थितः।
इमं वरनरोत्तमं तव सुतं नरेन्द्राह्वयं
सुरासुरनरेषु को जगति रोद्धुमस्ति क्षमः[१] ॥८६॥

## शकुनापशकुन[२]

यतीन्द्र के प्रायः नाटकों में शकुनापशकुन की परम्परा तथा पात्रों पर उनका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। निष्किंचन-यशोधरम् में सिद्धार्थ के महाविनिष्क्रमण के पूर्व यशोधरा रात्रि में भयंकर स्वप्न देखती हैं। वह कहती हैं –

यशोधरा (उत्स्वप्नायते) अहो ! किं नु खल्विदम् ? कथं पर्वत उत्पाटितः भीमप्रभंजनेन वृक्षाश्च सर्वे धराशायिनः कृताः ? नैव भाति ज्योतिष्कमण्डली। कथं कथं नाम केशा दक्षिणे करे पतन्ति मुकुटं चाधः स्खलति करपादं छिन्नम्। विनग्नदेहस्य पत्युर्मे मुक्ताहारस्त्रुटितः, मणयश्चेतास्ततो लुटन्ति[३]।

'आनन्द-राधम्' नाटक में अक्रूर जब कृष्ण को लेने वृन्दावन जाते हैं तो मार्ग में अनेक शुभ शकुनों को देखकर उनका मन प्रसन्नता से भर जाता है। वे कहते हैं —

अहो कृपा श्री श्री भगवतः। यात्रारम्भतः सर्वत्र दृष्टं शुभसूचकं दृश्यम्। प्रथममेव दृष्टं खंजन-युग्मम्; ततः चक्रवाकयुगलम्। मस्तकोपरि उड्डीयमानः शंखचिल्लः। शतशो दृष्टाः पन्थानमुभयतः सवत्सा धेनवः। सर्वोपरि भगवान् स्वयं स्ववक्षसि मां संरक्ष्य गोकुलाभिमुखी करोतीव[४]।

प्रीति-विष्णुप्रियम् नाटक में विष्णुप्रिया के विवाहोत्सव पर उनका पैर फिसल जाता है। इसको अशुभसूचक समझकर वे आगे न जाकर वहीं बैठ जाती हैं।

विष्णुप्रिया — नाथ ! कथं मे पादः स्खलति, हा हतभाग्यास्मि[५]।

---

१. मुक्ति सारदम्, ,, ३०
2. Elements of Superstition
३. निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ ३४-३५
४. आनन्दराधम्, पृष्ठ ७१ ५. भक्ति-विष्णुप्रियम्, पृ० ८

महाप्रभु के निष्क्रमण के समय उनको अपने पैर फिसलने का स्मरण हो आता है। वे पहले ही इसको अपशकुन समझ रही थीं। महाप्रभु के गृहत्याग से उनकी इस संबंध में धारणा और भी दृढ़ हो जाती है।

भक्ति-विष्णुप्रियम् नाटक में महाप्रभु के गृहत्याग के समय विष्णुप्रिया स्वप्न देखती हैं और कहती हैं —

'नाथ ! कदापि मां मा परित्यज। सर्वं सोढुं समर्थोऽहं न तु त्वद्विरहम्[१]।'

## कथावस्तु में परिवर्तन

यतीन्द्र ने प्राचीन और समकालीन विषयों पर नाटक लिखे। प्राचीन कथानकों से सम्बद्ध नाटकों की कथा-वस्तु तत्संबंधी नाटकों तथा काव्यों आदि से ली गई है। नाटककार ने कहीं-कहीं उनमें परिवर्तन तथा परिवर्धन किया है। 'निष्किंचन-यशोधरम्' की कथावस्तु अश्वघोष द्वारा रचित 'बुद्धचरित' के आधार पर प्रस्तुत की गई है। अन्तर केवल इतना है कि 'बुद्धचरित' में सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् यशोधरा सिद्धार्थ के अश्व कन्थक को डांटती हैं। जब घोड़ा हिनहिनाता है तो यशोधरा कहती हैं कि अब हिनहिनाने से क्या लाभ ? जब सिद्धार्थ गृहत्याग कर रहे थे तब तुम गूंगे बन गये थे। यदि तब हिनहिनाते और मुझे जगा देते तो मैं उन्हें रोक लेती। 'निष्किंचन-यशोधरम्' में यशोधरा केवल विलाप करती है, अपने भाग्य को कोसती है, परन्तु कन्थक से कुछ नहीं कहती हैं।

'अमर-मीरम्' नाटक की कथा-वस्तु मीरा के जीवनचरित पर लिखी गई सभी पुस्तकों की कथा-वस्तु से साम्य रखती है। आधुनिक कवियित्री पंडिता क्षमाराव ने मीरा के जीवनचरित पर 'मीरा-लहरी' खण्डकाव्य रचा है। 'अमर-मीरम्' में नाटककार ने मीरा के विवाहोत्तर जीवन को चित्रित किया है, किन्तु 'मीरा-लहरी' मीरा के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित है।

'अमर-मीरम्' में मीरा के पति की मृत्यु के पश्चात् उसका देवर विक्रमदेव उसको कठोर यातना देता है और अन्त में उसे राजप्रासाद से निकाल देता है। मीरा वृन्दावन आकर कृष्ण की उपासना करती है और अन्त में कृष्ण में मग्न हो जाती है। 'मीरा लहरी' में मीरा के देवर जब

१. भक्ति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ ८

मीरा की कृष्ण पूजा वन्द कर देते हैं तो वह विवश होकर तुलसीदास को पत्र लिखकर उनके निर्देश से बन्धुजनों को त्यागकर वृन्दावन में वास करती है।

## पूर्वसूत्र

यतीन्द्र के नाटकों में अनेक घटनायें पूर्ववर्ती ग्रन्थों की घटनाओं से मिलती-जुलती हैं। 'आनन्द-राधम्' में वृन्दावन में राधाकुञ्ज में राधा तुलसी की पूजा कर रही हैं। कृष्ण गोपदेवता नामक सखी का वेष धारण करके उनके समीप आते हैं। सखी वेषधारी कृष्ण राधा के सम्मुख कृष्ण की निंदा करते हैं। राधा कृष्ण की निंदा नहीं सुन सकतीं। अनेक तर्क करके वे अपनी सखी के वचनों का विरोध करती हैं। राधा के क्रुद्ध होने पर कृष्ण अपना रूप प्रकट कर देते हैं। यह घटना कालिदास कृत 'कुमार-संभव' के पंचम सर्ग की उस घटना से साम्य रखती है। जिसमें शिव ब्रह्मचारी का वेष धारण करके पार्वती के पास आते हैं। शिव को पतिरूप में प्राप्त करने के उद्देश्य से तपस्विनी पार्वती से वे शिव की निन्दा करते हैं। पार्वती शिव की निंदा न सुनकर उनसे तर्क करके, क्रुद्ध होकर वहां से अन्यत्र जाने को उद्यत होती हैं। तभी शिव अपना रूप प्रकट कर देते हैं।

"शक्ति-सारदम्" नाटक में रामकृष्ण सारदामणि को उपदेश देते हुये कहते हैं—

पथ्यानामुपदेशानां लोके दाता दुर्लभः।
श्रोता ततोऽपि विरलः पालको नावलोक्यते ॥[1]

प्रस्तुत पद वाल्मीकि रामायण में मारीच के द्वारा रावण से कहे गये निम्न श्लोक के समान है—

सुलभाः पुरुषाः राजन् ! सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

## संवाद

संवाद नाटकों के महत्वपूर्ण अंग हैं। संवाद से नाटक की कथा का निर्माण और विकास होता है। अतः संवाद ऐसे होने चाहिये, जो नाटक

१. शक्ति-सारदम्, पृष्ठ ८

में सजीवता और रोचकता उत्पन्न करें। नाटकीय संवादों के गुण बतलाते हुए भारतेन्दु लिखते हैं—'ग्रन्थकर्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रों की बातचीत विरचित करे कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही उसकी बातचीत भी विरचित हो।········पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय नाटक का प्रधान अंग है। नाटक में वाक्प्रपंच एक प्रधान दोष है।···थोड़ी सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही नाटक-जीवन की महोषधि है।'[१]

यतीन्द्र के नाटकों में संवाद सजीव और रोचक हैं। संवाद छोटे-छोटे हैं, जिनसे नाटकीय चारुता में वृद्धि होती है। लम्बे संवादों का प्रयोग कथा-वस्तु की गति को शिथिल करता है। अतः यतीन्द्र ने ऐसे संवादों का प्रयोग नहीं किया है। यतीन्द्र के नाटकों में संवाद कथा को शृंखला-बद्ध करके उसे गति प्रदान करते हैं। संवादों की भाषा पात्रानुकूल है। इनके संवाद पात्रों के मनोभावों को भली-भांति व्यक्त करने में समर्थ हैं। इनके नाटकीय संवाद त्वरित गति से कथा का विस्तार करते हैं। 'अमर-मीरम्' से एक उदाहरण देखिये—

'उदय देवो (सोपहासम्) पश्य भ्रातः! सेयमस्माकं महामहीयसी परमभक्तिमती अग्रजाया श्रील-श्रीमीरासुन्दरी तस्याश्चेतोहरं गिरिधरम् आद्रियते। अहोस्पर्घाशीला नारी! या वदति भगवान् तस्या द्वारि प्रेमभिक्षुकरूपेण तपश्चर्यां विधत्ते इति[२]।'

विक्रमदेव-भगिनि! सत्यमसहनोयमेतत्। तथापि किंचिद् वदामि। (मीरामुद्दिश्य) अयि नर्तकीप्रवरे परपुरुषसंगकारिणि! धर्मस्य नाम्ना करोष्यनाचारं नित्यसंप्रसारितम्? दूरीकुरु तव गदाधर-गोपाल-प्रेमिकम्। गरलपूरित-हृदया वदन-सरोजान् मा कुरु संगीतामृतवर्षणम्। अद्य प्रभृति न केवलं तव धार्मिकसंगो जायते निषिद्धः, किन्तु गोपाल-पूजनमपि। विशेषतः सुकौशल-प्रेमोन्मादादिनृत्यम्। शाक्त-परिवारे कथं विष्णूपासनं वा[३]?

श्रीमीरा—महाराज, देवर! शान्तो भव। कथमकारणं मह्यं क्रुध्यसि[४]?

उदयदेवी—अकारणम्? नितान्त-स्वार्थान्धायाः कुहक-जाल विस्तार एषः[५]।

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ ७३४, भाग १

२-३. अमर-मीरम्, पृष्ठ ३४, ३५

४-५. ,, ,, ३५, ३५,

प्रस्तुत संवाद कथा में गति प्रदान करने के साथ - साथ उदयदेवी, विक्रमदेव और मोरा का चरित्र भी चित्रित किया गया है।

छोटे-छोटे और त्वरित गति से होने वाले संवादों का एक उदाहरण देखिये—

राजमाता—तात ! कथं पूज्यपादां अग्रजपत्नीं वृथा व्यथयसि ?

विक्रमदेव—साऽपि पूज्यपादा या मण्ड-देवतासकांश कटितट-दत्त-हस्ता चटुलं चुटुलं मृदु-झम्प-कम्पं नृत्यति ?

राजमाता—मृतपुत्रस्य मम वधूं प्रति माद्य त्वमीदृशं निन्दावाक्यं समुच्चारय।

उदयदेवी—मातः ! मृतपुत्रं प्रति स्नेहो यथा त्वया प्रकटनीयः तथा जीवित-पुत्रस्यापि मनोव्यथा त्वया हरणीया।[१]

इन संवादों की भाषा सुलभ और प्रवाहशील है।

यतीन्द्र के नाटकों के संवाद रहस्योद्घाटक हैं। 'निष्किंचन-यशोधरम्' के अनुसार राहुल कपिलवस्तु से आये हुये संन्यासी ( सिद्धार्थ ) को देखकर पूछता है—मां ! यह कौन है। उनको देखने मात्र से ही मेरे मन में महान् हर्ष उत्पन्न हो रहा है।

राहुल—( बुद्धदेवं निर्दिश्य ) मातः। कोऽयमतिदूरे याति श्रमण-श्रावकपरिवृतः ? तस्य दर्शन मात्रेण मे मनसि महान् हर्षो जातः।

अस्मिन् मे मनो मातः। परं स्निह्यति ! तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि कोऽसाविति ?

राहुलमाता—शृणु पुत्र ! असावेव ते पिता[२]।

प्रस्तुत संवादों में राहुल को अपने पिता बुद्धदेव का परिचय प्राप्त होता है। साथ ही राहुल की मनोवैज्ञानिक भावनाओं का सूक्ष्म परिचय मिलता है। वह संन्यासी के रूप में अपने पिता को नहीं जानता, किन्तु अकस्मात् ही उस श्रमण के लिये उसके मन में स्नेह उत्पन्न होता है।

यतीन्द्र ने यद्यपि सर्वत्र पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है, तथापि इनके एक-दो नाटकों के संवादों में यह दोष है कि वे अपने अनुकूल भाषा

---

१-२ अमर-मीरम्, पृष्ठ ३७, ५८

नहीं बोलते। दस्युपत्नी सारदामणि को देखकर बड़ी आलंकारिक भाषा बोलती है। वह कहती है—

अहो ! पश्य, कमलकोमलं पल्लवपेलवमालक्तकरागरंजितं तव पादयुगलं घूलिघोरणिपरिचुम्बितं स्वेदाक्तं सद् शिशिरसिक्तम् अलिकुलनिषेवितं विकचपंकजद्वयमिव परिशोभते।[1]

दस्युपत्नी के मुख से इतनी सौन्दर्यपूर्ण, अलंकारयुक्त भाषा अस्वाभाविक प्रतीत होती है।

यतीन्द्र के नाटकों में कहीं-कहीं लम्बे-लम्बे भाषणों का बाहुल्य और दीर्घ स्वगत का प्रयोग नाटकीय गति में शिथलता उत्पन्न कर देते हैं।

### गीतों का स्थान

यतीन्द्र नाटककार और कवि होने के साथ ही संगीतकार थे। संगीत उनकी रग-रग में समाया था। उन्होंने लिखा है संगीत ही प्राणियों की मर्मवाणी है—

संगीतमेव मर्मवाणी प्राणिनाम्।…

संगीतमेव स्वल्पभाषया मानवहृदयस्य सूक्ष्मतमभावप्रकाशिसुचिरस्थायि स्वत एव जगज्जनमनोहारि च।[2]

तत्त्वकंटकितं ज्ञानं संगीतं मधुकोमलम्।
संगीतमुच्च-तत्त्वात्मज्ञानं च ललितामृतम्॥
ओङ्कारो ज्ञानसंगीत-साधनापरमद्युतिः।
निखिलं भुवनं व्याप्य तद् बहिश्च सदा स्थितः[3]॥

संगीत की अवनति देखकर यतीन्द्र का हृदय क्षुब्ध होता है। 'महिममय भारतम्' में विकलांग नर-नारी के रूप में राग-रागिणी को दिखाकर नाटककार ने यह दिखलाया है कि सामाजिकों की प्रशस्ति के अभाव में संगीत विकलांग हो जाता है। जीवन को सरस बनाने के लिये संगीत अनिवार्य है। यतीन्द्र के नाटकों में गीतों का बाहुल्य है। इसका कारण यह है कि यतीन्द्र संस्कृत का प्रचार करना चाहते थे। प्रचार का माध्यम

---

१. शक्ति-सारदम्, पृष्ठ २०० (संस्कृत-प्रतिभा)

२-३. महा० हरिदासम् पृष्ठ ७, ७


Central Sanskrit University
CENTRAL LIBRARY
Rajiv Gandhi Campus
21037

उन्होंने नाटक लिया। नाटक यदि संगीत से युक्त हो तो अधिक प्रभावोत्पादक और मनोरंजक हो सकता है। गीत के माध्यम से लोग उसे अधिक समझ सकते हैं। उन्होंने लिखा भी है—'नाटकसंगीतादिमाध्यमेन संस्कृतस्य भूयसा प्रचारं वयं वाञ्छामः[१]।'

यतीन्द्र के नाटकों में गीतों का महत्व कई दृष्टियों से है। गीतों के बाहुल्य से उनकी नाटकीय चारुता में वृद्धि होती है। गीतों का प्रयोग कथा प्रसंग के अनुकूल हुआ है। कथा को अधिक बल देने में वे सहायक हुये हैं। नरेन्द्र का मन बाल्य से ही संसार से विरक्त है। रामकृष्ण के आग्रह करने पर वे उनको गीत सुनाते हैं—

मनश्चल स्वीयनिकेतनम्
संसारविदेशे वैदेशिकवेशो भ्रमसि कथमकारणम् ॥३७॥
विषयपंचकं तथा भूतगणः सर्वेऽनात्मीयाः कोऽपि न निजजनः।
परप्रेम्णा कथं जातमचेतनं विस्मरस्यात्मजनम्[२]? ॥३८॥

यतीन्द्र के नाटकों में आये हुये गीत भक्ति करुण, शान्त आदि भावों के उद्दीपन के लिये प्रयुक्त हुये हैं। मीरा कृष्ण की उपासना कर रही हैं। कृष्ण का रूप उनकी भक्ति को उद्दीप्त करने वाला है। वे गाती हैं—

मनोमोहन-मुरलीधारी।
मधुमयवदन-मदिर-लोचन मनसिजजयकारी ॥६५॥
मंजुल-मंजीर-शिञ्जन-गुंजित-कुंज-पुंज विहारी।
चरणारविन्द-मधुनिष्पन्द-मन्थरान्तरचारी[३] ॥६६॥

नाटकों में बहुत से गीत बीती हुई और भावी घटना की सूचना देने के लिये प्रयुक्त हुये हैं। 'अमर मीरम्' नाटक में विक्रमदेव के द्वारा मीरा के पास विष भेजने की घटना तो वर्णित है किन्तु सर्पपिटारी और शूलशैय्या आदि घटना के वृत्तान्त उनके गीतों से सूचित होते हैं। मीरा गाती हैं—

सर्पपिंजरं राज्ञा प्रेरितं मीरा-करतलागतम्।
तस्य तर्पणान्ते हलाहले पीतं, गरलं जातं मधुरामृतम् ॥६६॥

---

१. महा० हरिदासम्, पृष्ठ, २
२. भारत-विवेकम् ,, १४
३. अमर-मीरम्, पृष्ठ ३१,

शूलशय्या राज्ञा प्रेरिता, मीरा तत्र करोतु शयितम् ।
प्रदोष आयाते कृते च शयिते, पुष्पशयनं मीरायाः प्रजातम्[1] ।।१००।।

यतीन्द्र के नाटकों में अधिकांश स्थलों पर पात्रों के मनोभावों और चरित्रगत विशेषताओं की अभिव्यक्ति गीतों से हुई है। 'भारत-विवेकम्' नाटक में राजनर्तकी स्वामी विवेकानन्द को गीत सुनाती है। वह गीत द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करके स्वामी जो की शिष्या बनने की प्रार्थना करती है। वह गाती है—

प्रभो न गणय दोषराशिं मम तारयाबलां मां समदर्शितया सर्वदोषहर ।
दोषे च गुणे भव समः । देव मम समदर्शि-नामधर ।
ब्रह्मात्मिकामिमां समुद्धर ।।२१५।।

राजतेऽयःखण्डं देवमूर्तौ देवमन्दिरे। राजतेऽयःखण्डच्छुरिकाघातककरे ।
स्पर्शमणि-स्पर्शनेनोभे समे स्वर्णरूपधरे ।।२१६।।

दोषे च गुणो भव समः न गणय दोषराशिं मम ।।२१७।।

यमुनाहृदयशोभि पुण्यमधुर-जलं । दूषितखातबहि यदिदं समलं ।
गंगा-स्रोतसि जातं पवित्रं सकलं । हर हर दोषान् मम सर्वदोषहर[2] ।।२१८।।

यतीन्द्र ने हिन्दी और बंगला के प्रचलित गीतों का रूपान्तर संस्कृत गीतों में किया है। अमर-मीरम् नाटक के अधिकांश गीत मीरा पदावली के हिन्दी पदों के रूपान्तर हैं। यथा—

मम नयने विराज रे भक्तकृपाल ।
मोहनमूर्ते हे सुन्दर मनोहर रम लोचन विशाल ।
अधरे सुधारस-मुरली राजते कण्ठशोभिजयमाल ।
कटितट-किंकिणी मधुरनादिनी चरणे नूपुरो रसालः ।
मीरायाः प्रभुस्त्वं सज्जनसुखदायी भक्तवत्सलगोपाल[3] ।।२५।।

पूर्वोक्त गीत मीरा के निम्नलिखित हिन्दी पद का रूपान्तर है।

---

१. अमर-मीरम पृष्ठ ३४
२. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ७५
३. अमर-मीरम् ,, ६

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल ।
मोहिनी मूरति सांवरी सूरति नैणा बने बिसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंति माल ।
छुद्र घंटिका कटितट सोभति नूपुर सबद रसाल ।
मीरां प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल[१] ॥३॥

मीरा कृष्णभक्ति में गीत गाती हैं —

मम प्रभुर्गिरिधारी कोऽपि न द्वितीयः ।
मयूर-मुकुट-विशोभी स हि प्राणप्रियः ।
शंख-चक्र - गदा-पद्म - कण्ठमालाश्रयः ।
माता पिता भ्राता न कोऽपि ममात्मीयः ।
वाद एष विदितः सर्वत्र नाथ गोपनीयः ।
कुलमानत्यागान् मीरा त्यक्ता लोकह्रियाः ।
विहिताश्रुनिषेकायाः सत्य-प्रेमधिया ।
मिलिनो भवतु त्वरितं मम प्राणप्रियः[२] ॥४६॥

अमर-मीरम् का प्रस्तुत पद मीरा के निम्नलिखित पद का रूपान्तर है—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरे पति सोई ॥
छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई ।
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई ॥
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेमबेल बोई ।
अब तो बेल फैल गई आणंद होई फल ॥
भगति देखि राज़ी हुई, जगति देखि रोई ।
दासी मीरां लाल गिरधर, तारो अब मोहीं[३] ॥१५॥

इसी प्रकार अमर-मीरम् के अन्य पद मीरा के पदों के संस्कृत में रूपान्तर हैं ।

भास्करोदयम् नाटक के अधिकांश गीत सान्ध्य संगीत, प्रभात तथा प्रकृति-प्रतिशोध के गीतों के रूपान्तर हैं ।

---

१. मीराबाई की पदावली - सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ९६
२. अमर-मीरम्, पृष्ठ १५
३. सम्पादक - परशुराम चतुर्वेदी : मीरांबाई की पदावली, पृष्ठ १००

आनन्द-राधम् में 'मधुप' को संकेत करके गाये हुये गीत भ्रमर गीत के पदों के रूपान्तर हैं।

यतीन्द्र के सभी गीत कथा-प्रसंग के अनुकुल हैं और कथा को गति देने के लिये प्रयुक्त हुये हैं। गीत छोटे और गेय हैं। कोई भी गीत अस्वाभाविक नहीं हैं।

## अभिनय-तत्त्व

यतीन्द्र नाटककार और कवि होने के साथ-साथ कुशल अभिनेता भी थे। इसलिये उनके नाटकों में अभिनय तत्व का होना स्वाभाविक है। उन्होंने जितने नाटक लिखे, उन सबका अभिनय उन्होंने किया। अभिनय में होनेवाली सुविधा-असुविधा पर ध्यान देकर संशोधन के साथ उनके नाटक प्रकाशित हुये। यही कारण है कि अभिनय की दृष्टि से उनके नाटक सफल हैं।

### दृश्य-विभाजन

अभिनय को सुविधा की दृष्टि से यतीन्द्र ने नाटक के अंकों का दृश्यों में विभाजन किया है। दृश्य छोटे-छोटे हैं। नाटक के अंकों का दृश्य विधान, भाषा, कार्य-व्यापार, आदि उनके नाटकों की अभिनेयता में वृद्धि करते हैं। नाटकों के सफल अभिनय के लिये नाटककार ने किसी-किसी स्थल पर नाटकीय प्रभाव (Stage effect) का भी निर्देश किया है। यतीन्द्र के नाटकों की यह विशेषता है कि उनमें पात्रों की संख्या न्यून रहती है। पात्रों की अल्प संख्या अभियन साफल्य के लिये उपयोगी हैं। यतीन्द्र के नाटकों में अभिनय के चारों प्रकार आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य पाये जाते हैं। नाटक में कहीं भी जनान्तिक का प्रयोग नहीं हुआ है। अतः उस प्रकार के अभिनय की इसमें आवश्यकता नहीं है। यतीन्द्र के नाटकों की अभिनेयता पर विचार करते हुये श्री कालीपद तर्काचार्य लिखते हैं—

Such a staging of such gems of Sanskrit Dramas, composed in a simple and sweet Sanskrit Language, enables all, on the one hand to enjoy various 'Rasas' freely and on the other, gives a death blow to the view that Sanskrit is a dead, difficult, harsh language.

चतुर्थ अध्याय

# चरित्र - चित्रण

चरित्र-चित्रण नाटक का प्रधान तत्त्व है। चरितनायक अपने चरित्र के घात-प्रतिघात से नाटक की कथावस्तु को गति प्रदान करते हैं। नायक, नायिका तथा अन्य पात्र ही नाटकीय शृंखला के गतिदायक होते हैं। नाटक की आधारशिला उसका कथानक और कथानक की आधारशिला उसके नायक हैं। यतीन्द्र के नाटकों में आये हुये नायक और उनके चरित्र-चित्रण से उनके नाटकों की चारुता बढ़ी है।

यतीन्द्र आदर्शवादी थे। उनके नाटकों में अधिकांश नायक प्रचुर मानवीय गुणों से सम्पन्न तथा आदर्श हैं। कथा को मोड़ देने के लिये कुछ अधम नायकों का समावेश हुआ है। उनमें दुर्गुणों का बाहुल्य है। हम उनको नाटक के प्रतिनायक कह सकते हैं। इस वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुये हम उनके नायकों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) पुरुष–भूमिका (२) स्त्री–भूमिका
(३) अधम भूमिका और (४) हास्योत्पादक भूमिका

## पुरुष-भूमिका

### अरविन्द

'भारत-हृदयारविन्द' नाटक के नायक अरविन्द देशानुरागी हैं। उनका जीवन देशभक्ति, त्याग तथा बलिदान से पूर्ण है। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने पर भी उनकी आत्मा देशप्रेम से निर्भर है। विदेश में रहने पर भी वे भारत मां की वन्दना करते हैं[1]। मातृभूमि की सेवा करने के लिये वे आई० सी० एस० का अवसर पाकर उसको त्याग देते हैं। अरविन्द ने २२ वर्षों तक इंग्लैंड में निवास किया और फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया, फिर भी वे भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को सर्वश्रेष्ठ मानते थे[2]।

१—२ भारत-हृदयारविन्दम्, पृष्ठ ५, ६

अरविन्द केम्ब्रिज में भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये युवकों को प्रेरित करने के लिये 'लोटस डेगर' नामक समिति की स्थापना करते हैं और भारत को स्वतंत्र करने का संकल्प करते हैं[१]। अरविन्द का हृदय विश्वहित की कामना से परिपूर्ण है[२]। वे देशप्रेम और विश्वप्रेम को ही एक मात्र धर्म मानते हैं[३]। विश्व की हित-कामना के लिये भारतवर्ष की राष्ट्रीय स्वाधीनता उनका प्रथम प्रयोजन है[४]। अरविन्द अपनी भगिनी सरोजिनी तथा पत्नी मृणालिनी के मुख से देशप्रेमोद्गार सुनकर प्रसन्न होते हैं[५]। उनको विश्वास है कि यदि प्रत्येक रमणी के हृदय में इसी प्रकार के देशप्रेम के उद्गार होंगे तो भारत की स्वतंत्रता में विलम्ब नहीं होगा[६]। अरविन्द अपने भाई वारीन्द्र को मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये अग्नि-साक्षिक शपथ ग्रहण कराते हैं[७]। मानिकटोला में बम-विस्फोट के षडयंत्र में भाग लेने के सन्देह में अरविन्द बन्दी बना लिये जाते हैं[८]। चित्तरंजन अरविंद की ओर से वकालत करके उनको कारामुक्त करते हैं और उनको राष्ट्रभक्त, राष्ट्रीयता का भविष्यवक्ता तथा मानवता का प्रेमी सिद्ध करते हैं[९]। अरविन्द की देश-सेवा से क्षुब्ध होकर ब्रिटिश सरकार उनको पुनः बन्दी बनाने का प्रयत्न करती है[१०]। अरविन्द पाण्डुचेरी के आश्रम में जाते हैं और वहां आध्यात्मिकता में निरत हो जाते हैं[११]। १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने से उनका आध्यात्मिकता में विश्वास और बढ़ जाता है। उनका कथन है कि स्वतंत्रता केवल राजनैतिक उपायों से प्राप्त नहीं की जा सकती। उसको प्राप्त करने के लिये आध्यात्मिक साधनों की विशेष आवश्यकता है[१२]।

## विवेकानन्द

'भारत-विवेकम्' तथा 'विश्वविवेकम्' नाटक का नायक युवक नरेन्द्र है, जो कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध होता है। स्वामी विवेकानन्द दृढसंकल्प, प्रज्ञावाचस्पति, महासाधक और देशप्रेमी हैं[१३]। तरुण नरेन्द्र बालावस्था से ही ईश्वर के स्वरूप को जानने के लिये आतुर हैं। वे ईश्वर की उपासना करते हुये कोमल कण्ठ से मधुर गीत गाते हैं[१४]। उनके गीतों को सुनकर रामकृष्ण परमहंस उनको पृथ्वी का कल्याण करने वाला

---

१-१२. भारत-हृदयारविन्दम्, पृष्ठ ६, ७, ११, १२, १४, १४, १८, २७, ३४ ३६, ३७, ४२, ५०।

१३-१४. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ३, ९-१०।

साक्षात् शिव मानते हैं[१]। नरेन्द्र रामकृष्ण को अपना गुरु मानते हैं[२]। ईश्वर-भक्ति में दत्तचित्त होने के कारण वे विवाह नहीं करते हैं[३]। रामकृष्ण परमहंस नरेन्द्र को अपना उत्तरसाधक मानकर उनको अपना धर्मप्रचार करने का आदेश देते हैं। नरेन्द्र रामकृष्ण की शिक्षा का विश्व में प्रचार करने की प्रतिज्ञा करते हैं[४]। वे संन्यास ग्रहण करके सर्वत्र रामकृष्ण की शिक्षा का प्रचार करते हैं[५]। भारतीय जनता की निर्धनता से उनका हृदय दुःख से विदीर्ण हो जाता है[६]। वे भारतीयों की निर्धनता को दूर करने के लिये पाश्चात्त्य देशों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं[७]। शिकागो में प्राच्य-प्रतीच्य धर्म-सम्मेलन में हिन्दु-धर्म के प्रतिनिधि के रूप में जाने के पूर्व खेतड़ी-नरेश के आग्रह पर वे अपना नाम परिवर्तित कर विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हो जाते हैं[८]। विवेकानन्द हिन्दु-धर्म के प्रतिनिधि होकर धर्ममहासम्मेलन में भाग लेने के लिये शिकागो जाते हैं। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अनेक विदेशी उनके भक्त बन जाते हैं। उनके तेज को देखकर आश्चर्यान्वित होकर एक विदेशी कहता है—

आकाशचन्द्रमा किमु भाति पृथवीतले, पारिजातं विकसितं भूतले समले।
देवराजो राजते नु भूषये विह्वले सप्तर्षिमण्डलराजः किं जातो भूतले[९]॥

विवेकानन्द शिकागो में मनुष्यों को विश्व-बन्धुत्व का पाठ सिखाते हैं। वे ब्रह्म और जीव के संबंध में उपदेश देते हुये वेदान्ती विचार-धारा का प्रचार करते हैं। उनके धारा-प्रवाह संस्कृत-भाषण को सुनकर सभी दर्शक उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। वे कहते हैं अहो सर्वमानवदेश-भूषणं धर्मैकरत्नं स्वामिविवेकानन्दोऽयम्। एतस्य जयं वयं प्रोद्घोषयामः[१०]॥

## रवीन्द्रनाथ ठाकुर

महर्षि देवेन्द्रनाथ के पुत्र रवीन्द्रनाथ भास्करोदयम् नाटक के नायक हैं। वे बाल्य से ही प्रकृति-प्रेमी हैं। प्रकृति की रम्य क्रोड में बैठकर वे घण्टों आनन्दविभोर होते हैं। पुष्करिणी, वृक्ष आदि प्रकृति के प्रत्येक कण

---

१-८. भारत-विवेकम्, पृष्ठ १८, २२, ३०, ३९, ४३, ६२-६३, ६५, ८०।
९. वि० वे० हस्त० प्रति०, पृष्ठ ९
१०. विश्व-विवेकम् (हस्त० प्रति०) पृष्ठ २५

में वे ईश्वर का स्वरूप देखते हैं[१]। वृक्ष, नभ, पवन, सूर्य, चन्द्र, तालश्रेणी सभी उनके सहचर हैं[२]। प्रकृति के रम्यस्थलों को देखकर रवीन्द्र काव्य-रचना में प्रवृत्त हो जाते हैं। काव्य-रचना के साथ-साथ वे गीतों का मधुर गान भी करते हैं। रवीन्द्र की मां शारदादेवी की प्रवल इच्छा उन्हें विश्व-कवि के रूप में देखने की है[३]। रवीन्द्र मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं। उनका कथन है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्रता चाहती है तो मनुष्य किस प्रकार बन्धन में रहे[४]। रवीन्द्र विनोदी स्वभाव के हैं। अपनी भाभी कादम्बरी से प्रायः वे विनोद-वार्ता करते हैं[५]। रवीन्द्र संगीत तथा अभिनय-प्रेमी हैं। यूरोपीय संगीत, नृत्य तथा अभिनय के प्रति उनकी विशेष रुचि है[६]। वे वाल्मीकि-प्रतिमा गीतिनाट्य की रचना करते हैं और उसमें वाल्मीकि का अभियन कुशलता से करते हैं[७]। रवीन्द्रनाथ सान्ध्य संगीत की रचना करते हैं[८]। इस रचना से वे बंकिमचन्द्र और रमेशचन्द्र की प्रशंसा के पात्र बनते हैं[९] प्रभातकालीन सुषमा से प्रभावित होकर वे पद्य रचना करते हैं और उस निर्झर का स्वप्नभंग नाम देते हैं[१०]। रवीन्द्र का मुख काव्य-ज्योति से देदीप्यमान होता है। उनको देखकर एक श्रमिक कहता है—

अनुपम-विभूतिमयः कोऽयं महाजनो मम पुरतः।
साक्षाद्विमुखि राजते ? अपि भानुः स्वयं धृतविग्रहः पुरतो मे वर्तते[११] ॥

रवीन्द्र 'पूर्णिमा' शीर्षक कविता तथा प्रकृति का परिशोघ नामक काव्य लिखते हैं[१२]। पच्चीस वर्ष की अवस्था में रवीन्द्र की कीर्ति चतुर्दिक् व्याप्त हो जाती है। रवीन्द्र को प्रोत्साहित करने के लिए उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ उनको ५०० रूपयों का पारितोषिक प्रदान करते हैं।[१३]

## महात्मा गांधी

परवर्ती युग के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भारत-जनकम् नाटक के नायक हैं। वे सत्य और अहिंसा की साक्षात् प्रतिमा हैं। महात्मा गांधी का चरित्र महामहिमव्यंजक है। उनका जीवन ज्ञान, भक्ति और कर्म का चूडान्त निदर्शन है[१४]।

---

१-१३. भास्करोदयम्, पृष्ठ १५, १७, २६, ४१, ५१, ६१, ६५, ७३, ७४, ७६; ७७, ८७, ९८।

१४. भारत-जनकम् पृष्ठ ५

अपंकमलिनं कान्तं दिगन्तविततं वृहत् ।
पूर्णाङ्ग मेलनक्षेत्रं सर्वेषां जगदौकसाम्[१] ।।

गान्धि जी हिन्दू-मुस्लिम मैत्री तथा विश्वमैत्री के लिए प्रयत्नशील हैं। अफ्रीका देश में भारतवासियों के प्रति आंग्लशासकों के अत्याचारों और दुर्व्यवहारों को देखकर वे उद्विग्न हो जाते हैं और उनके दुःख दूर करने का दिन रात प्रयास करते हैं। उनके इस कार्य से क्रुद्ध होकर नेटालवासी उनके ऊपर इंट और पत्थर फेंकते हैं और पदाघात से उन्हें जर्जरित करते हैं, किन्तु गान्धि इससे तनिक भी विचलित नहीं होते और वे अपना अपकार करने वालों का भी कल्याण चाहते हैं[२]। गान्धि को देखकर पुलिस सुपरिण्टेण्डेन्ट की पत्नी श्रीमतो अलेकजेण्डर उसके अनुपम व्यक्तित्व की प्रशंसा करती हुई कहती हैं कि यह मनुष्य निश्चित ही असाधारण है, संयमवान् और विवेकी है, जो हिंसकों के द्वारा हिंसित होने पर भी निर्विकार है[३]। गान्धि वसुधैव-कुटुम्बकम् के सिद्धान्त के उपासक हैं। वे सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं। उनका कथन है कि भारत में निवास करने वाले भारतीय तथा विदेशों में निवास करने वाले विदेशियों में कोई भेद नही है क्योंकि सभी सर्वव्यापी भगवान् की सन्तान हैं[४]। गान्धि अस्पृश्यता के विरोधी हैं। वे निरन्तर इस कुरीति के निवारण के लिये प्रयत्न करते हैं। वे लोगों को उपदेश देते हैं कि अस्पृश्यों से घृणा नहीं करनो चाहिये क्योंकि वे भी हम लोगों के समान ही हाड़ मांस से बने हुये हैं।

मेदोमज्जास्थिरक्तं प्रवहति सदृशं सर्वकायेष्वजस्रम्[५]।

प्राणियों की हिंसावृत्ति को देखकर गान्धि आकुल होते हैं। वे मनुष्यों की हिंसा-वृत्ति का निवारण करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हुये कहते हैं —

कदा त्वया देव निराकरिष्यते, दुरन्तहिंसा हृदयाच्छरीरिणाम् ।
जगत् त्वया यद् रचितं सुखात्मकं, यया तदेतत् क्रियते मलीमसम्[६] ।। १८ ।।

आंग्ल शासकों के वेत्राघात से आहत 'जुलु' जनों के आर्तनाद को सुनकर गान्धि उनके पास जाकर सेवा करते हैं और उनको यथास्थान पहुँचाते हैं[७]।

---

१-७. भारत-जनकम्, पृष्ठ ५, ६, ६, १०, १०, १३, १३ ।

गान्धि क्षमा-मूर्ति हैं। अपनी हत्या करने के लिए उद्यत अपराधी को भी वे क्षमा कर देते हैं। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी के रूप में वे अनेक बार कारावास-दण्ड भोगते हैं। हिन्दु-मुस्लिम मैत्री के लिये वे २१ दिन तक अनशन करते हैं[१]। वे साम्प्रदायिक भावना को मिटाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। उनके प्रयत्नस्वरूप हिन्दु-मुस्लिम एकता सम्पन्न हो जाती है। सुरा भोयार्दि कहता है —

"चतुर्विंशतिघटिका-मध्ये कीदृशी शान्तिर्महात्मना प्रतिष्ठापितेति। अद्य सर्वदेशे हिन्दुमहम्मदीया अन्ये च सुकरग्राहं पथि विहरन्ति। अहो महात्मनः स्नेहस्पर्श-प्रभावः[२]"।

## सुभाषचन्द्र बोस

"सुभाष-सुभाषम् के नाटक के नायक सुभाषचन्द्र बोस कुशाग्र बुद्धि के नायक हैं। कालेज के विद्यार्थी होते हुये वे निरन्तर दीन-दुखियों की सेवा में लगे रहते हैं, तथापि परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होते हैं।

सुभाष देशानुरागी हैं। प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ते से शिक्षा प्राप्त करके वे उच्च-शिक्षा-प्राप्ति के लिये इंग्लैण्ड जाते हैं। वे आई० सी० एस० की परीक्षा पास करते हैं, किन्तु उनका ध्यान भारत की जनता की दुर्दशा को दूर करने में लगा रहता है। वे आई० सी० एस० पद की अवहेलना कर भारत की पराधीनता के पाश को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न करते हैं तथा दिनरात जनता की सेवा करते हैं। अपने इस त्याग से वे गान्धि के परम विश्वास-पात्रबन जाते हैं। आंग्ल शासन के विरुद्ध आन्दोलन करते हुये सुभाष अनेक वार कारावास-दण्ड भोगते हैं। कारावास की यन्त्रणायें सहन करने पर भी वे अपने पथ से विचलित नहीं होते हैं। वे कहते हैं कि जेल हमारे परम कल्याण का स्थान है। विदेशी शासन का अन्त करने के लिये वे जापान में प्रवासी भारतीयों के द्वारा आज़ाद हिन्द सेना बनाते हैं और भारत को स्वतंत्र करने की शपथ लेते हैं—

"भारतवर्षस्य त्रिंशत्कोटिभारतवासिनां दासत्वश्रृंखलामोचनार्थमहं श्री भगवन्नाम्ना इमं पवित्रं शपथं गृह्णामि—

---

१-२ भारत-जनकम्, पृष्ठ ४०, ५८।

अहं सुभाषचन्द्रवसुः मम शेषनिश्वासपर्यन्तं स्वाधीनतार्जनाय संग्रामं करिष्यामि। अहं सर्वदा भारतवर्षस्य दासरूपेण स्थास्यामि। भारतीय-भ्रातृभगिनीनां कल्याणविधानं मम श्रेष्ठकर्त्तव्यरूपेण परिगणयिष्यते। स्वाधीनतालाभानन्तरमपि भारतवर्षस्य स्वाधीनतारक्षार्थमहं स्व शेषरक्त-कणिकामपि विस्रष्टुं कृतसंकल्पः[१]।

भारत देश को स्वतन्त्र करना ही उनके जीवन का उद्देश्य था। आज़ाद हिन्द-सेना के अतिरिक्त वे स्त्रियों को भी झांसी-राज्ञी-वाहिनी नामक सेना को संगठित करने का विचार करते हैं। भारत की स्वतन्त्रता की कामना करते हुये वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं –

भारतस्वातन्त्र्यमस्तु करवातम्, वलवीर्यसमृद्धिपुष्टियुतम्।
शस्यश्यामलमिदं जायतां भारतं, प्रतिभवनं राजतां प्रेमपूरितम्[२]॥

## देशबन्धु चितरंजनदास

देशबन्धु चितरंजनदास देशबन्धु-देशप्रियम् नाटक के नायक हैं। वे पक्के देश भक्त हैं। भारतवासियों के कष्टों को देखकर वे चिन्ता से आकुल हो जाते हैं और उनके कष्टों का निवारण करने के लिये वकालत छोड़कर जनसेवा में लग जाते हैं। नौकरी छोड़ने पर अपने पारिवारिक जनों का विरोध सहकर कर भी वे निरन्तर देशवासियों के हित की चिन्ता में रत रहते हैं। वे कहते हैं—

किन्तु यदा पश्यामि चतुर्दिशं मम दरिद्रदेशवासिनो विविधदुःख क्लेश जर्जरिता निराश्रया विपद्यन्ते, तदा मम चित्तं हाहाकारबोधं न स्वीकरोति, चिन्तयामि यदि सेवा काचन मया देशवासिनां कृते स्यात्[३]।

चितरंजनदास गान्धि से प्रभावित होकर उनकी प्रेरणा से जनसेवाकार्य तीव्र गति से करने लगते हैं। आसाम-बंगाल-रेलवे-हड़ताल में वे श्रमिकों का साथ देते हैं और उनकी सहायता करते हैं। कलकत्ते में बड़े बाजार में विदेशी-वस्त्र-विक्रय का निरोध करने के लिये वे और उनकी पत्नी वासन्तीदेवी भारतवासियों को उपदेश देती हैं कि विदेशी वस्त्र हमारे लिये अहितकर हैं। अतः उनका त्याग करना चाहिये। पुलिस उनको आन्दोलन-

---

१-२. सुभाष-सुभाषम् ( हस्तलिखित प्रति ), पृष्ठ २१, २४
३. देशबन्धु-देशप्रियम्, ( हस्तलिखित प्रति ), पृष्ठ ११

कारी घोषित करके अनेक वार पकड़ती है। वे अटूट साहसी हैं। जेल के कष्ट भी उनके साहस कोनहीं तोड़ सकते हैं। जेल का कष्ट सहकर भी वे भारत की स्वतन्त्रता के प्रति प्रयत्नशील रहते हैं।

## राजेन्द्रप्रसाद

भारत के राजेन्द्र डा० राजेन्द्रप्रसाद भारत-राजेन्द्रम् नाटक के नायक हैं। वे मेधावी छात्र हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय की सभी परीक्षाओं में वे प्रथम श्रेणी प्राप्त करते हैं। विहार प्रान्त में महात्मा गान्धि के उपदेशों को सुनकर उनसे प्रभावित होकर राजेन्द्र गान्धि के अनुयायी बन जाते हैं तथा जनसेवा करने के लिये गान्धि और माता कस्तूरबा से आशीर्वाद प्राप्त करके दीन-दुःखियों की सेवा में संलग्न हो जाते हैं।

राजेन्द्र भारत को मुक्त कराने की चिन्ता में व्याकुल होते हैं। वे दिन-रात भारत की स्वतंत्रता के उपायों पर विचार करके उनको कार्यान्वित करते हैं। उनके देश-सेवा-कार्यों को देखकर दो ईर्ष्यालु व्यक्ति उनका जीवन समाप्त करने के उद्‌देश्य से उनपर प्रहार करते हैं किन्तु ईश्वर की कृपा से वे बच जाते हैं। गांधी जी के साथ सत्याग्रह-आन्दोलन में सक्रिय कार्य करने के कारण वे छपरा के कारागार में वन्द कर दिये जाते हैं। कारागाराध्यक्ष राजेन्द्र को देखकर अपने मन में कहता है—

'अहो एष राजेन्द्रप्रसादश्चरमकौशली। घूमार्चितमग्निं विशेषरूपेण प्रज्ज्वालयितुमेवास्य प्रयत्नः[१]।'

राजेन्द्र की जनसेवा से बिहारवासी बहुत प्रसन्न होते हैं। एक कारावासी उनके चिरायु होने की कामना करते हुये कहता है—

चिरंजीवेत् विहारस्थ राजेन्द्र राजवंदित
महेन्द्रसहोदरस्यातः महेन्द्राभ्यधिकं ध्रुवम्
कारागारे समानीतः सत्याग्रहबलश्रितः
पुण्यावलोकनेन श्री भवपुण्यबलार्जितः[२]॥

राजेन्द्र महात्मा गांधी के साथ नमक-कानून भंग करते हैं। वे हिन्दु-मुसलमानों में एकता उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। भारत के देश-भक्त

---

१-२ भारत-राजेन्द्रम् ( हस्तलिखित प्रति ), पृष्ठ ६, १५

नेताओं के प्रयत्नस्वरूप भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर वे स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रपति बनते हैं। भारतवासियों के प्रति आदर, प्रेम, दया, सहानुभूति रखना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। वे कहते हैं—

'भारतराष्ट्रपतिरूपेण मम प्रथमकर्तव्यं भारतवर्षनिवासिनः प्रति समादरप्रदर्शनं, धर्मवर्णश्रेणीचिन्ताधारा निरपेक्षं अन्यच्च यत्र भवद्भिः सर्वैः सह समापि समधिकः अन्यैः देशैः सह मैत्रीवर्धनं तान् प्रति बाहुल्येन सहानुभूतिः प्रेमसमादरप्रदर्शनंच[1]।'

राजेन्द्र भारतवासियों के स्नेह, दया और ममता को अपने जीवन का सम्बल मानते हैं। वे कहते हैं—

'देशवासिनां प्रेमस्नेहदयाममता मम केवलसम्बलम्। तेनाहं जीवामि, जीविष्यामि च[2]।'

### गोरक्षनाथ

मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरक्षनाथ 'रक्षक-श्रीगोरक्षम्' नाटक के नायक हैं। मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से उनका जन्म होता है। वे बारह वर्ष तक भूगुहा में रहे। गुरु का उपदेश है कि गौ (पृथ्वी) से तुम्हारी रक्षा हुई अतः तुम आजीवन गौ (पृथ्वी और गो-माता) की रक्षा करोगे। इस कारण तुम्हारा नाम गोरक्षनाथ होगा—

'पुनरपि स्वयं गां रक्षयिष्यसि। ततस्ते नाम गोरक्षनाथो भविष्यति[3]।'

अपने गुरु के आदेशानुसार गोरक्षनाथ गोरक्षा का व्रत लेकर सर्वत्र गुरु के धर्म का प्रचार करते हैं। वे अफगानिस्तान जाकर गो सेवा का उपदेश देते हैं। और अपने गुरु से सीखी हुई ब्रह्मविद्या तथा योग-विद्या का प्रचार करते हैं।

### रामानुज

'विमल-यतीन्द्रम्' नाटक के नायक रामानुज परम मेघावी और उपनिषदों के प्रति रुचि रखने वाले हैं। वे गुरुभक्त हैं तथा विनीत शिष्य हैं[4]।

---

१-२. भारत-राजेन्द्रम् (हस्तलिखित प्रति), पृष्ठ ५४, ६०

३. रक्षक-श्रीगोरक्षम् ,, ,, १७

४. विमल-यतीन्द्रम्; पृष्ठ ५

गुरु के द्वारा उपनिषदों के मन्त्रांशों की अशुद्ध व्याख्या करने पर वे विनम्रता पूर्वक उनको दूसरा अर्थ बतलाते हैं[1]। गुरु उनसे रुष्ट होकर उनकी हत्या करने का प्रयत्न करते हैं।[2] रामानुज सहनशील हैं। गुरु की कुमति को जानकर रामानुज के हृदय में उनके प्रति कोई विद्वेष नहीं होता।[3] रामानुज वैष्णव धर्म के परम भक्त हैं। वे दृढ प्रतिज्ञ हैं। यामुनाचार्य के समक्ष जिन तीन बातों को पूर्ण करने की वे प्रतिज्ञा करते हैं, उनका पूर्णरूपेण निर्वाह करते हैं।[4] रामानुज का हृदय विश्व-कल्याण की भावना से निर्भर है। वे महात्मा गोष्ठीपूर्ण से 'रहस्य-मन्त्र' सीखकर उसको सभी लोगों को सिखाते, हैं जिससे सभी लाभान्वित हो सकें। उनके गुरु ने उनसे इस मन्त्र को किसी दूसरे को सिखाने का निषेध किया था अतः इस मन्त्र को सिखलाकर वे गुरु के क्रोधभाजन बनते हैं फिर भी वे दृढ़तापूर्वक कहते हैं—

'निश्चितमेवाहं सर्वजनमुक्तये मन्त्रमेतं सर्वान् श्रावयिष्यामि वरमस्तु तमोगहनो निरयो गुरवोऽभिशपन्तु वरंच रुषा। न तथापि नृणां तरणीकतरीं बत गोपायितास्मि नृशंस इव[5]।' रामानुज कुशल उपदेशक हैं। वे उदार विचारों के व्यक्ति हैं और धार्मिक पक्षपात से रहित हैं, हिन्दु-मुसलमान, सिख, ईसाई सभी के प्रति समान दृष्टि रखते हैं। अस्पृश्यों के प्रति उनके हृदय में अगाध प्रेम है। वे चण्डाल रमणी और यवन कन्या को अपने धर्म में आश्रय देते हैं।[6] वे विभिन्न धर्मावलम्बियों को उपदेश देते हुए उपनिषद् की व्याख्या करते हैं तथा ब्रह्म-सूत्र भाष्य की रचना करते हैं।[7] इस प्रकार वे वैष्णव धर्म के प्रचार में संलग्न रहते हैं और अन्य धर्मावलम्बियों को वैष्णवमतानुयायी बनाते हैं।[8]

## हरिदास

भक्त हरिदास 'महाप्रभु-हरिदासम्' नाटक के नायक हैं। धर्म से यवन होते हुये भी वे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के परम भक्त हैं। वे प्रतिदिन तीन लाख बार हरि के नाम का संकीर्तन करते हैं।[1] हरिदास को मार्ग-भ्रष्ट करने के लिये रामचन्द्र खान नगर की अद्वितीय सुन्दरी लक्षहीरा को उनके समीप भेजता है। लक्षहीरा दो दिन तक निरन्तर प्रयत्न करने पर भी उनको पथच्युत नहीं कर पाती है। वह उनसे प्रभावित होकर

---

१-८. विमल-यतींद्रम्, पृष्ठ ६, ७, २२, २७, ५०; ७२-७६, ५७, ७८

९. महाप्रभु-हरिदासम्, पृष्ठ ४

उनकी भक्त बन जाती है ।[१] नगर का गण्यमान नागरिक कमलाक्ष हरिदास को श्राद्धपत्र प्रदान करता है ।[२] हरिदास की भक्ति का प्रभाव केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है। सर्प तक उसकी आज्ञानुसार उसके आश्रम के पास से भाग जाते हैं—

'साम्प्रतमस्य हरिदासस्याश्रमपरिवेशात् सर्पा अपि सर्वलोकसमक्षमेव तस्य आदेशानुसारेण पलायन्ते ।[३]

सम्राट् हुसैनशाह की आज्ञा से राजकर्मचारियों द्वारा हरिदास बन्दी बना लिये जाते हैं। मुलुकपति के अनेक बार आग्रह करने पर भी वे यवन धर्म स्वीकार नहीं करते। अतः उन्हें मार डालने के लिये बाइस हाटस्थानों पर उनको बेंत से पीटा जाता है ।[४] जब किसी प्रकार भी उनकी मृत्यु नहीं होती तो राजकर्मचारी उनको नदी में फेंक देते हैं। नदी में महाप्रभु का आविर्भाव होता है। वे हरिदास के प्राणों की रक्षा करते हैं ।[५]

महाप्रभु के बिना हरिदास इस संसार में नहीं रह सकते। वे महाप्रभु से पहले ही प्राणत्याग करने का निश्चय करके भोजन ग्रहण नहीं करते हैं[६]। इस प्रकार वे स्वेच्छा मृत्यु का वरण करते हैं ।[७]

## रघुनाथ

'दीनदास-रघुनाथम्' नाटक के नायक रघुनाथ धनाढ्य पिता के पुत्र हैं। धन-सम्पत्ति के प्रति उनको आसक्ति नहीं है। उनका मन महाप्रभु की भक्ति में लगा हुआ है। रघुनाथ के पिता उनका मन संसार में रमाने के लिये विविध उपाय करते हैं, किन्तु उनके सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं।

रघुनाथ स्वभावतः शान्त हैं। उनकी मां कहती हैं—

'परिवृतवरकायो विग्रही शान्त एव[८]।'

रघुनाथ निर्भीक हैं। महम्मदीय भूस्वामि चौधुरी अपने कूट कौशल से रघुनाथ के पिता की सम्पत्ति का हरण कर लेते हैं। अपनी प्राण-रक्षा के लिये पिता के भाग जाने पर रघुनाथ आत्मसमर्पण कर देते हैं। कारागार में रघुनाथ को देखने पर चौधुरी उनके साहस और निर्भीकता से प्रसन्न होकर उन्हें बन्धनमुक्त करके उनकी समस्त सम्पत्ति लौटा देते हैं।[९] वे

१-८. महाप्रभु-हरिदासम्, पृष्ठ ८, २१, २३, ३१-३५, ३६-३७, ७०, ७३, १०

९. दिनदास-रघुनाथम्, पृष्ठ १५

कहते हैं कि 'रघुनाथ अपने चरित्र की महिमा से अपने वंश और अपने देश का मुख उज्ज्वल करेगा[१]।' रघुनाथ अपने पिता की सम्पत्ति का त्याग करके, घर छोड़कर नित्यानन्द के पास जाते हैं और उनसे मिलकर वे महाप्रभु के दर्शन के लिये पुरी जाते हैं। मार्ग में दस्युओं द्वारा पकड़ लिये जाने पर वे अपने सौम्य व्यवहार से दस्युओं से मुक्ति पा जाते हैं[२]। रघुनाथ को देखकर दस्युराज की पत्नी का वात्सल्य जाग्रत हो जाता है और वह उसकी रक्षा करती है। वह कहती है—'निगूढसत्त्वोऽयं परम-भक्तजन इति नास्ति सन्देहः[३]।...अयं द्वितीयो ध्रुवः प्रह्लादो वा[४]।'

रघुनाथ पुरी जाकर महाप्रभु के दर्शन करते हैं। उनके पिता उनके लिये दो भृत्य और कुछ सम्पत्ति भेजते हैं, किन्तु निस्पृह रघुनाथ स्वल्पधन रखकर शेष धन और भृत्य लौटा देते हैं। जो धन वे अपने पास रखते हैं, उससे महाप्रभु को भोजन करा देते हैं[५]। रघुनाथ की भक्ति से प्रसन्न होकर महाप्रभु उनके व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुये कहते हैं—

'अगाधसत्त्वोऽयं रघुनाथो वैष्णवधर्ममहामहीरुहस्यान्यतमश्रेष्ठविटपि-रूपेण चिरं शोभिष्यते[६]।'

रघुनाथ का संकल्प दृढ है। वे किसी दूसरे का अन्न न खाकर, दूकान के बाहर फेंके हुये, कुक्कुरादि से भी उपेक्षित निकृष्ट अन्न को ग्रहण करते हैं[७]। स्वरूप दामोदर कहते हैं—

'अतीव दृढसंकल्पोऽयं रघुनाथः। असौ माधुकरी वृत्तिमपि विहाय मा नाम कस्यचन भोक्तव्यमन्नं तस्योदरं प्रविक्षत् इत्येवं विचिन्त्य विपणिके विक्षिप्तं कुक्कुरादिभिरप्युपेक्षितं गलितम् अन्नं गृह्णाति[८]।'

महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर की महासमाधि के पश्चात् रघुनाथ अनेक भक्तों के आश्रय बनते हैं। वे महाप्रभु के धर्म का प्रचार करते हैं।

### कृष्ण

'आनन्द-राघम्' में वर्णित कृष्ण विनोदप्रिय हैं। वे गोपदेवता नामक सखी का वेष धारण करके वन में राधा के समीप आते हैं। सखी के वेष में अपनी निन्दा करते हुये वे राधा को क्रुद्ध करते हैं।[९]

---

१-८. दीनदास-रघुनाथम्, पृष्ठ १९, ३५, ४०, ४०, ४२, ४५, ४८, ४८

९. आनन्द-राघम् पृष्ठ ६

कृष्ण असुर संहारक हैं[१]। उनका कथन है कि अनाचार और अत्याचार का दमन होना चाहिए। जो पुरुष इनका दमन नहीं करता, वह पुरुष नहीं, अपितु कापुरुष है।[२]

कृष्ण भगवान् के अवतार हैं। उनके विषय में नन्द कहते हैं—

यस्तावत् स्तनपान-केलिकलया वीरोऽवधीत् पूतनां
त्रैमास्यः शकटं रुदन् सममनक् तिष्ठन्नधो लीलया।
एकाब्दो यमलार्जुनावथ तृणावर्तञ्च योऽपातयद्
अन्यानप्यसुरान् ध्रुवं स भगवान् नास्त्यत्र मे संशयः॥[३]

कृष्ण दीन-दुखियों के रक्षक हैं। कंस के निमन्त्रण पर जब वे मथुरा जाने लगते हैं, तब माता यशोदा व्याकुल होती हैं। वे उनको समझाते हुये कहते हैं कि दुःखी जनों की रक्षा करना मेरे जीवन का धर्म है। पृथ्वी कंस के पाप से त्रस्त है। कंस का विनाश करके मैं जनता को पाप से मुक्त करूंगा।[४] कृष्ण वीर हैं। मथुरा में वे खेल-खेल में मुष्टि-युद्ध से चाणूर को समाप्त करने के पश्चात् कंस का वध कर देते हैं।[५] कृष्ण संसार के कल्याण की कामना करते हैं। दूसरों के हित में अपने सुख का त्याग करना वे धर्म समझते हैं। वे कहते हैं—

परार्थे आत्मसुखविसर्जनमेव शाश्वतिको धर्मः।[६]

## सिद्धार्थ

राजा शुद्धोदन के पुत्र कुमार सिद्धार्थ की अलौकिक योग्यता उल्लेखनीय है। वे वीर हैं, श्रेष्ठ धनुर्धर हैं। बड़े-बड़े वृक्षों को एक बाण से गिराते हैं।[७] सिद्धार्थ की बुद्धि प्रखर है। वे सरलतया शस्त्र-विद्या और शास्त्रों का अध्ययन कर लेते हैं। इन दोनों में उनकी कोई समानता नहीं कर सकता।[८] सिद्धार्थ संसार से विरक्त हैं। समृद्ध राजकुल में उत्पन्न होने पर भी उनका मन सांसारिक सुख-समृद्धि से विमुख है।[९] संसार में प्राणियों के कष्टों को देखकर वे दुःखी होते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्यों का दुःख असीम है। वे तप्त कटाह के समान इस संसार में जल रहे हैं। मैं अवश्य ही उनकी मुक्ति के उपाय खोजूंगा।[१०] इसी भावना से प्रेरित

---

१-६. आनन्द-राधम्, पृष्ठ १७-२०, १०-२०, ६, ७५; ८८, ९०।
७-१० निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ २१, २१, ४२; ५२

होकर वे राजवैभव का परित्याग करके घर से निकल जाते हैं।[१] सिद्धार्थ तपस्वी हैं। वे वन में जाकर उग्र तप करते हैं। तप की ज्योति से उनका शरीर देदीप्यमान हो जाता है। उनको देखकर कालोदायी कहता है—

अस्य भागवती अपूर्वा विमा सूर्यदेवस्य प्रभामपि मलिनीकरोति।[२]

प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् बुद्धत्व प्राप्त करके सिद्धार्थ कपिलवस्तु आते हैं।[३] वे अपने एकमात्र पुत्र राहुल को भिक्षु धर्म में दीक्षित करते हैं।[४]

## भोजराज

मेवाड़ का शासक भोजराज मीरा का पति है। वह क्रोधी स्वभाव का है। मीरा की कृष्ण मूर्ति पर रखे हुये कण्ठहार पर अकबर का नाम देखकर वह क्रोधाग्नि में जलने लगता है। वह मीरा को आत्महत्या करने का आदेश देते हुये कहता है—'पापिन! तुम शीघ्र ही यहां से दूर चली जाओ और नदी में कूद कर मर जाओ। तुम नरलोक में अपना पापीमुख मत दिखाओ'?' भोजराज क्रोधी होने पर भी दयावान् है। मीरा के गृहत्याग के पश्चात् उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है। वह मीरा के प्रति सहृदय हो जाता है। उसका हृदय दिन-रात पश्चात्ताप की ज्वाला में जलता है। वह मीरा को लौटा लाने का उपाय सोचता है।[६] भोजराज गुण-पारखी है। मीरा के स्वरूप को जान लेने पर वह उनका आदर करता है। मीरा के गृहत्याग के पश्चात् उसकी मां और छोटा भाई उससे बारंबार दूसरा विवाह करने का आग्रह करते हैं, किन्तु वह विवाह करने के लिए उद्यत नहीं होता है[७]। वन में संन्यासिवेष धारण करके मीरा के पास जाकर प्रायश्चित्त करके मीरा को पुनः मेवाड़ ले आता है।[८]

## गौरांग महाप्रभु

महाप्रभु वैष्णवधर्म के परम उपासक हैं। वे कृष्ण के अवतार हैं। उनके विवाह से पूर्व कृष्ण प्रकट होकर विष्णुप्रिया से कहते हैं कि गौरांग मेरी ही मूर्ति हैं—

---

१-४. निष्किचन-यशोधरम्, पृष्ठ ५२, ५३, ५८, ५६,

५-८. अमर-मीरम् पृष्ठ १२; २०, २१-२२, ३०

यस्मै त्वमर्पितवती हृदयं स्वकीयं
विश्वम्भरः स किल देवि ममैव मूर्तिः ।[१]

महाप्रभु रूपवान् हैं। उनके पिता सनातन मिश्र कहते हैं—'रूप की गरिमा, मन की महिमा और चित्त की स्थिरता से वे ( विश्वम्भर ) सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त करते हैं।[२] महाप्रभु दयालु हैं। पाखण्डियों के द्वारा उपद्रव किये जाने पर वे उनके कल्याण की कामना करते हैं।[३] महाप्रभु का व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक है। पाखण्डनेता उनको देखकर प्रभावित हो जाता है और उसके हृदय से हिंसावृत्ति विलीन होने लगती है। वह कहता है—

अहो निरुपमानः को जगति दुर्लभो विग्रहो।
यदस्य परिलोकनाद् विलयमेति हिंसा मम ॥[४]

दूसरा पाखण्डी कहता है कि इस दिव्य पुरुष ने मेरे मन पर अधिकार कर लिया। प्रयत्न करने पर भी मैं इनके ऊपर ईंट या पत्थर फेंकने में समर्थ नहीं हूँ।[५]

महाप्रभु भविष्यज्ञाता हैं। अपने भक्तों के ऊपर आने वाली आपत्ति की सम्भावना से वे विचलित हो जाते हैं। भक्त श्रीवास एकमात्र पुत्र की मृत्यु का समाचार मिलने से पहले ही उनका मन भक्त के अनिष्ट को संभावना से पीडित हो उठता है।

महाप्रभु मातृभक्त हैं। माता के विषय में उनका कथन है कि मां की गोद में स्वर्गोपम सुख मिलता है।[६] महाप्रभु संसार से विरक्त हैं। गयाधाम से लौटने के पश्चात् उनकी विरक्ति और बढ़ जाती है। वे जगत् के दुःखों को दूर करने का उपाय सोचते हैं। वे भक्ति तथा प्रेम के द्वारा प्राणियों की दुर्मति दूर करने उनमें भ्रातृभाव उत्पन्न करने का प्रत्यत्न करते हैं। वे कहते हैं—

भ्रातॄणां मे दुर्मतिं दूरीकर्त्तुं भक्तिद्वारेण-प्रेममन्त्रद्वारेण यथा प्रभवेयं तथा साधनामंगीकर्तव्यम् ।.........अतो वैराग्यमेवावलम्बनीयमिति ।[७]

इसी भावना से प्रेरित होकर वे अपनी पत्नी विष्णुप्रिया के ऊपर अपनी

---

१-५. प्रीति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ १७, २२, २२, ३७, ३७
६-७. भक्ति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ २, ४

माता शची देवी और सभी भक्तों का भार सौंप कर महानिष्क्रमण करके धर्मप्रचार करते हैं।

रामकृष्ण परमहंस

रामकृष्ण परमहंस वैष्णव धर्मोपासक हैं। वे आनन्दमूर्ति हैं, स्थितप्रज्ञ और महामुनि हैं। उनकी पत्नी सारदामणि उनको देखकर अपने मन में कहती हैं—

अहो! महान् मे आनन्दो यत् पतिर्मे स्थितप्रज्ञो महामुनिः सर्वंजगत् व्यापारम् अनायास-सिद्धमिव उच्चारयति व्यवहरति च।[१]

रामकृष्ण काली के परम भक्त हैं और उनकी इच्छा को बलीयसी मानते हैं।[२] वे सारदामणि को काली का रूप मानते हैं।[३] रामकृष्ण त्यागी हैं। सांसारिक वस्तुओं में उनकी आसक्ति नहीं है। लक्ष्मीनारायण उनके विषय में कहता है—

कामिनीकांचनत्यागी पुरुषोऽयं महत्तमः।[४]

रामकृष्ण विनोदप्रिय हैं। मत्स्यजीवी की कथा सुनाकर वे सभी भक्तगणों को हंसाते हैं।[५] उनका हृदय मानवकल्याण, और विश्व-कल्याण की भावना का निर्झर है। वे सारदामणि से कहते हैं—

भवतु च विश्वस्याक्षयं कल्याणम्। प्राणपात्रं तदानन्दपरिपूर्णं जायताम्, तेन च विश्वमानव आनन्दी भवतु। तव चित्तशतदलसंजातममृतं जगत् मधुमयं करोतु।[६]

रामकृष्ण नरेन्द्र को देखकर उनकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं।[७] वे उनको अपने धर्म का प्रचार करने वाला श्रेष्ठ साधक मानते हैं। वे नरेन्द्र को ईश्वर के स्वरूप के विषय में उपदेश देते हैं। रामकृष्ण गलक्षत रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। शरीर त्याग करने के पूर्व वे नरेन्द्र के समक्ष भगवान् के अवतार के रूप में अपना रहस्य प्रकट कर देते हैं[८]।

## नायिका-भूमिका

विष्णुप्रिया

महाप्रभु गौरांग की सहधर्मिणी विष्णुप्रिया प्रीति-विष्णुप्रियम् और भक्ति-विष्णुप्रियम् नाटकों की नायिका हैं। विष्णुप्रिया अतीव सुन्दरी हैं।

---

१-३. शक्ति-सारदम्, पृष्ठ ३७, ३९, ५०

४-८. भारत-विवेकम् ६-७, ३८

उनके सौन्दर्य के विषय में माता शचीदेवी कहती हैं कि मनुष्यों में इस प्रकार का लावण्य कहीं भी नहीं देखा गया है।[१] ईशान नगर विष्णुप्रिया को साक्षात् देवी मानता है।[२] विष्णुप्रिया सेवापरायणा हैं। वे अपनी श्वश्रू शचीदेवी की सेवा में लीन रहती हैं। उनके विषय में वे सदैव चिन्तित रहती हैं।[३]

विष्णुप्रिया पतिव्रता नारी हैं। रात्रि में पति से वियुक्त होने का स्वप्न देखकर उनका हृदय कांप उठता है। वे महाप्रभु से कहती हैं कि मैं सब दुःखों को सहने में समर्थ हूँ, किन्तु तुम्हारा विरह नहीं सह सकती हूँ[४]। महाप्रभु के वैराग्य का विचार सुनकर वे आकुल हो जाती हैं, किन्तु वे अपने पति के अभ्युदय-पथ में बाधा नहीं बनती हैं। वे कहती हैं—

अहं भारतीया ललना, तव पन्था एव मे पन्था, स एव नितरां मयाऽपि सर्वशक्ति-प्रयोगेण अनुसर्तव्यः। भवदभीष्टविषये अहं सर्वथा आत्मानं नियोजयिष्यामि।[५]

विष्णुप्रिया निस्पृह हैं। सांसारिक वस्तुओं के प्रति उनको आसक्ति नहीं है। महाप्रभु के द्वारा भक्त दामोदर के हाथ से भेजी हुई साड़ी भक्तों को समर्पित कर देती हैं[६]। महाप्रभु की माता उनको लक्ष्मी मानतीं हैं। वे कहती हैं—

न सास्त्री, नारीवेशेन स्वयं आद्या शक्तिः भगवती श्री श्रीलक्ष्मीः स्वयं नारायणोऽपि तस्या दर्शनमात्रेण आत्मानं पूततरं मंस्यते।[७]

महाप्रभु के निष्क्रमणानन्तर विष्णुप्रिया उनके धर्म को प्रचारित करने और माता शचीदेवी तथा महाप्रभु के भक्तों की सेवा तथा पालनपोषण का भार ले लेती हैं।[८]

### यशोधरा

राजा दण्डपाणि की पुत्री यशोधरा निष्किंचन-यशोधरम् नाटक की नायिका हैं। वे सुशील, विनीत और गुणवती हैं। उनको देखकर राजा शुद्धोदन का राजपुरोहित कहता है—

गोपा नारीकुलकमलिनी सद्गुणाढ्या सुशीला।[१]

---

१-४. प्रीति' विष्णुप्रियम, पृष्ठ ५, २९, ४५

५-८. भक्ति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ ६, १२, १३, २०

९. निष्किंचन-यशोधरम् पृष्ठ १२

यशोधरा पतिव्रता नारी है। कामार्त देवदत्त जब यशोधरा के समीप जाता है तो वे उसको पदाघात द्वारा भगा देती हैं[१]। पति के विषय में सब कुछ जानना वे नारी का स्वाभाविक धर्म समझती हैं। वे स्वयं सिद्धार्थ के पूर्वजन्म के वृत्तान्त को जानती हैं[२]। यशोधरा नारी-जाति की प्रगति का समर्थन करती हैं। वे अवगुण्ठन धारण नहीं करतीं और स्त्रियों के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं समझती हैं। वे कहती हैं कि स्त्रियां स्वभाव से पवित्र हैं। उनके लिये अवगुण्ठन धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है[३]। यशोधरा गुणों की खनि हैं। राजा शुद्धोदन अपने पुत्र सिद्धार्थ की तुलना में उनको उच्चतर मानते हैं। वे कहते हैं—

गोपा विशुद्धगुणभूषणजातशोभा, पुत्रोऽपि मे न समतामनया प्रयाति।
काले पुनः शमदमादिगुणैर्वरिष्ठा, भूयाद् वधूर्जगति शाश्वतपुण्यसेतुः[४] ॥४२॥

कुमार सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् यशोधरा उनकी अनुपस्थिति में भी उनके अभीप्सित कार्य को करती हैं[५]। यशोधरा सब अलंकारों का त्याग करके, सुख समृद्धि से विमुख होकर सिद्धार्थ से अधिक तपश्चर्या का आचरण करती हैं। उनको यह विश्वास है कि जन्म-जन्मान्तर में उनका संयोग सिद्धार्थ से अवश्य होगा।[६] प्रव्रज्या ग्रहण करके लौटे हुये सिद्धार्थ बुद्ध से राजा शुद्धोदन यशोधरा के गुणों की प्रशंसा करते हुये कहते हैं—

अपूर्वसत्त्वधरा मम दुहिता यशोधरा।[७]

यशोधरा का जीवन त्यागपूर्ण है। वे अपने एकमात्र पुत्र सप्तवर्षीय राहुल को बौद्धधर्म में दीक्षित करके उसे भिक्षुक बन जाने का अनुमोदन करतीं हैं।[८] यशोधरा दिव्यगुणसम्पन्न हैं। वे अपनी अपूर्व शक्ति से माता गौतमी के नेत्रों को पुनः ज्योति प्रदान करतीं हैं।[९] वे सांसारिक सुख तथा ऐश्वर्य से सर्वथा निस्पृह हैं। अपना सर्वस्व त्यागकर ८७ वर्ष की अवस्था में वे बुद्धदेव से अनुमति लेकर परिनिर्वाण प्राप्त करती हैं[१०]।

## सारदामणि

रामकृष्ण परमहंस की पत्नी सारदामणि शक्ति-सारदम् और मुक्ति-सारदम् नाटक की नायिका हैं। वे शक्ति की अवतार हैं।[११] वे परमेश्वर की परम भक्त, जनकल्याण में तत्पर और सभी का क्षेम करने वाली हैं।[१२]

---

१-१०. निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ २०, २२, ३०, ३२, ४६, ४७, ५६, ६०; ६७, ७७।

११-१२. शक्ति-सारदम् १, १

उनका कथन है कि करताली के साथ भगवान का भजन करने से पापरूपी पक्षी इस देह से उड़ जाता है[१] रामकृष्ण उनको मां काली का रूप मानते हैं। वे उनसे कहते हैं—

येयं सृष्टि-लय-स्थितिप्रणयिनी काली करालानना
या चेदं कृपया शरीरमसृजत् सर्वार्थसंसाधनम्।
सा मे मन्दिरवासिनी नहबतस्था चापि मे यादृशी
त्वं तादृश्यसि लेशतोऽपि न ततो भिन्नेति मन्ये ध्रुवम्[२]॥

सारदामणि की सास उनको सती सावित्री से अधिक पुण्यशालिनी और कल्याणदायिनी समझती हैं[३]। रामकृष्ण उनको पूज्य मानते हैं[४]।

'तेलो मेलो' नामक स्थान पर रात्रि में काली मन्दिर के समीप सारदामणि को कालु बाग्दी नामक डाकू रोक लेता है। वे उसको पिता कहकर सम्बोधित करती हैं। इस सम्बोधन को सुनकर कालु बाग्दी की हिंसावृत्ति वात्सल्य में परिणित हो जाती है[५]। उसे सारदामणि की दिव्यता का ज्ञान होता है और वह कहता है—

नेयं साधारणी वेशधारिणी तारिणी स्वयम्।
विद्योतते शरीरेऽस्या यतो भागवती द्युतिः[६]॥

सारदामणि लोक सेवा में अपना सर्वस्व अर्पण करने वाली, करुणा, क्षमा तथा सहिष्णुता की मूर्ति हैं[७]। वे दयालु प्रकृति की हैं। भूखे प्राणियों को भोजन बनाकर खिलाती हैं[८]। दीन-दुखियों की सेवा में वे सुख का अनुभव करती हैं[९]। रामकृष्ण लाटु महाराज से सारदामणि के विषय में कहते हैं कि सभी प्राणियों में वे ही माता रूप में स्थित हैं और वे मेरी परम शक्ति हैं।[१०]

सतत ममतामयी, सर्वसिद्धिस्वरूपा मां सारदामणि मुक्तिदात्री हैं[११]। संसार का कल्याण करती हुई भी वे आत्मप्रकाशन नहीं चाहती हैं—

यस्या आलोकधारा निखिलमपि जगद् भास्वरं संविधत्ते
यावच्छ्रीरामकृष्णं विचरति बत साप्यात्मगुप्ताविशेषात्।
आचण्डालं जनेभ्यः स्वयमपि ददती मुक्तिमन्त्रं विशेषात्
स्वं निह्नोतुं समाजे रटयति च पुना रामकृष्णानुकम्पाम्[१२]॥

---

१-१०. शक्ति-सारदम् पृष्ठ ८, ९, १३, १४, २०, २१, २७, २७, २९, ४४।
११-१२ मुक्ति-शारदम् १, ३, ४।

रामकृष्ण परमहंस के निधन के पश्चात् वैधव्य की ज्वाला में जलती हुई सारदामणि के लिये अशरीरी रामकृष्ण परम सम्बल हैं[१]। सारदामणि विधवा होते हुये भी सधवा स्त्री के समान वेशभूषा धारण करती हैं। इस पर कामारपुकुर ग्राम के सभी वासी विरोध करते हैं[२]। अन्त में उनकी भक्ति से प्रभावित होकर उनके भक्त बन जाते हैं[३]।

## राधा

'आनन्द-राधम्' नाटक की नायिका राधा शाश्वत आनन्द की स्रोत हैं[४]। उनके विषय में कहा गया है—

'ह्लादिनीशक्तिर्महाभावस्वरूपिणीति, मूर्तिमदानन्दरूपा सेवेति।'[५]

राधा देवी शक्ति-सम्पन्न हैं। वन में भीषण वृष्टि और झंझावात होने पर वे अकस्मात् प्रकट होकर कृष्ण की रक्षा करती हैं।[६] राधा कृष्ण की उपासिका हैं। कृष्ण गोपदेवता का वेष धारण करके उनके सम्मुख आते हैं। गोपीवेषधारी कृष्ण राधा के समक्ष कृष्ण की निन्दा करते हैं। राधा कृष्ण की निन्दा न सुनकर उनको कृष्ण का स्वरूप बतलाती हैं।[७] वे कृष्ण को दोषी नहीं मानतीं।[८] राधा संसार के कल्याण की कामना करती हैं। कृष्ण जब कंस के पास मथुरा जाने लगते हैं तब वे व्याकुल होती हैं, किन्तु जनहित की कामना से वे उनके मार्ग में बाधक नहीं होती हैं।[९]

## मीरा

'अमर-मीरम्' नाटक की नायिका मीरा मेवाड़ के राजा भोज की पत्नी हैं। नाटककार मीरा के विषय में कहता है—

'समग्र-शिशोदिया-राजवंशस्य श्रेष्ठमलंकरणं, निखिलभारतवर्षस्य च युगयुगान्तरीय-पुण्यविभूषणमतुलनं भागवत-प्रेमसुधानिर्झरिणी च[१०]।'

मीरा बाल्य से कृष्ण की उपासिका हैं। वे कृष्ण को पतिरूप में स्वीकार करती हैं। विवाहानन्तर पतिगृह में भी वे निरन्तर कृष्ण की

---

१-३. मुक्ति-सारदम्, पृष्ठ ४, ९-१०-११, १४।
४-९. आनन्दराधम्, पृष्ठ १७ ( प्रणवपारिजातम् ) १८, २१, २६, २७, २८, २८, २२४,।
१०. अमर-मीरम्, पृष्ठ २

उपासना करती हैं।[१] उनकी सास, ननद तथा देवर उनको अनेक अपशब्द कहते हैं किन्तु वे कृष्ण-भक्ति नहीं छोड़ती हैं। मीरा पतिव्रता नारी हैं। वे अपने पति भोजराज की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करतीं परन्तु वे कृष्ण की अवमानना सहने में असमर्थ हैं।[२] वे पति की आज्ञानुसार आत्महत्या करने के लिये उद्यत होती हैं।[३] एक भक्त द्वारा उनके प्राणों की रक्षा होती है।[४] पति के द्वारा अपमानित होने पर भी वे जब संन्यासि-वेष धारण किये हुये उनके पति उनसे मेवाड़ लौटने की प्रार्थना करते हैं, तब वे उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उनके साथ मेवाड़ आ जाती हैं।[५] मीरा के पति उनका स्वरूप पहिचानने में समर्थ होते हैं। मीरा के सम्बन्ध में वे अपनी मां से कहते हैं—

पंकजिनी सा पंकस्य बहूर्ध्वं राजति।[६]

मीरा दिव्यगुण-सम्पन्न नारी हैं। देवर विक्रमदेव द्वारा भेजे हुये कालकूट विष को पीकर भी वे नहीं मरतीं, अपितु उनका शरीर अधिक प्रदीप्त हो जाता है।[७] मीरा धैर्य्यशीला नारी हैं। विक्रमदेव द्वारा दी हुई अनेक यातनाओं को सहने पर भी वे धैर्य नहीं छोड़ती हैं।[८] मीरा क्षमामूर्ति हैं। उनका देवर विक्रमदेव उनको राजप्रसाद से निकाल देता है, तथापि वे उसके कल्याण तथा मेवाडवासियों के हित की कामना करती हुई ईश्वर से प्रार्थना करती हैं।[९] कृष्णोपासना में निमग्न मीरा कृष्ण-मूर्ति में लीन हो जाती हैं।[१०]

### लक्ष्मीबाई

'भारत-लक्ष्मीः' नाटक की नायिका झांसी की रानी लक्ष्मीबाई हैं। वे धीरा हैं। पुत्रशोक से आतुर होते हुये भी वे मृतपुत्र का स्मरण करते हुये अपने पति स्वामी गंगाधर को आश्वासन देती हैं।[११] ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि के समक्ष वे दत्तकपुत्र ग्रहण करती हैं।[१२] रानी दृढ़निश्चयी हैं। राजा गंगाधर की मृत्यु के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नियमानुसार उनका दत्तकपुत्र राज्याधिकारी नहीं हो सकता। अतः रानी को झांसी का राज्य ब्रिटिश सरकार को देने का आदेश मिलता है।[१३] रानी अंग्रेजी सरकार की आज्ञा का विरोध करती हुई दृढ़ निश्चय करके कहती हैं कि प्राण रहते मैं अपनी झांसी का राज्य किसी को नहीं दूंगी।[१४]

---

१-१०. अमर-मीरम् पृष्ठ ४, ६, १४, १४, ३०, २३, ३३, ३९, ४८, ५०
११-१४. भारत लक्ष्मीः, पृष्ठ ६, १४, २६, २६-२७,

रानी लक्ष्मी आंग्ल शासन से जनता को मुक्त कराने के लिये प्रयत्न करती हैं। विधवा होने पर भी उनमें बहुत आत्मबल है। वे कहती हैं— 'विधवा होने पर भी मैं लक्ष-लक्ष सन्तान की जननी हूँ। सन्तान के दु:ख दूर करने में कभी भी पीछे नहीं रहूँगी। कलुष आचरण वाले व्यक्तियों को मैं दण्ड अवश्य दूंगी[१]।' लक्ष्मीबाई झांसी राज्य की सर्वाधिष्ठात्री महारानी बनने की प्रतिज्ञा करती हैं। वे कहती हैं—

'सत्यं लक्ष्मीरहं कालिकातो भिन्नाप्यभिन्ना भविष्यामि। यावन्मम झांसीराज्यस्याहं सर्वाधिष्ठात्री महाराज्ञी पुनर्न भविष्यामि तावत् कदापि नाहं वेणीबन्धन करिष्यामि[२]।'

रानी मोरोपन्त ताम्बे, प्रधान मंत्री लक्ष्मणराव, प्रधान सेनापति जवाहरसिंह के साथ युद्ध की तैयारी करती हैं।[३] वे चिमाबाई, मन्दार, काशी आदि के सहयोग से 'रानी-लक्ष्मी-नारी सेनावाहिनी' का संघटन करती हैं।[४] रानी की वीरता के विषय में भापोटकर की पत्नी कहती हैं—

'या कालिकादेवी सैव जननी लक्ष्मी:। अस्माकं युगे तु लक्ष्मीबाईरूपं धृत्वा जनगणसमक्ष विराजते, सर्वान् विघ्नान् सैव निराकरिष्यति[५]।'

रानी दसवर्षीय पुत्र दामोदर को पीठ पर बांधकर, शत्रुओं को पराजित करती हुई ग्वालियर दुर्ग पहुँचती हैं। अपने प्राणों की चिन्ता न करके वे युद्धरत होती हैं। वे कहती हैं कि शरीरत: अमरता असम्भाव्य है। यश:शरीर ही अमरता का साधन है। आदर्श स्थापित करना मेरे जीवन का व्रत है। यदि मेरे जीवन के आदर्श से भारतीय ललना सहस्र कण्ठों से माता के नाम का उच्चारण करेंगी, यदि वास्तव में वे मां की सेवा करेंगी और भ्रातृद्रोह भूल जायेंगी तो मेरा जीवन सफल होगा।[६]

## अधम-भूमिका

### देवदत्त

देवदत्त 'निष्किंचन-यशोधरम्' नाटक का प्रतिनायक है। वह यशोधरा के साथ विवाह करना चाहता है।[७] देवदत्त के साथी उससे पूछते हैं कि यशोधरा के विवाह की प्रतियोगिता में यदि सिद्धार्थ विजयी होगा तो तुम क्या करोगे? इस पर देवदत्त उत्तर देता है कि मैं यशोधरा और उसके पति के टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।[८]

१-६. भारत-लक्ष्मी:, पृष्ठ २९, ३०, ३६ ४२, ४७, ६१।
७-८. निष्किंचन० ,, १३, १४

देवदत्त पतित है। यशोधरा से सिद्धार्थ का विवाह हो जाने पर भी वह यशोधरा को पाने का प्रयत्न करता है।[१] इसी दुर्भावना से वह उसके प्रेम में उन्मत्त होकर उसके प्रासाद में जाता है। द्वारपालों द्वारा रोके जाने पर वह उनको मादक द्रव्य सुंघाकर उन्हें मूर्च्छित करके यशोधरा के पास पहुँचता है।[२] यशोधरा उसको समझाती है। जब वह बातों से नहीं मानता तो वह पादाघात द्वारा उसे बाहर निकाल देती है।[३]

### कंस

कंस 'आनन्द-राधम्' नाटक का प्रतिनायक है। वह क्रूर, उद्दण्ड और अभिमानी राजा है। राजमद से उन्मत होकर वह दैव को कुछ नहीं समझता। वह कहता है—दैव क्या वस्तु है? मेरे शासन करने पर देवता भी राज्यभ्रष्ट, पथभ्रष्ट और काय-भ्रष्ट होकर जीवन त्याग देंगे। दैव मेरे तलवे चाटेगा। वह गर्व से कहता है—'न कंसो दैवमुखापेक्षी[४]।'

कंस के विषय में कहा गया है—

'पापाचारो भारभूतो धरित्र्याः'।[५]

कंस छली है। छल से कृष्ण और बलराम को बुलाकर वह उनकी हत्या करने की चेष्टा करता है।

### विक्रमदेव

मीरा का देवर विक्रमदेव 'अमर-मीरम्' नाटक का खलनायक है। वह स्वभावतः क्रूर है। मीरा की कृष्णभक्ति देखकर वह क्रुद्ध होता है। मीरा के गृहत्याग के पश्चात् वह अपने भाई को पुनर्विवाह करने की मन्त्रणा देता है।[६] विक्रमदेव खल और निर्दय है। भोजराज की मृत्यु के पश्चात् वह मीरा का जीवन समाप्त करने के लिये वह उनके पास विष भेजता है।[७] विष-पान करने से भी मीरा जब नहीं मरतीं तो वह उनसे अनेक अपशब्द कहता है और उनकी कृष्णभक्ति का उपहास करता है।[८] वह मीरा को राजप्रासाद से बाहर निकाल देता है। उसकी मां मीरा के प्रति उचित व्यवहार करने के लिये उसको समझाती है किन्तु वह मां की बात नहीं सुनता है।[९]

---

१-३. निष्किंचन०, पृष्ठ १७, १९, २०।

४-५. आनन्द-राधम्, पृष्ठ ७०, ७५।

६-९. अमर-मीरम् २१, ३१-३२, ३५, ३८।

## हसन-भूमिका

यतीन्द्र ने नाटकों में विदूषक का हास्य न रखकर हास्य उत्पन्न करने वाले झम्रु, डमरु, स्थूलोदर, क्षुद्रग्रीव, लिम्ब आदि पात्रों का समावेश किया है। विदूषक का हास्य संस्कृत में पिष्टपेषण है। नाट्यकार ने परम्परा से चले आने वाले हास्य को एक नवीन दिशा में प्रवृत्त किया है। इन पात्रों के हास्य से जनता का मनोरंजन होने के साथ तत्कालीन युग की प्रवृत्तियों की भी झलक मिलती है। इन पात्रों से नाटक का वातावरण और सजीव हो उठता है। क्षुद्रग्रीव, लम्बकर्ण, स्थूलोदर, झम्रु, डमरु, सूर्य, चन्द्र, तन्त्र-पुच्छ, न्याय-चंचु आदि इसी प्रकार के पात्र हैं।[१] इन पात्रों का इतिहास में अस्तित्व नहीं है तथापि इनके हास्य में तत्कालीन समाज का चित्र चित्रित किया गया है। डा० नगेन्द्र ने इस प्रकार के पात्रों के विषय में ठीक ही कहा है—'इन पात्रों को भी ऐतिहासिक मानना चाहिये क्योंकि इनका अस्तित्व चाहे तथ्य-परक न हो परन्तु तत्व-परक अवश्य है—अर्थात् इनका यह विशेष नाम या रूप न रहा हो परन्तु ये उस युग-विशिष्ट की प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं, इसमें सन्देह नहीं—इनसे इतिहास जुटाने में कोई लाभ न होता हो; परन्तु युग का इतिहास ज़गाने के ये अमोघ साधन हैं। ये तथ्य संकलन में सहायक

---

1. The farcical characters introduced by Dr. Chaudhuri herein viz. Ksudragriva and Lambakarna, Candra and Surya and other characters with a sly humour such as Sthulodara are indeed beautiful creations. Each character is a lively one and adds to the grace of the work and proper development of the theme in a perfect manner............In every drama of Dr. Chandhuri the farcical charcters bring in a bold relief to the serious situation and always prove to be very enjoyable indeed. The audience waits for these scenes in great earnest. The whole house bursts into frequent laughters and loud cheers when Dr. Chaudhuri's farcical character appear on the stage. I again repeat, they are no traditional Vidusakas but Dr. Chandhuri's own ereations that win over the heart of the audience easily.

Amareshuar Thakur foreword.

निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ १५

न होकर वातावरण तैयार करते हैं और ऐतिहासिक कथाओं में घटनाओं और नामों की अपेक्षा वातावरण का महत्व कहीं अधिक है, क्योंकि इतिहास की आत्मा नामों और घटनाओं में न रहकर वातावरण में ही रहती हैं।'[१]

## समीक्षा

यतीन्द्र ने जिस प्रकार कथावस्तु के संयोजन में प्राचीन और नवीन नाटच परम्पराओं का समन्वय किया है, उसी प्रकार चरित्र-चित्रण में भी उन्होंने समन्वय की दृष्टि अपनाई है, किन्तु चरित्र-चित्रण में वे अपनी शैली को अधिक विकसित नहीं कर सके।

नवीन शैली के अनुसार नाटकों के पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व उनके चरित्र का एक महत्वपूर्ण अंग होता है, किन्तु यतीन्द्र के पात्रों में चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व नहीं है। उसका कारण यह है कि प्रायः उनके पात्र दिव्य गुण सम्पन्न हैं। वे जिस कार्य को करने का निश्चय करते हैं उसको तुरन्त कर लेते हैं। उनके मन में हर्ष, विषाद तथा अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता दिव्य गुणों के होने पर भी यतीन्द्र किसी सीमा तक पात्रों में मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल और अन्तर्द्वन्द्व दिखला सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। भारतीय नाटचशास्त्र के अनुसार 'नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र मनवाला, बातचीत करने में कुशल, कुलीन वंश में उत्पन्न, मन आदि से स्थिर और युवा अवस्था वाला होता है। वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त होता है, शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है।'[२] नायक के ये गुण उनके नाटकों के सभी नायकों में मिलते हैं।



---

१. डा० नगेन्द्रः विचार और विश्लेषण, पृष्ठ १४६-१४७।

२. आ० चन्द्रशेखर पाण्डेय : दशरूपक, पृष्ठ ७५।

पञ्चम अध्याय

# देशकाल-निदर्शन

नाटक की सफलता के लिये देशकाल का सफल चित्रण आवश्यक है। कथानक में विश्वसनीयता लाने के लिये कथाकार इस तत्व का प्रयोग करता है। 'कथानक के पात्र भी वास्तविक पात्र की भांति देशकाल के बन्धन में रहते हैं।...बिना देशकाल के पात्रों का व्यक्तित्व भी स्पष्ट नहीं होता है, और घटनाक्रम के समझने के लिये भी उसकी आवश्यकता होती है[१]।' वातावरण के बिना पात्रों का अपना अस्तित्व नहीं रह जाता। 'जितनी ही वास्तविक पृष्ठभूमि में चरित्रों को प्रकट किया जायेगा, उतनी ही गहरी विश्वसनीयता का भाव जगाया जा सकता है[२]।'

यतीन्द्र के नाटकों में देशकाल का ध्यान रखा गया है। देशकाल का वर्णन करते समय उन्होंने सदैव अनुपात और सन्तुलन का ध्यान रखा है। नाटकों में जिस काल का वर्णन किया गया है उसी काल के पात्र और वेशभूषा का वर्णन उन्होंने किया है। वैदिक काल का वर्णन करते समय अथर्वा, सिन्धुक्षित् आदि पात्रों का समावेश हुआ है। मुगलकाल का वर्णन करते समय नाटककार ने अकबर, शाहजहां, जहांनारा आदि का प्रवेश कराया है। यतीन्द्र के देशक़ाल का वर्णन कथानक को गति प्रदान करने में सहायक होता है।

देशकाल को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) वस्तु वर्णन तथा प्रकृति वर्णन,

(२) समाज वर्णन।

## वस्तु-वर्णन

यतीन्द्र की निरीक्षण शक्ति, सूक्ष्म थी। उन्होंने भू-भाग, ग्राम, पर्वत, नदी आदि के सजीव चित्र उपस्थित किये हैं। उनका वर्णन पढ़ते ही उनके

१. डा० गुलाबराय : काव्य के रूप, पृष्ठ १८५

२. डा० भगीरथ मिश्र : काव्य-शास्त्र, पृष्ठ ८७

चित्र हमारी आंखों के सम्मुख आ जाते हैं। 'मेलनतीर्थ-भारतम्' में भारत की प्राकृतिक सुषमा का मनोरम वर्णन है। भारत के नैसर्गिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुये अथर्वा ऋषि कहते हैं कि भारत-जननी का सौंदर्य अपूर्व है। यहां ऊंचे-ऊंचे पर्वत, अगाध जल से भरे हुये समुद्र, सिंह, व्याघ्र आदि पशुओं से युक्त अरण्य, बड़े-बड़े नगर शोभायमान हैं। लता, गुल्म, पादप सभी भागवतविभूति से सम्पन्न होकर मानो गर्व से अपना मस्तक ऊंचा किये हैं। दिगन्तवाहिनी नदियां माता के समान देश की संतान को पथप्रदान कर संवर्धित कर रही हैं।[१] लोपामुद्रा कहती हैं कि भारत जननी का रूप अनुपम है, हिमालय जिसके माथे के मुकुट के समान सुशोभित हो रहा है, विन्ध्याचल माला जिसकी मेखला, हैं, पारावार अपनी सहस्र उर्मियों से जिसके चरणों को धोता है।[२]

'विमल-यतीन्द्रम्' नाटक में गोण्डारण्य, दक्षिणावर्त भू-भाग और काश्मीर के रमणीक चित्र चित्रित किये गये हैं। गोण्डारण्य का वर्णन करते हुये रामानुज कहते हैं कि विन्ध्याचल का पादवर्ती गोण्डारण्य शोभायमान हो रहा है। विरलजनसंचार वाला भी यह स्थान प्रकृति की लीला के विस्तार से परम मनोरम प्रतीत होता है।[३]

प्रवहति शिखराग्रान्निर्झरोऽयं पुरस्ता—
दयमिह मृगशावः प्राप्तवान् पातुमम्भः।
विशति न तरुषण्डच्छादितायामटव्या—
मिह मिहिरमयूखः क्षोणदीप्तिः प्रभाते[४] ॥२०॥

(सामने पर्वत के अग्रभाग से निर्झर प्रवाहित हो रहा है। यह मृगशावक पानी पीने के लिये आया है। तरुसमूह से आच्छादित इस अटवी में प्रभातकाल में क्षीणदीप्ति वाला सूर्य प्रवेश नहीं कर रहा है।)

दक्षिणावर्त भूभाग में बहती हुई गोदावरी, कृष्णा, पम्पा, कावेरी नदियों का वर्णन करते हुये यामुनाचार्य कहते हैं—

गोदावरी वरयतीव नरान् स्वरेतुं
कृष्णाप्यकृष्णचरितं कुरुतेऽभिषेकात्-।

---

१-२. मेलनतीर्थ-भारतम्, पृष्ठ ४-५, ७
३-४. विमल-यतीन्द्रम्, ,, १०; १०

सम्पादयत्यखिल - वांछितमेव पम्पा,
कावेर्यपि प्रवरवेरभयं भिनत्ति[1] ।।४०।।

काश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुये रामानुज कहते हैं कि एक ओर ऊंचे हिमालय की चोटियों वाला भू-भाग है, दूसरी ओर वेगवती नदी की धारा। स्थान-स्थान पर हिमाच्छादित पर्वतशिखर सुशोभित हो रहे हैं। पक्षी गा रहे हैं। समीप ही भीषण गर्जन के साथ नदी बह रही है। असंख्य नयनविलोभन पुष्प प्रस्फुटित हो रहे हैं। शत योजनव्यापी उपत्यका दृष्टिगोचर हो रही है। पृथ्वी पर इतनी विभूति, इतना सौन्दर्य और कहां मिल सकता है[2] ।

भारत की शस्य-श्यामला वसुन्धरा की सुषमा का दर्शन करते हुये स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि यहाँ खेतों में श्यामला शस्यमाला मन्दवायु के झोंकों के साथ लहरा रही है। नदियों में उठती हुई चंचल लहरें मानों तैरने का अभ्यास कर रही हों[3] ।

बंग देश के रम्य स्थलों का चित्रण करते हुये कवि लिखता है—

आतपविरसे निदाघदिवसे सान्ध्यसमीरणसुसेविनीम् ।
नवघनमाले वर्षगकाले नदीकल्लोलोल्लासिनीम् ।
शेफालिशोभित - शारदप्रभात - नृत्यत्काशकुलशोभिनीम् ।
परम-सुकान्त-सुशान्त-हेमन्त-लसद्धान्यमधुहिल्लोलिनीम्[4] ।।

दक्षिणेश्वर की शोभा का वर्णन करते हुये केशवचन्द्र कहते हैं कि ऊपर चन्द्र शोभायमान हो रहा, नीचे पुण्य जल वाली गंगा बह रही है, सामने शुचितनु रामकृष्ण हैं। इन तीनों के योग से यह स्थल पवित्र तीर्थ बन गया है।

ऊर्ध्वे पीयूषवर्षी हसति हिमकरो निम्नतः पुण्यतोया
शान्तस्निग्धोर्मिरम्या वहति कुलुकुलुध्वानिनी जह्नुकन्या ।
अग्रेऽसौ शुभ्रकान्तिर्वसति शुचितनुस्तापसो रामकृष्णो

---

१. विमल-यतीन्द्रम्, पृष्ठ १९
२. भारत-विवेकम्, ६०
३. भारत-विवेकम्, ६६
४. भक्ति-विष्णुप्रियम्, श्लोक ४-५

थोगादेतत्त्रयाणां स्थलमिदमभवत् पावनं तीर्थभूतम्[१] ।।७२।।

लंदन में डाक्टर स्कट के निवासस्थान के आस-पास के भू-भाग का वर्णन करते हुये रवीन्द्र कहते हैं यह स्थान परम शोभन और महिममय है—

नीलाम्वरपिहितांगः करताल - सगौरव - संगीतरतः
नृत्यति पारावारः शान्तमहिममयाभिव्यक्तियुता
श्यामाभा गिरिमाला कुटिलकुटिलं विलोकतेऽघः
आमोदमयच्छायाः समोन्नता देवदारुमहीरुहाः
प्रसारितबाहुशाखाः शिशिरीकुर्वन्ति वितत-तटभूमिम्
समुद्रसख्योल्लसितं नीलनभो लसति रविकिरणोज्ज्वलम्[२] ।।

## नाम गणना के रूप में

यतीन्द्र ने किसी-किसी स्थल पर वस्तु-वर्णन केवल नाम गणना के रूप में किया है। वृन्दावनस्थली की शोभा का वर्णन करते हुये कवि लिखता है—

मल्लिका-मालती-जाती-सप्तपर्णसुशोभिता ।
लवंग-सप्तला-यूथी-लवली-वल्लरीयुताः ।।
हिन्तालताल-वकुलामलकीतमाल-
खर्जूर-सर्ज-वट-भूर्जकक्रष्णचूडैः ।
मन्दार-तिन्दु-हरिचन्दन-तिन्तिडीकैः
श्यामानिरूद्धशशिसूर्यकरप्रसारा[३] ।।

इस प्रसंग में कवि ने वृन्द्रावनस्थली का वर्णन करते हुये वहां के विभिन्न पुष्प, लता और वृक्षों के नाम गिनाये हैं।

## मानवीकरण

यतीन्द्र ने नदियों का वर्णन प्रायः मानवीकरण के रूप में किया है। उसमें भी नदियों को प्रायः मां माना है—

---

१. शक्ति-सारदम्, पृष्ठ ४०

२. भास्करो०, श्लोक ९६-९८, पृष्ठ ६०

३. आ० राधम्, पृष्ठ २१

आद्या सृष्टिर्विधातुर्जलमयवपुरुषो हे तटिन्यो जनन्यौ।
युष्माकं स्नेहसिक्तास्त्रिभुवन-भवना जीवसंघा ध्रियन्ते।
धारा यासामपापा व्यपनयति मलं वाग्वपुश्चेतसां न-
स्ता यूयं भारतेऽस्मिन् प्रवहतपरितो ग्रामपुर्यादिसीमाम् ।।[१]

भागीरथी के सौन्दर्य वर्णन करते हुये कवि लिखता है कि प्रसन्न-सलिला जननी भागीरथी प्रवाहित होकर जलधारा से सब दुःखों को दूर करके अपने पुण्य प्रताप से समस्त देश को पवित्र करके सागर से मिलने जा रही है।[२]

'महिममय-भारतम्' में यमुना को एक प्रेयसी के रूप में चित्रित किया गया है जो स्वप्न समाप्त होने पर प्रियतम का स्थान देखकर हर्षोल्लास से उसके पास ले जाई जा रही है—

झटिति स्वप्नावसाने दृष्टप्राणप्रियस्थाने,
नीयमाना स्रोतस्विनी प्रमत्तविहारे।
गोमहिषगणावास—सविशेष—सवनाश—
समुत्पाद—पूर्णोल्लासाऽसार संसारे।
तटिनी रासधाविनी प्रणयिबहुशोभिनी,
कोटि-कोटि-करयुता गलित-गलहारे।
क्रीडारसे विलापिनी कृष्णमायाविलासिनी,
यमुना नीलकान्तछाया गलदश्रुसारे।।[३]

यमुना के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ अक्रूर कह रहा है कि ओस से सुन्दर पत्रों वाली, कदम्ब की कलियों से युक्त, पलाशदल से सुशोभित; पक्षियों से निनादित वन प्रदेश वाली यमुना शोभायमान हो रही है—

विलुलितपत्र-शैशिरकणे कदम्बकलिकाप्रसारमणे
दनुजपात-पूतहसेन पलाशिदलशोभि-पीतवसने।
विहगनिनादधन्य-विपिने विलोलहरिणीदृशामतिकमने
मुररिपुवासदृष्टसदने विलासमनिशं तनुषे यमुने[४] ।।१।।

---

१. महिममय-भारतम्, पृष्ठ ४
२. भक्ति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ १५
३. महिममय-भारतम्; पृष्ठ १९ – श्लोक ३७–३८
४. आनन्द-राधम्, पृष्ठ ७२

## उपमान

जल-प्रवाह का वर्णन करते हुये पेलवकुमार कहता है—

सम्मुग्धा इव जृम्भकेण समरे निद्रापिताः सैनिकाः
ये स्तब्धा जलराशयः खलु मया पूर्वं समालोकिताः।
मन्त्रोत्सारित-गाढ़-सुप्तय इवोद्दामा दनोरात्मजा,
रोषोन्नद्धफणा यथा च फणिनो धावन्ति तेऽमी क्षणात्[१] ।।४०।।

यतीन्द्र ने नादियों का मानवीकरण और उपमान के रूप में वर्णन करने के अतिरिक्त उनका शुद्ध प्राकृतिक रूप में भी चित्रण किया है। यमुना, गंगा का वर्णन उनके अनेक नाटकों में पाया जाता है। जहांनारा यमुना की प्रशंसा करती हुई कहती है कि सदा जल से पूर्ण करने वाली, जगत् को जीवन (जल) प्रदान करने वाली कलिन्दकन्या यमुना सुशोभित हो रही है—

सदानीरेयं यमुना लसति पूर्णजीवना
रसघना प्रेमघना जागतविहारे।
कलिन्दकन्यका धीरा जगज्जीवनसेवावीरा
प्राणसमर्पण-परा विभूति-सागरे[२] ।।१७।।

पतितपावनी गंगा का वर्णन करती हुई मां सारदामणि कहती हैं कि पापियों को पवित्र करने वाली, कलुषनाशिनी, कल्याण करने वाली गंगा समीप में ही प्रवाहित हो रही है—

अदूरे प्रवहति खरतरा भागीरथी - धारा,
पतितपावनी कलुषनाशिनी कल्याणसारा।
हरजटाजूट-मन्थनसंघट्ट-रसित-स्नेहाकारा,
कालकालकाल-त्रुटनातुल-प्रावाहाकुलापारा[३] ।।१२१।

## प्रकृति-वर्णन

यतीन्द्र के नाटकों में चित्रित प्रकृति पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। घटनाओं को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिये, नाटक का

---

१-२. महिममय—भारतम्, पृष्ठ २०, ५
३. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ४०

सौन्दर्य बढ़ाने के लिये, वातावरण प्रस्तुत करने के लिये लेखक ने प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण आदि के रूप में चित्रण किया है। यतीन्द्र के नाटकों में प्रकृति में मानव हृदय की भावनाओं के साथ तादात्म्य पाया जाता है। यतीन्द्र के नाटकों में प्रकृति निराश मनुष्यों को निराश न होकर सतत गतिशील रहने की प्रेरणा देती हैं। कहीं-कहीं प्रकृति अपने उन्मुक्त रूप में दिखलाई पड़ती है। यतीन्द्र ने विभिन्न ऋतुओं का सजीव और स्वाभाविक वर्णन किया है। उन्होंने प्रातः अपरान्ह, सन्ध्या तथा रात्रि के शब्द चित्र उपस्थित किये हैं। लेखक ने कहीं-कहीं पर प्रकृति में उत्पन्न होने वाले पदार्थों की केवल नाम गणना की है।

कलाकार मानव और प्रकृति में तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करता है। जब मनुष्य दुःखी है तो उसे प्रकृति भी शोक के कारण आठ-आठ आंसू बहाती प्रतीत होती है। मनुष्य के प्रसन्न होने पर प्रकृति भी उसको हर्ष से नृत्य करती हुई दिखलाई देती है। विष्णुप्रिया और महाप्रभु के विवाह के अवसर पर नर-नारियों में आनन्द समाया हुआ है। प्रकृति भी हर्षोन्मत्त हो जाती है। प्रकृति में भी समारोह दिखलाई पड़ता है। विमल कौमुदी पृथ्वी का आलिंगन कर रही है। दिन-भर घूम कर आये हुये पक्षी रात्रि में मधुर कूजन कर रहे हैं। मलयानिल का सम्पर्क पाकर सभी दिशायें आनन्द से झूम रही हैं—

फुल्लालिंगति कौमुदी सुविमला गाढ धरामातरं
यामिन्यां दिवसप्रभात् सुमधुरं कूजन्त्यलं पक्षिणः।
सम्पर्कान्मलयानिलस्य चलतामोदेन सर्वा दिशः
पूर्णाः सम्प्रति मानवाश्च नितरामौत्सुक्यमापादिता[१] ।।५५।।

माता सारदामणि के घुघुडि ग्राम में आने से नर-नारियों के आनंद की सीमा नहीं है। सभी हर्षविभोर हैं। प्रकृति भी हर्षोल्लास में उनका साथ दे रही है। एक स्त्री कहती है कि जननि जगदम्बिके ! तुम्हारे यहां आने से हम लोगों के भाग्य गगन के साथ यह आकाश भी निर्मल हो गया। मानव मन को हरने वाली मधुर छवि सर्वत्र विद्यमान है। गन्धराज, कुरवक, अशोक लहलहा रहें हैं, नीलकण्ठ नृत्य कर रहे हैं। विकसित कदम्ब पृथ्वी को रंजित कर रहे हैं। हे जननि ! पुष्प-पुष्प में तुम्हारी

---

१. प्रीति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ २२

मुस्कान है। शष्य-शष्य पर तुम्हारे पद संचार का मृदु कम्पन है, पक्षियों के कूजन में 'ठाकुर' नाम की जप ध्वनि है।[१]

यतीन्द्र के नाटकों में उद्दीपन के रूप में भी प्रकृति का चित्रण हुआ है। दुःख के कारण प्रकृति का रम्य रूप भी उग्र, पीडक और उपहास करता हुआ सा प्रतीत होता है। प्रकृति उन्हें शून्य प्रतीत होती है। हरिदास की मृत्यु पर महाप्रभु को समस्त संसार शून्य प्रतीत होता है। वे कहते हैं—

शून्यं पश्याम्यधन्यो निखिलमपि जगन् निष्फलं कृष्णनाम।
प्राणान् शल्यायमानान् सकलसहचरान् भावये शोचनीयान्।
कार्ये कस्मिन्नपीच्छा न भवति चलतो नापि पाणी च पादौ।
निर्याणं सन्निकृष्टं प्रियतमहरिदासस्य संचिन्त्य चित्ते ॥१२३॥[२]

यतीन्द्र के नाटकों में प्राकृतिक व्यापारों के साथ मानवीय व्यापारों का सामंजस्य स्थापित किया गया है। राजा शुद्धोदन का राजपुरोहित गोपा को देखकर प्रसन्न होता है और उसे वह सिद्धार्थ के लिये उपयुक्त वधू समझता है। उसी समय सूर्यास्त हो जाता है। राजपुरोहित कहता है कि एक ओर मरीचिमाली सूर्य अस्त हो रहा है और दूसरी ओर मेरे हृदय में आशा रूपी सूर्य उदित हो रहा है। चन्द्रोदय और सूर्यास्त के अन्तराल में होने वाली ऊषा के समान मेरे हृदय में प्रसन्नता व्याप्त हो रही है।

एकतः प्रयात्यस्तं मरीचिमाली मच्चिताशाभानुरुदेति चान्यत।
एतयोर्निर्गमाभ्यान्तराले सायन्तने हृदये मे आयात्यूषा ॥
घनान्धकारोऽसौ सूर्येण सह गतो नवालोको विभाति साकं तमेभिः
चमत्कारित्वं हन्त मानवमनसो हर्षेण हर्षोच्चयात् स्फूर्जताज्जगत् ॥[३]

यतीन्द्र के नाटकों में मानवीकरण के रूप में प्रकृति का रम्य चित्रण हुआ है। भास्करोदयम् में वृक्ष का रहस्यवाद की छाया से प्रतिबिम्बित मानवरूप में चित्रण किया गया है। वृक्ष को देखते हुये बालक रवीन्द्र कहते हैं—

---

१. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ४२

२. महा० हरि०, ,, ७२

३. निष्किंचन-यशोधरम्, श्लोक १८-१९, पृष्ठ १०

वटद्रुम ! जटालस्त्वं छायामायावपुर्धरः ।
अन्तस्ते राजते कोऽसौ विभुर्विश्वविमोहनः[१] ॥१६॥

मन्दं मन्दं वहति पवनस्तत्परः सेवने ते
वापी रम्या हरितसलिलं कल्पयत्यर्घ्यमग्र्यम् ।
प्राकारस्त्वामुरसि वहते सादरं तातकल्प—
स्त्वं स्नेहार्द्रः सुत इव धरां पल्लवैरावृणोषि[२] ॥२०॥

सारदामणि प्रभातकालीन सौन्दर्य को देखते हुये कहती हैं कि श्वेत वस्त्र धारण की हुई, रक्त ललाट से सुशोभित उषा आ रही है—

श्वेताम्बरा वरारोहा रक्तललाटशोभना
भास्करारात्रिवन्यालो कूजनशंखनादिनो ॥११६॥

मालयचामरोपेता मेघालिपुष्पभूषणा
उषा स्वर्णमहीकन्या प्रादुरेति दिगंगने[३] ॥१२०॥

इस प्रसंग में नारी के रूप में उषा का वर्णन किया गया है ।

यतीन्द्र के नाटकों में सन्ध्या का भी मां के रूप में वर्णन मिलता है । राधा सन्ध्या की स्तुति करती हुई कहती हैं—

सततं शममयि शोभनसन्ध्ये ! सन्तापहारिणि ! सुरशतवन्द्ये !
दिनमणिमोहिनि ! गुणगणनन्द्ये ! लिनामि मातः ! पदमकरन्दे[४] !

रात्रि का वर्णन करते हुये गोवर्धनदास कहता है कि मुस्कराते हुये चन्द्रमा को देखकर सन्ध्यारूपी कुलांगना दीपशिखा के समान अपने घर में प्रवेश कर रही हैं—

सन्ध्याकुलांगना वीक्ष्य शशांक सुस्मिताननं ।
दीपशिखाच्छलाद्देवी विशति स्वनिकेतनम्[५] ॥३४॥

उपमान के रूप में सन्ध्या का वर्णन करते हुये कवि लिखता है कि दिवा और निशा दो सखियां मानो अनुराग में भर-भर कर परस्पर आलिंगन

---

१-२. भास्करोदयम्, पृष्ठ १५, १६

३. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ४०

४. आ० राधम्. पृष्ठ १३

५. महा० हरिदासम्, पृष्ठ १५

कर रही हैं। झिल्लिका के स्वरों के द्वारा मानों वे मधुर भाषण कर रही हैं। उनके सिन्दूर से गगनरूपी आकाश क्षण भर के लिये रक्तवर्ण का हो रहा है। उनमें विरह की ग्लानि उत्पन्न हो रही है—

अनुराग-खरोद्दीपनं दिवानिशासखीद्वयम्
मिलनरागसंफुल्लं शिलष्यतीव परस्परम् ॥१२॥
विस्तार्यं झिल्लिकारावैरानन्दमधुभाषितम्
रक्तायते निमेषाय सिन्दूरैर्गगनांगनम्
विरहग्लानिमापन्नं क्रमाद्यात्यधिकान्तरम्[१] ॥१३॥

यतीन्द्र ने प्रकृति का तादात्म्य, उद्दीपन, मानवीकरण और उपमान आदि रूपों में वर्णन करने के अतिरिक्त प्रातः मध्याह्न, सन्ध्या तथा वर्षा ऋतु आदि का शुद्ध प्रकृति चित्रण किया है।

## प्रभात

प्रभातकालीन सुषमा का वर्णन करते हुये स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि सूर्योदय होने से प्रत्येक सरोवर में सहस्र, कमल विकसित हो रहे हैं। प्रत्येक तरु पर पिक, शुक आदि विहंगम मृदु कूजन कर रहे हैं—

प्रतिसरः कमलानि सहस्रशो, विकसितानि भवन्ति दिनोदये।
प्रतितरूच्चरते रुचिरं रुतं, पिकशुकादि-विहंगम-सन्ततिः[२] ॥१८६॥

प्राभातिक सौन्दर्य को निहारते हुये रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि पल्लवों के अन्तराल से सूर्य उदित हो रहा है, रजनी से उत्पन्न भयंकर तमोराशि डर कर न जाने कहां छिप गई। वृक्षों के कोटरों में और शान्त घोंसलों में बैठे हुये पक्षिगण उच्च स्वर में कलरव करके मानो प्रभु का गुणगान कर रहे हैं।

पत्राणामन्तरालादिव समुदयते मानवं बिम्बखण्डं
भीमाः क्वापि प्रलीना रजनीजनिततमोराशयस्त्रासवश्याः।
वृक्षाणां कोटरे वा दलपुटघटिते शान्तनीडान्तरे वा
गायन्त्युच्चैर्विहंगा विदधति च मनो लीनमीशे[३] ॥

---

१-२. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ५, ६६
३. भास्करोदयम्, पृष्ठ ७५

## मध्याह्न

रामानुज के गुरु यादवप्रकाश का शिष्य कहता है कि मध्याह्न काल में आकाश के ऊपर पहुँचा हुआ सूर्य मानो अग्नि के समान उग्र रूप धारण कर अपनी तीक्ष्ण किरणों से पृथ्वी के सभी पदार्थों को जला रहा है—

मध्यं मध्याह्नसूर्यो वियति उपगतस्तीक्ष्ण-तीक्ष्णैर्मयूखै-
भौमान् सर्वान् पदार्थान् दहन् इव दहत्युग्रमूर्तिं प्रपन्नः।
अस्योग्रा मूर्तिरेषा गुरुगृहवसतिं स्मारयत्यंशतो नः
शिष्यानव्यापकोऽपि ग्लपयति नियतं यद्दुरुक्तेन कायम्[१] ॥११॥

## सन्ध्या

सन्ध्या-समय अस्त होते हुये सूर्य का वर्णन करते हुये कवि लिखता है कि काम करके थक कर लोगों के घर जाने पर सभी कार्यों का अध्यक्ष सूर्य अस्ताचल पर जा रहा है—

कर्मक्लान्ते गतवति जने स्वस्वगेहं पुरस्तात्
कर्माध्यक्षस्तदनु चरमे क्ष्माभृति प्रेति भानुः।
पारेवारां निधि निवसतामेष भास्वानिदानीं
वृत्ता काचिद् पयसि विशति स्वर्णपात्रीव भाति[२] ॥११॥

सूर्यास्त का वर्णन करता हुआ गोवर्धनदास कहता है कि दिन-भर पर्यटन करके थका हुआ रक्त वर्ण वाला प्राची के प्रेम का स्मरण करके व्याकुल होकर सूर्य सन्ध्या को धूमिल करके, नक्षत्र पंक्तियों को छोड़कर अपने नेत्र बन्द कर रहा है—

क्लान्तोऽत्यन्तं दिवसमटनाद् भास्करो रक्तचित्तः
प्राचीप्रेमस्मरणविधुरो भावनाभारलिप्तः।
नक्षत्राली - हृदय - लिपिका - वर्जनैकान्तचिन्तो
नेत्रे मुद्रात्यहह झटिति म्लापयित्वा हि सन्ध्याम्[३] ॥३३॥

## रात्रि

रास निशा का वर्णन करते हुये श्रीदामा कह रहे हैं कि रात्रि सत्य

---

१. विमल-यतीन्द्रम् पृष्ठ ५
२. दीन० रघु० पृष्ठ ४
३. महा० हरिदासम्, पृष्ठ १५

ही दिवस के समान प्रतीत हो रही है। अन्धकार सहसा विलुप्त हो गया है। प्रत्येक दिशा में पशु पक्षियों का संचार हो रहा है। वस्तुओं को देखने में बाधा नहीं हो रही है। आकाश तारों से रहित हो गया है, केवल कमलिनो के बन्द होने और कुमुदिनो के विकसित होने से रात्रि का अनुमान लगाया जा रहा है—

ध्वान्तं क्वापि विलोनमद्य सहसा बाह्यं तथाभ्यन्तरम्
संचारः पशुपक्षिणामनुदिशं संलोक्यतेऽवतारितः।
वस्तूनामपि नास्ति दर्शनविधौ बाधा वितारं वियद्
आकुंचन्नलिनोमुखैः कुमुदिनीहासैर्निशा मीयते[१] ॥

## ज्योत्स्ना

पृथ्वी पर बिखरी हुई चांदनी को देखकर रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि रजत की आभा के समान, सहस्र किरणों से उज्ज्वल, आनन्द का निर्झर, स्वप्न का स्थान, शान्त कान्तिवाली, कोमल मधुमय रस के लेप वाली, ताप से रहित ज्योत्स्ना पृथ्वी को निद्रामग्न कर रही है। शान्त और अनुकूल पवन लोरी गा रहो है—

अहो रजताभा ज्योत्स्ना सहस्रकिरणोज्ज्वला
महानन्दनिर्झरः सा स्वप्नावेशभूमिः।
प्रशान्तकांतिः कोमलमधुमयरसप्रलेपा
निद्राभरनां धरित्रीं कुरुते तापहीनाम्[२] ॥१६२॥

## वर्षा-वर्णन

यतीन्द्र ने वर्षाकाल को प्रसूनपुरुष का रूप देकर, उसका चित्रण किया है। वर्षा का वर्णन करता हुआ चारण कवि कहता है कि पुष्पमय पुरुष के समान वर्षा काल आ रहा है। मकरन्द पर मंडराते हुये भौरों से उसका मस्तक सुशोभित है। कल्हार जिसका विलास है, बन्धुजीव के पुष्प से जिसके अधरोष्ठ मण्डित हैं, मालती के पुष्प जिसके दांतों की शोभा हैं, केतकी जिसके चित्त की शुद्धि है, जिसकी देहयष्टि कदम्ब की कली से पूर्ण है, मेढकों की ध्वनि जिसका संगीत है, नील कण्ठों से जिसका

---

१. आ० राधम्, पृष्ठ ५५

२. भास्करोदयम्, पृष्ठ ८५,

कण्ठ सुन्दर है, चंचल चपला से जो चमक रहा हैं, वर-वधू के ऊपर जो मंगल की वर्षा कर रहा है, ऐसा वर्षाकाल आ रहा है—

प्रसूनपुरुष एति वर्षाकालः। मकरन्दनन्दितमिलिन्दकुलमालः ॥
कैरव-कल्हार-सुस्मितविलासः। बन्धुजीवकलिताधरोष्ठभासः ॥
प्रदोषमालतीजनित-दन्तरुचिः। केतकीयूथी-मुग्धचित्त-शुचिः ॥
प्रस्फुटकुटज-मंगलदधिरेणुः । कदम्बकोरक-लसद्देहवेणुः ॥
मण्डूकोद्गीथ-संगीतमुखरः । नीलकण्ठावली-कण्ठसुन्दरः ॥
चल-सौदामिनी-विलासभासुरः । वरवधूमंगल-वर्षणतत्परः[1] ॥

इन्दिरा कहती है कि दिन का प्रकाश धुंधला हो रहा है। सूर्य अस्ताचल पर जा रहा है। चन्द्र के मधु के इच्छुक बादल आकाश की क्रोड में एकत्रत हो रहे हैं। रंग-बिरंगे बादल इकट्ठे हो रहे हैं। मन्दिर के घण्टे बजते हैं। वृष्टिपात से तरु लुप्त हो रहे हैं। मेघ के मस्तक पर मणिमय ज्वाला है—

दिवालोको निर्वाति भास्करोऽस्तगामी।
नभः क्रोडे मेघराशिश्चन्द्रमधुकामी ॥
मेघोपरि मेघ आस्ते वर्णो वर्णोपरि।
मन्दिरे कांस्यघण्टाध्वनन-माधुरी ॥
पारे दूरे वृष्टिपातो लुप्तं तरुकुलम्।
पारेऽस्मिन् मेघमाले मणिज्वालादलम्[2] ॥

वर्षा को देखकर कवि कल्पना करता है कि आकाश मेघरूपी वस्त्र से अपना मुख ढक कर वर्षा के बहाने मानो रो रहा है। पत्र के अगले भाग से टपकती हुई जल-बिन्दुओं द्वारा यह केसर का वृक्ष मानों आंसू बहा रहा है—

आच्छाद्य मेघवसनेन नभोऽपि वक्त्रं
वर्षाच्छलेन करुणं वत रोदितीव।
पत्राग्रतः स्खलितवारिदवारिबिन्दु-
रेषोऽपि केसरतरुस्त्यजतीव चास्रम्[3] ॥११६॥

---

१. भास्करोदयम्, पृष्ठ ७१-७२
२. भास्करोदयम्, पृष्ठ ९०
३. महा० हरिदासम् पृष्ठ ६९

यतीन्द्र ने प्रकृति के सौम्य, सरस और रम्य चित्रों को लिया है और उसके विकराल, आतंककारी और भयंकर रूप को भी। प्रथम प्रकार के चित्र हृदय में उत्साह भरते हैं और द्वितीय प्रकार के चित्र हृदय में भय और आतंक का संचार करते हैं।

वन में भीषण झंझावात को देखकर राधा कहती हैं—'बहिः प्रकृतिश्च याता झंझाविक्षुब्धा। दारुणो वज्रशब्दो नभोमण्डलं खण्डशो विदारयतीव। सौदामिनी क्षणचकिता मुहुर्मुहुः करोति आत्मप्रकाशम्। मसीविलेपित-गात्राणि कुब्जानि सर्वाणि रोदनशब्दपुरःसरं पत्रचक्षुर्भिरविरलधारं त्यजन्त्यश्रुधाराम्[१]।'

## समाज

समाज वर्णन में हम तत्कालीन समाज की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और आर्थिक परिस्थितियों पर विचार करेंगे। सर्वप्रथम हम यतीन्द्रकालीन समाज की विभिन्न परिस्थितियों पर विचार करके तत्पश्चात् यतीन्द्र के नाटकों में उल्लिखित परिस्थितियों पर दृष्टिपात करेंगे और देखेंगे कि नाटककार किस सीमा तक इन परिस्थितियों का चित्रण अपने नाटकों में कर सका है।

'साहित्य सामाज का दर्पण है।' समाज की स्थिति साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है। अतः किसी साहित्यकार की रचना का सम्यक् अध्ययन करने से पूर्व उसके समकालीन समाज की परिस्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक है।

यतीन्द्र का जन्म बंगाल में सन् १९०८ ई० और मृत्यु सन् १९६४ ई० में हुई। यह युग भारतीय परतन्त्रता का अंतिम भाग और स्वतन्त्रता का अरुणोदय था।

सन् १८९८ ई० में लार्ड कर्जन भारत के गर्वनर जनरल होकर आये। हिन्दु-मुस्लिम-ऐक्य को आघात पहुँचाने तथा साम्प्रदायिकता की भावनाओं को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उन्होंने सन् १९०५ ई० में बंगाल प्रान्त का विभाजन कर डाला। सन् १९०८ ई० में बंगाल में अनेक आतंकवादी घटनायें हुई। केवल बंगाल में ही नहीं, देश भर में भीषण आन्दोलन

१. आ० राधम् पृष्ठ ४७ ( प्र० पा० )

प्रारम्भ हुआ। राजद्रोह का दमन करने के लिये तत्सम्बन्धी कठोर दण्ड विधान बने। भारत के अग्रगण्य नेताओं को जेल की यातनायें सहन करनी पड़ीं।

उग्रवादी नेता तिलक, लाजपतराय आदि भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु उग्र और नरम दल के नेताओं का विरोध चल रहा था। सूरत अधिवेशन में दोनों दलों में फूट हो जाने के कारण अधिवेशन की कार्यवाही सफल न हो सकी।

सन् १९१४ ई० में प्रथम महायुद्ध में आतंकवादियों को छोड़कर देश के सभी नेताओं और राजनीतिक दलों ने सरकार को सहयोग दिया। आतंकवादियों में नरेन्द्रकुमार घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त प्रमुख थे। आंग्ल शासन को उखाड़ फेंकने के लिये यथासम्भव प्रयत्न किया। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जब देशवासियों को सन्तोषजनक सुविधायें नहीं प्राप्त हुई, तब गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। डा० पट्टाभिसीतारामैया ने कहा—'भारतवासियों के लिये इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है कि वे महात्मा गांधी द्वारा संचालित क्रमिक अहिंसात्मक असहयोग की नीति को स्वीकार करें और अपनावें[1]।' महात्मा गांधी के नेतृत्व में देशव्यापी 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ। इससे 'नमक कानून' तोड़ने, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार आदि के अपराध में १९३० ई० में गांधी जी को बन्दी बनाया गया। १९३१ ई० में लार्ड विलिंग्डन भारत आये और उन्होंने जवाहरलाल नेहरू, अब्दुल गफ्फार खां आदि प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को बन्दी बनाया। 'लाठियों से सुसज्जित कांग्रेसी सेना बनाई गई। सरकारी भवनों पर तिरगा फहराया गया। विधान-मण्डलों में कार्यवाही का आरम्भ हिन्दु राष्ट्रीय गान 'बन्दे मातरम्' के साथ होता था····· सरकारी स्कूलों में उर्दू के स्थान पर शिक्षण का माध्यम हिन्दी बनी और मुस्लिम बालकों से गांधी जी को नमस्कार कराया जाता था[2]।' कांग्रेस के इन कार्यों के फलस्वरूप अनेक स्थानों पर साम्प्रदायिक झगड़े हुये और दो वर्ष में लगभग २,००० व्यक्ति मारे गये। सन् १९३९ ई० में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन

---

१. डा० पट्टाभिसीतारामैया : कांग्रेस का इतिहास, भाग १, पृष्ठ १९०

२. डा० परमात्मा शरण : भारतीय शासन और राजनीति का विकास, पृष्ठ २९६

को सहयोग नहीं दिया। ७ सितम्बर १९४१ ई० में जापान के विश्वयुद्ध में सम्मिलित होने पर जवाहरलाल नेहरू तथा राजगोपालाचारी देश में एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की शर्त पर सरकार के साथ सहयोग करने को उद्यत हुये। नेता सुभाषचन्द्र बोस वेष बदलकर जापान पहुँचे और उन्होंने प्रवासी भारतीयों की 'आजाद-हिन्द' सेना बनाई। उनका उद्देश्य इस सेना की सहायता से भारत को स्वतन्त्र करना था। द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ। आंग्ल सरकार अपनी प्रतिज्ञा पर आरूढ़ न रह सकी। तब गांधी जी ने 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो।' का नारा बुलन्द किया। भारतवासियों ने पूर्णोत्साह के साथ गांधी जी का साथ दिया। भारतवासी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये अपूर्व उत्साह, त्याग और निर्भीकता से कार्य कर रहे थे। १२ अगस्त सन् १९४६ ई० में वायसराय ने जवाहरलाल नेहरू को अन्त:कालीन सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित किया। इससे मुस्लिम लीग बहुत चिढ़ गई। उस दिन कलकत्ते में हिन्दू-मुस्लिल दंगे उग्र रूप में हुये। सहस्रों व्यक्ति धराशायी हुये। दूकानें लूटी गई और उनमें आग लगाई गई। २४ मार्च १९४७ ई० को लार्ड माउन्टबेटन दिल्ली आये। उन्होंने हिन्दु-मुसलमानों के बीच समझौता कराने का प्रयत्न किया। उन्होंने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के नेताओं की पूर्ण स्वीकृति प्राप्त करके ३ जून को विभाजन की योजना प्रकाशित की। भारत विभाजन की योजना के अनुसार जुलाई १९४७ ई० में 'भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम' पास हुआ। १५ अगस्त १९४७ ई० को भारत स्वतन्त्र हो गया, किन्तु उसका 'पाकिस्तान' और 'हिन्दुस्तान' दो भागों में विभाजन हो गया। विभाजन के फलस्वरूप देश में एक भीषण स्थिति उत्पन्न हुई। पश्चिमी पंजाब, दिल्ली, कलकत्ते आदि स्थानों पर घोर उपद्रव हुये। भयंकर मार-काट हुई। स्वतन्त्रता-प्राप्ति अहिंसात्मक ढंग से होने पर भी विभाजन के परिणामस्वरूप सहस्रों नर - नारियों को अपने जीवन की बलि देना पड़ी। हजारों घर अनाथ हुये। शरणार्थियों की समस्या उत्पन्न हुई। सन् १९५० ई० में भारत का नवीन संविधान बना, जो २६ जनवरी १९५० ई० से कार्यान्वित हुआ। सन् १९६२ में चीन के द्वारा भारत की सीमा पर आक्रमण करने से सम्पूर्ण भारत में हाहाकार फैल गया।

## आर्थिक-प्रवृत्ति

सन् १८९५ ई० से सन् १९१८ ई० तक का युग भारत की भीषण

दरिद्रता का युग है। महामारी के फलस्वरूप असंख्य जनता काल-कवलित हुई। देवी प्रकोपों के साथ ही शासकों द्वारा भारतीयों का शोषण निरन्तर उग्र रूप से होता रहा। महायुद्ध के परिणामस्वरूप भयंकर बरबादी के कारण आर्थिक मन्दी आई और भारत की कृषि पर रहने वाली बहुसंख्या को बड़ा धक्का लगा। कर-वृद्धि हुई। विशुद्ध पाश्चात्यवाद के साथ-साथ भारत में खद्दर तथा हाथ के बुने कपड़े की प्रगति होने लगी। महात्मा गांधी ने अखिल भारतीय खद्दर संघ का संचालन किया और दृढ़तापूर्वक मशीनों का विरोध किया। बंगाल के भयंकर दुर्भिक्ष के परिणामस्वरूप लगभग ५० लाख व्यक्ति भूख से तड़प-तड़प कर अपना जीवन खो बैठे। स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद राज्यों के पुनर्गठन होने से राष्ट्र की आर्थिक अवस्था में सुधार हुआ। उद्योगों के स्थानीकरण और प्रादेशिक आधार के अनुसार श्रोतों के विभाजन से अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य और व्यापार को प्रोत्साहन मिला। पंचवर्षीय योजनायें बनाई गईं। बांध बांधने, सिंचाई, तथा बाढ़-नियन्त्रण की योजनाओं को पूरा किया जाने लगा।

## सामाजिक-संस्थान

पाश्चात्य शिक्षा के परिणामस्वरूप भारत में महान् सामाजिक परिवर्तन होने लगे। जनता की समाज-सुधार सम्बन्धी मान्यतायें परिवर्तित हुई। सन् १९०१ ई० से १९१८ ई० तक उग्र रूप से समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलन हुए। महात्मा गांधी ने दलित जातियों के उद्धार का बीड़ा उठाया। उन्होंने अछूतों को न केवल हिन्दुओं में मिलाने का प्रयत्न किया, वरन् उनको अन्य हिन्दुओं के समकक्ष रखने का प्रयास किया। अस्पृश्यता-निवारण, मन्दिरों में जनसामान्य का प्रवेश, कुओं से पानी भरने की आज्ञा आदि का अधिकार सभी को प्रदान करने के लिये गांधी जी संघर्ष कर रहे थे।

हिन्दु-विवाह-विधान में सुधार हुये। १९२९ ई० के शारदा एक्ट के द्वारा विवाह की आयु में वृद्धि कर दी गई। 'सिविल-मैरिज-एक्ट' के अनुसार विभिन्न जाति और समुदाय के लोगों के बीच विवाह की आज्ञा मिली।

महिलाओं के अधिकारों की मांग की गई। उनके अधिकारों के सम्बन्ध में नियम बने। स्त्री-शिक्षा पर जोर दिया गया। विधवा-उद्धार के विषय में जनता के विचार प्रगतिशील हुये। उनके जीवन की कठोरता

में कुछ कमी हुई। महिलाओं ने राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेना आरम्भ किया।

जाति-बन्धन शिथिल पड़े। आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये द्रुतगति से प्रयत्न कर रहे थे। शिक्षा में प्रगति हुई। वह कतिपय लोगों के लिये नहीं वरन् प्रजातंत्रीय धारणा के अनुसार जन-सामान्य के लिये थी।

धर्म के सम्बन्ध में लोगों में अन्धविश्वास समाये हुये थे। छुआछुत की भावना को अभी भी प्रमुखता दी जा रही थी। अछूतों के कुओं पर पानी भरने या मन्दिरों में प्रवेश करने पर बड़ी हलचल मच जाती थी। सनातन धर्म भारत में व्याप्त था। इसकी ओर से सामाजिक-धार्मिक सुधारों का निरन्तर विरोध चल रहा था। आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज का बोलबाला था जो मूर्तिपूजा के विरोधी थे। धार्मिक पुनर्जागरण का कार्य प्रभावशाली रीति से हो रहा था। विवेकानन्द के भाषणों से नवयुवकों में देशाभिमान और आत्मविश्वास उत्पन्न हो रहा था। पाण्डि-चेरी आश्रम में अरविन्द वेदान्ती विचारधारा का प्रचार कर रहे थे। गांधी जी अछूतों को धार्मिक क्षेत्र में अधिकार दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे। हमारे संविधान में सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता दो गई तथा उन कुरीतियों का निषेध किया गया जो धर्म के नाम पर होती थीं।

बीसवीं शती में प्रणीत साहित्य की समस्त विधाओं, महाकाव्य काव्य, नाटक, समालोचना, कथा, निबन्ध आदि में राष्ट्रीय भावनाओं का प्राबल्य पाया जाता है। आंग्ल शासन से पीडित जनता के प्रबोधनार्थ देश-प्रेम सम्बन्धी काव्यों का बहुलता से सर्जन हो रहा था। बंग-भंग के विरोध में पत्रपत्रिकाओं में अनेक लेख प्रकाशित हो रहे थे। राज्य-विरोधी लेखों के प्रकाशन में रोक लगायी जा रही थी। 'सन्ध्या' और 'युगान्तर' पत्रों को तो बिल्कुल बन्द कर दिया गया तथा अन्य सनचार पत्रों की भी बहुत क्षति की गई।[१]

युद्धकाल में निबन्ध तथा उपन्यास लेखकों की संख्या बढ़ गई। उनकी रचनायों में देशप्रेम के साथ-सामाजिक समस्याओं का समावेश था। लोक-मान्य तिलक विदेशी शासन के अन्याय रोकने तथा राष्ट्रीय जागरण-हेतु

1. Chabbra Advanced study in the History of modern India, p. 434.

केसरी पत्र का प्रकाशन कर रहे थे। स्वातन्त्र्यान्दोलनों के लिये जनता का उत्साह बढ़ाने के लिये राष्ट्रीयतापूर्ण अभियान–गीत लिखे जा रहे थे। वन्दे मातरम् भारत की जागरूक राष्ट्रीयता का मंत्र बन गया और पहले बंगाल और फिर में सारे भारत ने कर्मक्षेत्र की पुकार का उत्तर देना शुरू किया, जब विदेशी सत्ता ने उन्हें जेल में डाल दिया। रातों-रात साहित्यिक कर्मवीर बन गये और कर्मवीर साहित्यिक। श्री अरविन्द को अलीपुर जेल की कोठरी में नारायण-दर्शन हुये और तिलक ने माण्डले जेल में गीता रहस्य लिखा। बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों में वन्दे मातरम् और होमरूल आन्दोलन ऐसे थे कि उनसे बड़ी हलचल और वीरोचित वेदना जाग उठी।[१] रामावातार शर्मा के भारतीयम् इतिवृत्तम् तथा गणपति शास्त्री के भारतानुवर्णनम्, भारत-संग्रह, लक्ष्मीनाथ शास्त्री का भारतेतिवृत्तसार आदि ग्रन्थ राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण हैं। श्रीपादशास्त्री ने भारत नर-रत्नमाला में भारतीय वीरों की यशो गाथा गाई है।

विभिन्न प्रान्तों से प्रकाशित प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में भारत की दुर्दशा और उसके सुधार के सम्बध में लेख प्रकाशित हो रहे थे। गांधी जी पहले यंग-इण्डिया और बाद में हरिजन पत्र में भारत छोड़ो विषय पर लेख प्रकाशित कर रहे थे। सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू लाजपतराय, टी० प्रकाशम् डा० पट्टाभि सीतारमैया आदि नेता आंग्ल भाषा में दैनिक एवं साप्ताहिक पत्र चलाकर अपना राष्ट्रीय दृष्टिकोण व्यक्त कर रहे थे। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व से लेखक आकर्षित हुये और तत्सम्बन्धित कई ग्रन्थ लिखे गये। पंडिता क्षमाराव ने सत्याग्रह गीता, उत्तर-सत्याग्रह गीता पाण्डुरंग शास्त्री ने सत्याग्रह कथा आदि पुस्तकों की रचना की। भारत-पारिजात, पारिजातापहार और परिजातसौरम् में गांधी दर्शन की व्याख्या की गई।

स्वातन्त्र्योत्तर काल की राजनैतिक घटनाओं के सम्बन्ध में लेखकों ने लेख प्रकाशित किये। हंसराज अग्रवाल ने संस्कृत-प्रबन्ध-प्रदीप नामक पुस्तक में कश्मीर का प्रश्न, स्वतन्त्रता के चार वर्ष भारत का भविष्य, संस्कृत का भविष्य आदि प्रभावात्मक लेख प्रकाशित किये। इस प्रकार सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीयता की भावनाओं से भरने लगा।

---

१. राधाकृष्णन्: आज का भारतीय साहित्य, पृष्ठ ४१९

## आर्थिक सुधार

पराधीनता के उत्पीड़न-युग में यतीन्द्र का साहित्यिक क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ। इनकी रचनाओं में देश की राजनीतिक परिस्थितियों का सफल चित्रण हुआ है। देश की दुर्दशा देखकर अरविन्द का हृदय विदीर्ण हो जाता है। वे भारत मां की वन्दना करके कहते हैं कि हे मां ! मैं तुमको कब अंग्रेजों के शासन से मुक्त और स्वाधीन देखूँगा[१]। वे भारतभूमि की मुक्ति के उपाय सोचते हैं[२]। वे केम्ब्रिज में लोटस्-हेगार नामक समिति की स्थापना करते हैं, जिससे वे केम्ब्रिज में स्थित भारतवासियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये प्रेरित करें[३]।

बंगाल की दुरवस्था को दूर करने के लिये यतीन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय, प्रमथनाथ मित्र, विभूतिभूषण भट्टाचार्य, आदि प्रयत्न कर रहे थे[४]।

भारत में सूरत कांग्रेस सभामण्डप के अभ्यन्तर कक्ष में लोकमान्य तिलक तथा अरविन्द देश की स्वाधीनता के सम्बन्ध में विचार करे रहे थे। अरविन्द और तिलक उग्र दल के व्यक्ति थे और पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति के पक्ष में थे और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और रासबिहारी घोष नर्म दल का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।[५]

लार्ड कर्जन के द्वारा किये गये बंग-भंग से बंगाल की जनता आर्तनाद करती है। लाला लाजपतराय, सखाराम गणेश, देवस्कर, वारीन्द्र घोष, उपेन्द्र, यतीन्द्र वन्द्योपाध्याय, प्रमथनाथ मित्र, भगिनी निवेदिता, अरविन्द, तिलक आदि नेता बंगाल की दुर्दशा सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे।[६]

कलकत्ते में मानिकतला में बम्ब विस्फोट के षडयंत्र में भाग लेने के सन्देह में अरविन्द बन्दी बना लिये जाते हैं।[७] अरविन्द न्यायालय में उपस्थित किये जाते हैं। देशबन्धु चित्तरंजनदास उनके वकील होकर उनको कारावास से मुक्त कराते हैं।[८]

भगिनी निवेदिता, सरला घोषाल आदि स्त्रियां देश की सेवा में लगी हुई थीं।[९] महात्मा गांधी नोआखाली नगर में शान्ति स्थापना

---

१-४ भारत हृदया० पृष्ठ ५, १४

५. भारत-हृदया०—पृष्ठ १८

६-९. भारत-हृदयारविन्दम्, पृष्ठ २०, २७, ३०, ४१।


GANDHI
Library
Acc. No.
SRINGERI

और हिन्दु-मुस्लिम मैत्री सम्पन्न करने का प्रयत्न कर रहे थे।[१] गांधी जी ने नमक-कानून का अतिक्रमण करके अंग्रेजी शासन का उल्लंघन किया।[२] भारत-जनकम् नाटक में देश को स्वतन्त्र कराने के लिये गांधी जी द्वारा किये हुये अनेक कार्यों का वर्णन है। 'भारत-जनकम्' 'भारत राजेन्द्रम्,' 'सुभाष-सुभाषम्,' 'देशवन्धु देशप्रियम्' में भारत की तत्कालीन राजनीतिक अवस्था का सफल चित्रण हुआ है।

सुभाषचन्द्र बोस ने जापान में आजाद हिन्द सेना का निर्माण किया। वे भारतीयों को देश की स्वतंत्रता के लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं। देशबन्धु चित्तरंजनदास विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर रहे थे। पुलिस उनको आन्दोलनकारी समझकर बन्दी बना लेती है।[३]

## आर्थिक निदर्शन

महायुद्धों के फलस्वरूप देश में भयंकर भुखमरी छाई हुई थी। देश की आर्थिक व्यवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। 'भारत-विवेकम्' नाटक में विवेकानन्द क्षुधा-पीड़ित भारतीय जनता को देखकर उद्विग्न होकर कहते हैं—

'एवं शतसहस्रं निरन्नदीनभारतवासिनः अश्रूणि निःसार्य कठोरतम-दारिद्रय संपीडिता बुभुक्षा-मूर्छितान् सन्तानान्नदीनान् मृत्युमुखपतितानपि रक्षितुमसमर्था रोरुद्यन्ते[४]।'

विवेकानन्द धनी राजा-महाराजाओं से सहायता लेकर जनता की सहायता करने का प्रयत्न कर रहे थे। भारतवासियों की सहायतार्थ पाश्चात्त्य देशों से सहयोग मांगने के लिये वे उन देशों में जाने का प्रयत्न कर रहे थे।[५]

भारत में जो समाजगत विषमतायें फैली हुई थीं, उन विषमताओं का वर्णन यतीन्द्र ने प्रायश: किया है यथा—जातिभेद का प्रचलन। ऊंची जाति के व्यक्ति नीची जाति के व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे।

---

१. मेलन० भारतम्, पृष्ठ ४१-४६

२. भारत-जनकम्, ४४-४५

३. देशवन्धु-देशप्रियम्, ( हस्तलिखित प्रति ), पृष्ठ ११

४-५. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ६२, ६५

निम्न जाति का गुरु उच्च जाति के व्यक्ति को अपना शिष्य नहीं बना सकता था। कांचिपूर्ण रामानुज से कहते हैं कि नीच जाति में उत्पन्न होने के कारण मैं तुम्हारा गुरु नहीं हो सकता। इससे मेरा हृदय दुःखी है।[१]

रामानुज की पत्नी जमाम्बा नीच जाति की गुरुपत्नी से कहती है कि तुम अपने घड़े का जल गिराकर मेरे कलश को क्यों अपवित्र कर रही हो? क्या तुमको नहीं ज्ञात है कि मेरा पितृकुल श्रेष्ठ और तुम्हारा पितृकुल अधम है? तुम्हारे छुये हुये जल को मैं कैसे पियूंगी?[२]

अस्पृश्यता की कुरीति हमारे समाज में व्याप्त थी। 'विमल-यतीन्द्रम्' के अनुसार रामानुज भगवान् का कोर्तन कर रहे हैं। उनके कीर्तन को सुनकर, आकर्षित होकर एक चण्डाल रमणी मन्दिर में प्रवेश करना चाहती है। रामानुज के भक्तगण उसको रोकते हैं। यह देखकर रामानुज उसको तथा अन्य चण्डालों को बुलाकर अपने सम्प्रदाय में आश्रय देते हैं। वे अपने भक्तगणों को अछूतों को गले लगाने का उपदेश देते हैं।[३] रामानुज महात्मा गांधी, विवेकानन्द आदि नेता सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। गांधी जी अस्पृश्यता दूर करने के लिये लोगों को उपदेश देते हैं और कहते हैं कि हिन्दुओं को अस्पृश्यों को गले लगाना चाहिये और उन्हें मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार देना चाहिए।[४]

देश में साम्प्रदायिकता का बोलबाला था। गांधी जी समाज की इस विषम भावना के उन्मूलन का प्रयास कर रहे थे।

## नारी का उत्थान

विद्वान् तथा समाज-सुधारक नारी के स्वरूप को पहचानने में समर्थ थे, किन्तु जन-साधारण की दृष्टि में नारी हेय थी। उसको घर की चतुर्भित्ति के भीतर रहना आवश्यक समझा जाता था।[५] नारी से सेवा कराना पुरुष अपना जन्मजात अधिकार समझता था। यदि पत्नियों से सेवा न ली जाय तो पुरुष अपना जीवन निरर्थक समझते थे। वे स्त्रियों का घर

---

१-२. विमल-यतीन्द्रम् पृष्ठ ३१, ३८

३. विमल-यतीन्द्रम्, पृष्ठ ७२-७३

४. भारत-जनकम् ,, ४८

५. दीनदास-रघुनाथम्,, १३

से बाहर निकलना उचित नहीं समझते थे। गजानन का कथन है कि स्त्रियाँ यदि घर से बारह जाने की इच्छा करें, या तनिक भी पर-पुरुष का चिन्तन करें तो उनका तिरस्कार करके उनको घर से बाहर निकाल देना चाहिए।[1]

स्त्रियों का धर्मप्रचार अच्छा नहीं समझा जाता था। उनको और शूद्रों को एक स्तर पर रखा जाता था। विष्णुप्रिया के धर्मप्रचार करने पर मेरुण्डक आपत्ति करता है और कहता है कि यदि स्त्रियां धर्मप्रचार करेंगी तो शूद्र भी वही करेंगे और धर्म का अधःपतन हो जायेगा।[2]

विधवा स्त्री का साधारण वेश में रहना अच्छा समझा जाता था। विधवा सारदामणि सधवा स्त्री जैसा वेष धारण करती हैं। इस पर गांव वाले आपत्ति करते हैं और उनको दण्ड देने की योजना बनाते हैं।[3]

पाखण्डी लोग साधु का वेष धारण करके स्त्रियों के साथ अशिष्ट व्यवहार करते थे।[4]

तत्कालीन समाज स्त्रियों के लिये अवगुण्ठन आवश्यक मानता था। क्षुद्रग्रीव अपनी क्षुद्र भावनाओं को प्रकट करता हुआ कहता है कि अवगुण्ठन धारण करना नारियों के लिये शुद्ध आचारण है। पुरुष व्याघ्रों से नारी हरिणियों को सदैव अपनी रक्षा करनी चाहिये।[5]

नारियां अवगुण्ठन व्यवहार के प्रति विरोध प्रदर्शित कर रही थीं। कुछ पुरुष भी इस प्रथा में औचित्य नहीं देखते थे। लम्बकूर्च कहता है कि अवगुण्ठन धारण करने में औचित्य नहीं है।[6] यशोधरा कहती हैं कि स्त्रियों का अवगुण्ठनरहित होना युगोचित है।[7] उनका कथन है कि स्वभाव से पवित्र नारियों को अवण्गुठन की क्या आवश्यकता है?[8]

स्त्रियों में देश के प्रति जागर्ति उत्पन्न हो रही थी। देश की समस्याओं में वे पुरुषों के साथ हाथ वँटाना चाहती थी। यशोधरा कहती हैं कि इस

---

१. आनन्द-राधम् ,, २८
२. भक्ति-विष्णुप्रियम् ११
३. मुक्ति-सारदम्, पृष्ठ ९-१०
४. भारत-विवेकम् ,, ५६
५-८. निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ २४, २६, ३०, ३१,

युग में, जब सर्वत्र हाहाकार मच रहा है तो स्त्रियां घर के अन्दर कैसे बैठी रहें? अवसर आने पर उनको भी घर से बाहर निकलकर देश-हित में पुरुषों के समान प्राणों का उत्सर्ग करना चाहिये।[१]

बंग देश में स्त्रियों में जागर्ति थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के परिवार की स्त्रियां पढ़ो, लिखी और सुशिक्षिता थीं। ज्योतिरिन्द्रनाथ की पत्नी कादम्बरी काव्य रचना करती थीं। घुड़सवारी का उन्हें शौक था।[२] समाज के अनेक पुरुषों को स्त्रियों की यह आधुनिकता अच्छी नहीं लगती थी[३]।

कन्याओं के विवाह में दहेज देने की रीति था।[४]

## साहित्यिक अभ्युत्थान

देश प्रेम की लहर भारतवासियों में व्याप्त थी। देश-प्रेम सम्बन्धी कविता और पुस्तक आदि की रचना हो रही थी। भारतहृदयारविन्द के अनुसार अरविन्द वन्दे मातरम् पत्रिका का सम्पादन कर रहें हैं।[५]

भास्करोदयम् नाटक के अनुसार रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारतवासियों को देश-प्रेम के लिये प्रेरित करते हुये सुप्रभात नामक कविता प्रकाशित करते हैं।[६] द्विजेन्द्रनाथ कहते हैं —

समायातु धराधाम्नि सुप्रभातं मनोरमम्
माहात्म्यगौरवेणास्य प्रतिगृहं प्रपूर्यताम्[७] ।।६६।।

रवीन्द्रनाथ राष्ट्रीय जागरण से निर्भर सान्ध्यसगीत काव्य की रचना कर रहे थे।[८] बंगाल की दुरवस्था को दूर करने के लिये प्रयत्नशील वंकिम चन्द्र तथा रमेशचन्द्र को रवीन्द्रनाथ अपनी काव्यांजलि सर्मपित करते हैं—

नैशं तमः शमयितुं मम वंगमातु रुद्द्योतमानमनिशं निजयैवकान्त्या।
पीयूषसेकपरितोषितविश्वलोकं चन्द्रद्वयं रविरयं नमति प्रतीतः[९] ।।१३६।।

---

१. निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ ३०
२. भास्करोदयम् „ १६
३. भास्करोदयम्, पृष्ठ २२
४. भारत-विवेकम् „ २६
५. भारत-हृदयारविन्दम्, पृष्ठ २६
६-८ भास्करोदयम् „ ४५, ४५; ७३;
६. दीनदास-रघुनाथम् „ १३

षष्ठ अध्याय

# रस-विलास

यतीन्द्र के नाटकों में भक्ति, शान्त, वात्सल्य, करुण, अद्‌भुत आदि रसों का परिपाक हुआ है। इनमें से भक्ति-रस अभीष्टतम है। भरतमुनि के 'अष्टौ नाटये रसाः स्मृताः' के आधार पर कुछ नाट्यशास्त्री भक्ति को रस न मानकर भाव मानते हैं। किन्तु रूपगोस्वामी ने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु तथा उज्ज्वलनीलमणि नामक ग्रन्थों में भक्तिरस का प्रतिपादन किया है। वे देवता विषयक रति को साहित्यशास्त्रियों के समान भाव ही कहते हैं किन्तु भक्तिरस का स्थायीभाव केवल श्रीकृष्ण-विषयक रति को मानते हैं। श्रीकृष्ण देवता नहीं, अपितु साक्षात् भगवान् हैं। इस लिये तद्विषयक रति देवविषयक रति से सर्वथा भिन्न है। इसलिये भक्तिरस भाव के अन्तर्गत नहीं, अपितु स्वतन्त्र रस है[1]।

यतीन्द्र पर वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी रूपगोस्वामी का प्रभाव पड़ा था और उन्होंने भक्तिरस की उनकी परिभाषा को मान्य समझा।

### भक्ति-रस

मीरा कृष्ण की उपासना करती हुई गीत गाती है—

मम प्रभुर्गिरिधारी कोऽपि न द्वितीयः
मयूर-मुकुटविशोभी स हि प्राणप्रियः।
शंख-चक्र-गदा-पद्म-कण्ठमालाश्रयः ॥४४

माता पिता भ्राता न कोऽपि ममात्मीयः।
वाद एष विदितः सर्वत्र नाद्य गोपनोयः।
कुलमानत्यागान् मीरा त्यक्ता लोकह्रिया ॥४५

विहिताश्रुनिषेकायाः सत्य-प्रेमधिया।
मिलितो भवतु त्वरितं मम प्राणप्रियः[2] ॥४६

---

१. काव्यप्रकाश - व्याख्याकार = आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ १९८
२. अमर मीरम्, पृष्ठ १५

भक्तिरस के इन श्लोकों में श्रीकृष्णविषयक रति स्थायी भाव, भगवान् कृष्ण आलम्बन, मोरमुकुट शंख-चक्र-गदा आदि उद्दीपन, भगवान् का कीर्तन, अश्रु प्रवाह आदि अनुभाव तथा निर्वेद चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव हैं।

मनोमोहन-मुरलीधारी
मधुमयवदन-मदिर-लोचन-मनसिजजयकारी ॥६५
मंजुल- मंजीर-शिंजन-गुंजितकुंजपुंज-विहारी।
चरणारविन्द - मधुनिष्यन्द - मन्थरान्तरचारी ॥६६
भज श्रीकृष्णं वद श्रीकृष्णं कुरु श्रीकृष्ण-नाम रे।
यो जनः श्रीकृष्णसेवी स हि मम प्राणो रे[1] ॥६७

विलसतु हृदि वनमाली।
कोमलदलविकच - कमल - नील - नयनपालिः ॥१२४
सस्मितमुख - दर्शनसुख - मोहित - वनितालिः।
अयि केशव दर्शय तव शैशव - रम - केलीः।
सुन्दरतम हृदये मम संचर करताली[2] ॥१२५

उपर्युक्त सभी श्लोकों में श्रीकृष्ण - विषयक रति स्थायी भाव है। भगवान् कृष्ण आलम्बन, विभाव शरणागत वत्सलता, भक्तों का समागम, तीर्थसेवन आदि उद्दीपन विभाव, मीरा का रोमांचित होना, अश्रुप्रवाह आदि अनुभाव हैं, अपलक दृष्टि से भगवान् की मूर्ति को देखकर हर्षित होना आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन श्लोकों में मीरा की कृष्णभक्ति, पारिवारिक जनों से प्राप्त मीरा की मार्मिक वेदना, कृष्णदर्शन की कल्पना से उत्पन्न आह्लाद उत्कृष्ट रूप में व्यंजित हुआ है।

## शान्त-रस

"निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः[3]" इस सूत्र के आधार पर मम्मट आदि आचार्यों ने शान्त रस को नवां रस माना है। उदभट, आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त ने स्पष्ट रूप से शान्त रस का प्रतिपादन किया है और निर्वेद को इसका स्थायी भाव माना है। कुछ आचार्यों ने शम को

१.२. अमर-मीरम्, पृष्ठ ३१, ४७

३. मम्मट — काव्यप्रकाश — व्याख्याकार हरिदत्त शास्त्री, पृष्ठ १३८

शान्तरस का स्थायिभाव माना है[१] श्रीरामस्वामी शिरोमणि ने लिखा है कि शान्त रस की स्थापना भरत-नाट्य-शास्त्र के टीकाकार उद्भट ने अपने काव्यालंकार संग्रह में की है।[२] इसके उदाहरण हैं—

मनश्चल स्वीयनिकेतम्

संसारविदेशे वैदेशिकवेशे भ्रमसि कथमकारणम्? ।।३७

विषयपंचकं तथा भूतगणः सर्वेऽनात्मीयः कोऽपि न निजजनः ।

विस्मरस्यात्मजनम्?[३] ।।३८

इस श्लोक में निर्वेद स्थायिभाव मिथ्या प्रतीत होने वाला संसार आलम्बन, सांसारिक पदार्थों से उत्पन्न होने वाला कष्ट उद्दीपन, संसारत्याग, भगवद्भजन अनुभाव, धृति, मति विषाद, और व्याधि आदि व्यभिचारी भाव हैं।

जानीहि मनो कोऽपि न स्वजनो मृषा भ्रमसि भूमण्डले ।
विस्मर न भवतारिणीं बद्धं भूत्वा मायाजाले ।।४३
यस्याः कृते चिन्तनं ते नासौ संगिनी मरणकाले ।
परिष्करणपरा प्रेयसी प्राणहरा दूरकराऽमंगले ।।४४
दिनत्रय - चतुष्टयं प्रभवति धरामण्डले ।
निक्षिप्यसे दूरे भयात् समायाते काले काले[४] ।।४५

धराश्मशानपाल ! दुरन्तः कलिकालो लुप्तो मम कृष्णशशी ध्वान्तास्तरणे ।
अनलो विश्वनाशी दुष्टकुलग्रासी लक् लक् शिखोल्लासी भीमप्रभंजने ।।
दर्शयति हि जगज्जने लुप्त-यदुपतिं नेष्यति यो लोपं विश्वदुःखततिम्[५] ।।४३

चिरदिनं याति न समानम् ।

एकदा नृपते राजप्रासादे वित्तं यस्य मेरुसमानम् ।
अन्यदा स पुनर्वसनाशनदीनो निरम्बरो याति श्मशानम् ।।७८
एकदा धृतवीर्यः कृतराजसज्जश्चतुर्दिशं दर्शयति केतनम् ।
अन्यदा हृताश्वासः कृतजंगलवासः करुणं करोति कन्दभक्षणम्[६] ।।७९

---

१. विश्वनाथ - साहित्यदर्पण, ३. १८०
२. शमो निरीहावस्थायामात्मविश्रामजं सुखम् ३.१८०
३. रामस्वामीशिरोमणि—नाट्यशास्त्र अभिनवभारती व्याख्या द्वितीय संस्करण
४-५ भारत—विवेकम्, पृष्ठ १५, १७,
६. भारत-जनकम् ,, पृष्ठ ३०

सकलं गरलं लभते विलयं महिमा तुलनो भजनाश्रयिणः ।
जगदीशपदाश्रित-भक्तवरं भजते भगवानतुलादतुलम् ।।
कठोरात् कठोरो वनाली-निवासो यतीनां कृतेऽसौ त्वयत्न-प्रयासः ।
अरण्ये विघोरे हरेर्नामपूरे भुजगादयोऽप्यत्र हर्ष-प्रभासः[१] ।।१०

दुःखैरध्यात्माधिभूताधिदैवैः सन्तप्तानां घोरं संसारमार्गम् ।
वानप्रस्थादप्यनिर्वाणभाजां संन्यासोऽयं शान्तिनीडः समेषाम्[२] ।।५६

संसारकोलाहललेशशून्या पुण्या तपस्योचितभूमिरेषा ।
यस्यां प्रविष्टस्य ममापि चिते उदेति संसारविरोधिभावः[३] ।।६०

## वात्सल्य रस

साहित्यशास्त्र के अनेक विद्वान् भक्ति और वात्सल्य दोनों को अलग रस नहीं मानते । उनका कथन है कि उनके आधारभूत स्थायिभाव वस्तुतः स्थायी नहीं हैं। वे सब स्नेह के ही रूपान्तर मात्र हैं। अतः इनको वे रस न मानकर इनकी गणना 'भाव' में करते हैं ।

आचार्य मम्मट के अनुसार भक्ति, वात्सल्य आदि का भावध्वनि में अन्तर्भाव हो जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त और काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र का भी यही मत है । किन्तु साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने वात्सल्य रस को स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित किया है। इसको उन्होंने भरतमुनि–सम्मत बतलाया है —

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः ।
स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्रालम्बनं मतम्[४] ।।

डा० चौधुरी के सभी नाटकों में वात्सल्य रस का सफल परिपाक हुआ है। 'निष्किंचन-यशोधरम्' में शुद्धोदन और गौतमी के सिद्धार्थ–विषयक चिन्तन में वात्सल्य रस अभिव्यंजित है ।

शुद्धोदन –

यश्चन्दनोशीरविलेपनानां चीनांशुकानां च चिरादभिज्ञः ।
तस्यांगरागो भसितेन वासस्तरुत्वचा हा किमिदं कृतं विधे ।।६७

---

१. मेलनतीर्थ-भारतम्, पृष्ठ ५६
२. महाप्रभुहरिदासम् ,, ५
३. निष्किञ्चन-यशोधरम्,; ५२, ५१,
४. साहित्यदर्पण, ३., २५१

गौतमी—

अहो ते शरीरस्य समवस्था। कषितकनकवर्णा देहकान्तिर्विवर्णा।
सघनकुटिलनील: कर्कश: केशपाश:। वपुरपि तव तात: प्राप्तभागें पुरस्ताद्।।
अशन-वसनदैन्यादन्यदेवाद्यजातम्[१] ।।६८

इन श्लोकों में वत्सलता स्थायिभाव, पुत्र सिद्धार्थ आलम्वन, वनवास आदि उद्दीपन विभाव, भस्म-बल्कल, कुटिल केशपाश आदि की कल्पना से गौतमी का अश्रुप्रवाह आदि अनुभाव है।

'शक्ति-सारदम्' में सारदामणि को देखकर दस्युपत्नी के हृदय में वात्सल्य भाव जाग्रत होते हैं। वह कहती है—

सुप्तं यच्छैलसारे मम हृदि सुचिरात् गूढवात्सल्यबीजं
सन्तानस्नेहयोगात् किमिति तदधुना कल्पते ह्यङ्कुराय।
किं वैक्लव्यं भजामि ह्यपरिचितचरीं वीक्ष्य बालां वनान्ते ।।३८

रोमांञ्चितं भवति मे सकलं शरीरं
नेत्रद्वयं विगलदश्रुतयाऽप्रसन्नम्।
कम्प: परोऽङ्घ्रियुगले स्थित ईश्वरीयो
भावश्च कोऽपि हृदये किमहं करोमि[२] ।।३६

आनन्द-राधम् में कृष्ण के मथुरा जाते समय विलाप करती हुई यशोदा का वर्णन करते हुये नन्द कहते हैं—

आ प्रात: शयनावधि प्रतिपलं संचिन्तयन्ती सुतं।
नित्यं जीवति या गते त्वयि भवेत् तस्या: किमाश्वासनम्।।
धृत्वा सा नवनीतमश्रुमलिनं गोपाल गोपाल हे।
इत्था क्रोक्ष्यति सान्त्वनं किमु तदा तस्या विधेयं मया[३]।।

## करुण रस

'मेलनतीर्थ-भारतम्' में महात्मा गांधी के निधन पर शोकसागर में मग्न नेहरू कहते हैं—

---

१. निष्किंचन यशोधरम्, पृष्ठ ५४
२. शक्ति-सारदम्, पृष्ठ २०
३. आनन्द-राधम्, पृष्ठ ७४

दीपो जीवनमन्दिरस्य निरवादस्माकमुद्दीपनः
सूर्यश्चास्तमनाचलं प्रचलितो घिग् भारताकाशतः।
यः सत्याग्रहमन्त्रदर्शक ऋषिर्देशस्य तातांपम्-
तं कालोऽकलयत् स्मितोज्ज्वलमुखं हा वापुजिगान्धिनम्[1] ।।८६

'विमल-यतीन्द्रम्' में यामुनाचार्य के पंचत्व प्राप्त होने पर रामनुज कहते हैं—

अहो नियेतर्निर्ममता ।

श्रुत्वा तरुं तरुणकल्पप्रकाशं यावत् समीपमहमस्य चिरादुपेतः।
व्योम्नः स्फुरद्दिनकरादशनिः पतन्ती तावत्तरुं तमकरोत् स्मरणावशेषम्[2]। ६०

'भारत-लक्ष्मोः' नाटक में अपने मृत पुत्र का स्मरण करते हुये राजा गंगाधर विलाप करते हैं। पुत्र के विना उनको सारा संसार सूना प्रतीत होता है। वे कहते हैं —

एकापत्य-वियोगशोक-सलिले मग्नं मदीयं मनो
नो गोते रमते विवेक-मधुरे वैतालिकीये क्षणम्।
नीरन्ध्रं तम आवृणोति नयन आलोकहीनं जगद्
दीनानाथसुहृत् विधातरधम त्रायस्व शोकाम्बुधेः[3] ।।१४

अपनी सास चिमाबाई के ढाढस दिलाने पर भी गंगाधर का शोक नहीं घटता। वे कहते हैं —

अहो! नवनीत-कोमलं बालगोपाल-शरीरं निमेषेण वारदशकं मया करेण विलेपितम्। अवलोकयति बालोऽसौ माम् अति सस्नेहम् अर्थपूर्णमिव नील-चकोराक्षितारिकायां तस्यासीदनाविला द्युतिः अस्मज्जीवन-विप्लावन-कारिणी।

ता तस्यातुल-तूल-कोमलतनुं चंचत्तुषारत्विषं
स्पर्शं स्पर्शमनारतं नहि मया पर्याप्त-तृप्तं पुरा।
ते नेत्रे नवनील-नीरजनिभे निष्कारणव्यापृते
आस्यं तच्च शशांकसोदरमहं हा विस्मरेयं कथम्[4] ।।१५

---

१. मेलनतीर्थ-भारतम्, पृष्ठ ५८

२. विमल-यतीन्द्रम्, पृष्ठ २७

३-४. भारत-लक्ष्मीः ,, ७,; ,, ८,

इन सभी श्लोकों में करुण रस अभिव्यंजित है। गांधी, यामुनाचार्य और लक्ष्मीबाई के पुत्र के निधन से उत्पन्न हुआ शोक इसका स्थायी भाव है। 'इष्टनाशादिभिश्चेतो-वैक्लव्यं शोकशब्दभाक्[१]।' गांधी, यामुनाचार्य और लक्ष्मीबाई का पुत्र आलम्बन विभाव हैं। मरण उद्दीपन है। हाहाकार; क्रन्दन आदि अनुभाव हैं। धृति, मति, दैन्य, क्रन्दन आदि संचारी भाव हैं।

## हास्य रस

यतीन्द्र के अधिकांश नाटक भक्ति-प्रधान हैं अतएव भक्ति-रस उनमें प्रधान है। तथापि हास्यरस का कहीं-कहीं समावेश हुआ है। भारतविवेकम् के पंचम दृश्य के मिश्र विष्कंभक में माली, घटक तथा नापित के वार्तालाप में सुरुचिपूर्ण हास्य है। माल्यकार नापित से कहता —

विधाय कर्णोपरि खुरखुरारवं विवादमुत्पादयसीह सन्ततम्।
एवं स्वमर्थं बहुधा वितन्वतो नितान्तशुद्धं किल जातिकर्म ते[२] ॥६

आनन्द-राघम् में गजानन और षडानन के संवाद में हास्यरस की निष्पत्ति हुई है। परस्पर वार्तालाप करते हुये वे कहते हैं—

अहो परमरमणीत्वं भेकसभायाः। आब्रह्मतालु-पुच्छभागपर्यन्तं घनहरिद्ररेखारंजितः सभापतिमहोदयः परमप्रकाण्ड उद्घोषणेन करोत्यध्यक्षतां यथा कंसराजः[३]।

पुनरपि पश्य—एतेषां वैदिकर्षीणां संहतिर्महती। झम्पतालग्रहणपूर्वकं कृतम् एतेषां संगीतं न कदापि भग्नतालं जायते। सुशिक्षिता एते सर्वे कंसराजसभासदः। संवत्सरान्ते जागरितानाम् अपि एतेषां तालज्ञानं कुत्रापि भ्रंशते[४]।

षडानन जटिला की पुत्री कुटिला का वर्णन करते हुये कहता है-

यदा सा सम्मार्जनीदक्षिणकरा वामपार्श्वार्पितवामहस्ता कडकडायमानदन्तयुता भग्नकांस्यविनिन्दिचटुलस्वरं कण्ठात् निर्गमयति, तदाऽस्माकं उत्तराधिकारप्राप्तप्राणनिकरो भस्माच्छादितकवयीमत्स्यवत् धडफडायते[५]।

---

१. साहित्यदर्पण, पृष्ठ ३. १७७
२. भारत-विवेकम् ,, २८
३-४. आनन्द-राघम्, ,, २५, २५
५. आनन्द-राघम्, पृष्ठ २९

महाप्रभु-हरिदासम् में भौमिक दम्पती कहता है —

भो उष्ट्रोदर मरुसोदर ! अपि जठरं तव विश्वग्रासि ? साम्प्रतमेव पर्वतप्रमाणं भक्ष्यम् उदरीसात् कृत्वा भूयोऽपि गौरीशंकरप्रमाणं भक्ष्यशैलं प्रति उन्मत्तवद् धावसि[1] ?

दीनदास-रघुनाथम् में दधिविक्रेता कहता है —

किं किं वदसि ? मां चपेटाघातेन तोषयितुं वांछसि ? रे मर्कटतुण्ड ! रघुनाथ - दण्ड-पलाण्ड ! मया सह तव तुलनं सम्मिश्रणं वा तारिकया सह पक्वदेहस्फोटकस्य, शुक्रेण सह खद्योतस्य, गौरीशंकरेण सह करोलडांगा-शेखरस्येव । अहं त्वाम् अद्य पिष्टपेषणनिष्पेषितं करिष्यामि[2] ।

सन्देश–विक्रेता कहता है—

'कथम् अहं न श्रेष्ठः स्याम् ? सर्वे कथयन्ति सन्देशः सन्देश इति । फलतः पुरातनकालाद्' आरम्य वर्तमानसमयपर्यन्तं सन्देशस्य नास्ति तुलनम् । न केवलम् आसमुद्रहिमाचलं, परम् आसुमेरुकुमेरुपर्यन्तं सर्वत्र सन्देशः सन्देशः इति जायते आनन्दध्वनिः[3] ।

'प्रीति-विष्णुप्रियम्' में फलविक्रेता द्रुतविलम्बित और भुजंगप्रयात के वार्तालाप में हास्यरस का पुट पाया जाता है—

फल विक्रेता - द्रुतविलम्बितः ( दधिविक्रेतारमुद्दिश्य ) किमुच्यते ? त्वं भुजगप्रयातनामासीति ? न हि न हि कदापि न । यथा त्वं झंझावातवेगेन विश्वम्भरगृहाभिमुखं धावसि यथा त्वया चण्डवृष्टिप्रपातनाम्ना भवितव्यम् । मम पुनद्रुतविलम्बितस्य कार्येणैव संवदति नाम[4]—

द्रुततरं परिगृह्य यतो धनं वितरणे तु फलस्य विलम्ब्यते ।
द्रुतबिलम्बित–नाम तातोऽस्ति मे न तु तवेव हि डित्थ-कपित्थवत्[5] ॥२८

हास्यरस के इन सभी उद्धरणों का स्थायीभाव हास है । मेढकों का संगीत, पात्रों के हास्ययुक्त सम्बोधन आदि आलम्बन विभाव, इनकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव, उन क्रियाओं को देखकर मुस्कराना, अट्टहास आदि अनुभाव तथा चपलता आदि व्यभिचारी भाव हैं ।

---

१. महाप्रभु-हरिदासम्, पृष्ठ २२
२-३. दीनदास-रघुनाथम्, ,, २४, २५
४. प्रीति-विष्णुप्रियम् ,, १०
५. प्रीति-विष्णुप्रियम्; पृष्ठ १०

## अद्भुत रस

आनन्दराघम् में कृष्ण की वंशी–ध्वनि सुनकर समस्त जड-चेतन जगत् में अद्भुत परिवर्तन होने लगता है।

काठिन्यं गतमस्ति यामुनजलं स्थैर्यं गता जंगमा।
ग्रावाणो द्रवतां चरत्वमचरा अङ्गेषु कम्पोद्गवात् ॥
किंचांचन्ति तरुच्छदा अपि मुदा सद्यः परावर्तनम्।
एवं भावविपर्ययं प्रकुरुते कृष्णस्य वंशी–ध्वनिः[१] ॥

पयोधरं गतिविधुरं दिवि व्यधाद् रसातले चलतमकरोदहीश्वरम्।
वधूकुलं विचलयतीह गोकुले करोति किं किमिह न वेणुरद्भुतम्[२] ॥

अद्भुत रस के उपर्युक्त श्लोकों का स्थायी भाव विस्मय है। विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमावर्तिषु विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः[३]। कृष्ण की वंशीध्वनि आलम्बन है। वंशी का बजना उद्दीपन है। जड–जंगम जगत् में परिवर्तन होना तथा वधू-कुल का चंचल हो जाना अनुभाव हैं। हर्ष व्यभिचारी भाव है।

'निष्किंचन-यशोधरम्' में कुमार सिद्धार्थ के महानिष्क्रमण के समय अनेक आश्चर्यजनक घटनायें घटित होती हैं। उन घटनाओं के वर्णन में अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है। यथा —

( कस्यचिद् देवस्य प्रदेशः )

छन्दकः– अहो ! को नु खल्वेष देवो यो बन्धवे काषायवस्त्रं ददाति[४]।

सिद्धार्थ के महानिष्क्रमण में देवता सहायता करते हैं, ऐसा छन्दक के कथन से प्रतीत होता है—

देवताः सर्वा निश्चितं राजपुत्रस्य सहाया आसन्। तस्य निर्गमनसमये राजपुरी तमःपिच्छिला जाता। भीमकठोरप्राचीरसन्निबद्ध–महासंरक्षण-द्वाराणि स्वत एवोद्घाटितानि। संकेतमात्रेण यथाहम् अचलं तथा कण्टकोऽपि। हृतचेतनावालां कायमग्रेसरीकृत्य कथमपि न चलनात् परिभ्रष्टो।[५]

---

१-२. आनन्दराधम् पृष्ठ ५६, ५६
३. साहित्य-दपर्ण ३. १८०
४-५. निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ ४३, ४६

'अमर-मीरम्' नाटक में अद्‌भुत में रस का सुन्दर समावेश हुआ है। मीरा का देवर सम्राट् विक्रमसिंह मीरा के लिये कालकूट विष भेजता है। मीरा पान कर जाती है। तब भी उसकी मृत्यु नहीं होती। प्रत्युत उसका शरीर अधिक प्रदीप्त हो जाता है। इस दृश्य को देखकर राजानुचर कहता है—

राजानुचरः (सविस्मयम्)–अहो ! परमाद्‌भुतोऽयं व्यापारः। न केवलं मीरा माता न मृता, परन्तु समग्रशरीरमस्या विच्छुरति कांचनं भागवतीं द्युतिम्, निःसारयत्यतुलनीयंपारिजातसौरभम्, क्षरतीवाकल्पनीयामृत-धाराम्।[१]

मीरा के गायन से अद्‌भुत रस की निष्पत्ति होती है। मीरा गाती है—

सर्पपिंजरं राज्ञा प्रेरितं मीरा-करतलागतम्।
तस्य तर्पणान्ते हलाहले पीते, गरलं जातं मधुरामृतम् ॥९९

शूलशय्या राज्ञा प्रेरिता, मीरा तत्र करोतु शायितम्।
प्रदोष आयाते कृते च शयिते, पुष्पशयनं मीरायाः प्रजातम्[२] ॥१००

अमर-मीरम् के एकादश अंक में मीरा के कृष्ण की सन्निधि में लीन होने की चर्चा विस्मयावह है।

## भयानक रस

कालु वाग्दी दस्यु को देखकर भय से कांपती हुई सारदामणि कहती हैं—

जानूर्ध्वगामि मलिनं बसनं वसानः कृष्णाकृतिर्निबिडकुंचितकेशपाशः।
यष्टिं करे वलयिनि प्रतिगृह्य दीर्घो कोऽयं समेति जनयन् हृदयस्य कम्पम्[३] ॥

भयानक रस के उपर्युक्त श्लोक में दस्यु को देखकर उत्पन्न होनेवाला भय स्थायी भाव है। दस्यु आलम्बन है, दस्यु का विकराल वेश उद्दीपन है, कम्प स्वेद, रोमांच आदि अनुभाव है। घृति, मति आदि व्यभिचारी भाव हैं।

---

१. निष्किंचन-यशोधरम् पृष्ठ ४६
२. अमर-मीरम् ,, ३४
३. शक्ति-सारदम्, पृष्ठ १९७ ( सं० प्र० )

## शृंगार रस

यतीन्द्र की रचनाओं में शृंगार रस न्यून है, तथापि किसी-किसी स्थल पर इसके दर्शन हो जाते हैं। राधा कृष्ण से कहती है—

त्वदुक्तवस्तुद्वयमध्यतोऽहं वांछामि दत्तं न तु दास्यमानम्।
तत्रापि याचे हृदये त्वदीये एकाधिपत्यं मम सार्वभौमम्[१]॥

## रसाभास

निष्किंचन-यशोधरम् में देवदत्त के यशोधरा के प्रति आकर्षित होने में शृंगार रस का आभास मिलता है। वह यशोधरा को पाने का प्रयत्न करता हुआ कहता है—

यशोधरा मयैव लभ्या।

अहो सुन्दरीश्रेष्ठा यशोधरा ! अहो मे दुर्भाग्यम्। कदापि न सा मां प्रति सदयं दृष्टिक्षेपं करोति, भृशं यतमानमपि मां सा भ्रूक्षेपेणापि न तोषयति। तथापि तत्पाणि ग्रहीतुकामेषु श्रेष्ठोऽहम्[२]।

सिद्धार्थ से यशोधरा का विवाह हो जाने पर वह आग बबूला हो जाता है और कहता है —

या यशोधरा मे चक्षुषोस्तारकाभ्यामपि प्रियतरा, यस्या दन्तमुकुलरासो मे प्राणानां श्रेष्ठा शान्तिः, यस्य भ्रमरकृष्णकुन्तलदाम मे चेतोहरणं, देहपुष्पं जगत् सुरभितं करोति, सा मम शाश्वतशत्रोः सिद्धार्थस्य पत्नी भवितेति न मे सहनीयं कदापि कथमपि भविष्यति। यथा तथा वा भवतु, अहं स्वयं गत्वा तस्य बुद्धिबलाया यशोधराया अन्तिके स्वीयं मनोरथं निवेदयिष्ये। न चेदनुनयेन, बलात्कारेण, राक्षसविधिना वा सा मया लभ्यैव।[३]

---

१. आनन्दराधम्, पृष्ठ ५३
२. नि० यशो० पृ० १३
३. निष्किञ्चन-यशोधरम्, पृष्ठ १७-१८

सप्तम अध्याय

# भाषा-शैली

यतीन्द्र के नाटकों की भाषा सरल और सुबोध है। वे संस्कृत को जनता की भाषा बनाना चाहते थे। उन्होंने अपने नाटकों तथा काव्यों में सरलतम संस्कृत का प्रयोग किया है। उनकी ऐसी भाषा गम्भीर भावों को व्यक्त करने में समर्थ है। एक आधुनिक समालोचक ने लिखा है—

"J. B. chaudhuri's language is very simple, yet dignified, true to the point, yet sweet; modern, yet following ancient rules. His language and style are wholly his own and permanent contributions to Sanskrit literature as such."

यतीन्द्र की भाषा प्रभावोत्पादक है। एक ओर जहां वे छोटे वाक्ययुक्त सरल भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं, वहां वे समासयुक्त अनुप्रास और रूपक-बहुल वाक्यों को लिखने में दक्ष हैं। यथा—

कोमल-कुंचित-केशदामसुसज्जितशिरस्थाकर्णविष्कारितनयनोऽयं दर्शनदानेनैव मामतुलनं नन्दयति। हृदयतटिनी मम सगर्जनं धावतितरां सागरसंगमे सागरजलस्फीतिप्रभावात् यथा गंगातोयधरा। नटनृत्यचटुलमिव भासते मम चितस्थलं यत्र मम स्मृतिगुल्मदलं चटुलं कम्पते मलयपवनस्पर्शाव पुलकाकुलं वेणुवनं यथा[1]।

अहो! पश्य! कमलकोमलं पल्लवपेलवं स्वभावालक्तकराग-रंजितं तव पादयुगलं धूलि-धोरणि-परिचुम्बितं स्वेदाक्तं शिशिरसिक्त सत् अलिकुल-निषेवितं विकच-पंकजद्वयमिव परिशोभते[2]।

यतीन्द्र की भाषा शैली पर कहीं-कहीं आधुनिक संस्कृत-साहित्यकार हृषीकेश भट्टाचार्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनके 'उद्भिज्ज-परिषद' के वर्णन के समान निम्न वर्णन है—

१. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ७
२. शक्ति-सारदम्, ,, ८

अहो परमरमणीयत्वं भेकसभायाः। आ ब्रह्मतालु-पुच्छभागपर्यपन्तं घनहरिद्रेवारंजितः सभापतिमहोदयः परमप्रकाण्ड उद्घोषणेन करोत्यध्यक्षतां यथा कंसराजः[१]।

यतीन्द्र का शब्दचयन प्रभावोत्पादक है। अपने नाटकों के नामकरण में उन्होंने जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उन शब्दों से ही उन नाटकों की सम्पूर्ण झांकी हमारे समाने प्रस्तुत हो जाती है। यथा—यशोधरा पर आधारित नाटक का नाम उन्होंने निष्किंचन-यशोधरम् रखा। निष्किंचन शब्द से ही सम्पूर्ण नाटक का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है कि पति तथा पुत्र के रहते हुये भी यशोधरा निष्किंचन है। इसी प्रकार शक्ति-सारदम्, मुक्ति-सारदम्, प्रीति-विष्णुप्रियम्, भक्ति-विष्णुप्रियम्, भारत-विवेकम्, विश्व-विवेकम्, भारत-जनकम् सुभाष-सुभापम्, देशबन्धु-देशप्रियम्, रक्षक-श्रीगौरक्षम्, भारत-राजेन्द्रम् आदि सभी नाटकों के नामों से नाटक की झांकी हमें मिल जाती है।

शब्दों के चयन में नाटककार ने नवीन शैली अपनाई है। उसने कतिपय नायक छन्दों के नाम पर रखे हैं और जिस नायक का जो नाम है; वह नायक उसी छन्द में पद्यबद्ध संवाद करता है। जैसे द्रुतविलम्बित, भुजंगप्रयात, लीलाखेल आदि नायकों के नाम हैं और इनसे कहलाये गये श्लोक अपने नाम के छन्दों के अनुसार हैं। यतीन्द्र ने कहीं-कहीं हिन्दी और अंग्रेजी शब्दों का संस्कृत में प्रयोग किया है जैसे पुलिस, सुपरिण्टैंडैण्ट, स्टेशन आदि। संस्कृत में इन शब्दों के लिये कोई उपयुक्त शब्द न मिलने के कारण और सुबोध के लिए लेखक ने इनका प्रयोग किया।

यतीन्द्र की सरल किन्तु प्रभावोत्पादक भाषा में विरचित नाटकों की प्रशंसा करते हुये श्री कालीपद तर्काचार्य लिखते हैं—

The speciality of these gems of Sanskrit dramas of this gem of a poet is that, although their language is very simple, yet dramatic excellence has not suffered a bit for it; and although the dramatic excellence is very high, the simplicity of language, has not suffered a bit for it.

---

१. आनन्द-राधम्, पृष्ठ २५

Some non-Sanskrit words have been used, but very aptly, and better substitutes cannot be imagined.[1]

यतीन्द्र की भाषा में अलंकारों की अतिशयता नहीं। तथापि स्वाभाविक रूप से आये हुये अनुप्रास, उपमा, रूपक, स्वाभावोक्ति, सन्देह आदि अलंकार इनकी भाषा को सौन्दर्य प्रदान करते हैं।

अनुप्रास

अनुप्रास कवि का प्रिय अलंकार है। कवि ने सभी अलंकारों से अधिक इस अलंकार का प्रयोग किया है।

स्रोतोधारा साधना सागरोत्था संख्या शून्यैरूर्मिभिः संपरीता[2]।

अयि कमलनयने ! विश्वविमोहन लवंगलतिका-गुंजा-निकुंज।
गुंजनमंजु–कुंज–परिशीलनकुशल–मलयानिल–दोलितकुण्डले ॥

मधुवनभूषण—गोकुलतोषण—मोचनकारण—देवनुते।
मुनिगणहर्षण–कालियरक्षण–माधव–राधन–भानुसुते[3] ॥

जयति जयति यतिजनगति जननी भवतारिणी।
नियत–विहित–सुत–शत–हित–बन्ध–मोक्ष–साधिनी[4] ॥

खेलदिन्दिरं भुवनमन्दिरं विन्दति तनयो यदपि सुन्दरम्।
जननि तत्र ते कृपा विजयते स्मरति ऋणं ते हृदयकन्दरम्[5] ॥

राधिकाराधनानन्दं यशोदाप्राणसुन्दरम्।
क्रीडालोलं विघूर्णन्तं बालकृष्णं नमाम्यहम्[6] ॥

नवघनश्यामं नयनारामं वन्दे नन्द-नन्दनम्।
पीतसुवसनं स्मितसुशोभनं चारुचन्दन-चर्चनम् ॥

विश्ववांछनं वत्सलांछनं वनमाला-विभूषणं।
मणि-मनोहरं मधु-मंजीरं मंजुमुरली-मोहनम् ॥

---

१. शक्ति-सारदम्, पृष्ठ १९
२. निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ २
३. आनन्द-राधम् ,, ७१
४. भारत-विवेकम् ,, ४
५. भास्करोदयम् ,, ३३
६. भारत-जनकम्, पृष्ठ ५०

शिखि-सुशेखरं शिखरि-सुखधरं शीतांशु-शीताननम् ।
त्रिभंग-रंगं त्रिरस-तरंगं त्रिभुवन-तारण-तरणम् ।।
राधा-रमणं रसिक-रंजनं रमरूपानन-रसनम् ।
कमल-कोमलं केलि-कलकलं कल्याणक-कर-कमलम्[१] ।।

यतीन्द्र ने अनुप्रास का प्रयोग केवल श्लोकों में ही नहीं किया, किन्तु गद्य के दीर्घ और लघु वाक्यों में वर्णो कि आवृति उनकी तदनुकूल शब्द-चयन की रुचि द्योतित करती —

किन्तु येयं रसघना रमा मधुमयी माधवी कामकान्तिः कमला तां यशोधरां कथमुपेक्षसे[२] ?

जगन्मातुर्निष्किंचनाया धरायशोरुपिण्या यशोधरायाः गोपाया अमृत-निष्यन्दिनी महावाणी तवनिश्चितमन्दिरे निधेया[३] ।

यशोदे, यशोविशाले ! कीर्तिदानन्दिनीनुते ! जगद् राधां राधते । सा राधा त्वां वंदते[४] ।

मधुर्त्रर्षिणो माधवी माधवप्रिया । रमहासिनी विश्वरमणीया रमा[५] ।।
पत्न्यपि ते स्त्रयं माधवीरूपा साक्षान्माधवप्रिया । विष्णुप्रिया सा हि कमललोचना कमला परमरणीया रमा[६] ।

यन्त्रं सा यन्त्रिणी भूत्वा यन्त्रणां न दधात्[७] ।
अहो पश्य कमलकोमलं, पल्लवपेलवं तव पाद युगलम्[८] ।।
मधुरतमं कोमलतमं स्निग्धतमं शीतलतमं पवित्रतमं नाम माता[९] ।
परिहाय शोकजल्पं कल्पस्व तदग्तिमवांछापूर्तये[१०] ।।

अतिलघु वाक्यांगों के रूप में कवि ने अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया है । यथा—

---

१. महा० हरि० ,, ९
२-३. निष्किंचन-यशोधरम्, ४१; ७४
४. आनन्द-राधम् २०
५. प्रीति-विष्णुप्रियम् २९
६. भक्ति-विष्णुप्रियम् ३
७. भक्ति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ ११
८-९. शक्ति-सारदम् ,, २१, ४१
१०. विमल-यतीन्द्रम् ;; ३०

विशाखा चेच्छाखा,[१] दुराराधा राधा,[२]।
चिलिचिमन्युब्जां मुखविजिताब्जां कुब्जां[३]।
अघटनघटनपटीयसी[४] न तनुते दारेष्वगारेषु च[५]।

## उपमा

यतीन्द्र के नाटकों में अनुप्रास के साथ साथ उपमा अलंकार का बाहुल्य है। काव्यजगत् के प्रसिद्ध उपमान चन्द्र, ज्योत्स्ना, अम्बुध, सागर आदि का उन्होने उपमान के रूप में प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक नवीन उपमाओं की भी उद्भावना की है। यथा–प्रौढ व्यक्ति के पत्नी - विरह की उपमा तुषाग्नि से की है। हृदय में उठती हुई ज्वाला को शमी वृक्ष में लगी ज्वाला की उपमा दी है। जिस प्रकार शमी के पेड़ में लगी ज्वाला बाहर से दिखाई नहीं पड़ती, उसी प्रकार हृदय में लगी हुई ज्वाला बाहर से दिखाई नहीं पड़ती, किन्तु भीतर ही भीतर मनुष्य को जला डालती है। यतीन्द्र ने महिमशाली व्यक्तियों के लिये तुहिन-शैल को उपमान चुना है।

यतीन्द्र ने यथापि पूर्णोपमा और लुप्तोपमा दोनों प्रकारों की उपमाओं का प्रयोग किया है, तथापि पूर्णोपमा के उदाहरण अल्पसंख्यक हैं। लुप्तोपमा में धर्मलुप्ता उपमा का आधिक्य है। यत्र तत्र वाचकलुप्ता उपमा भी मिलती है।

## पूर्णोपमा

गांधी जी की उपमा समुद्र से देते हुये कवि लिखता है—

पश्यैकतोऽध्यात्मसुखैकनिघ्नं, गांधी गभीराम्बुधिवद् विशुद्धम्।
अथान्यतो जागत-सौख्यसारान्, श्वेतांगधूतपिसदांश्च पश्य॥
— भारत-जनकम्, पृष्ठ १५

यात्येकतोऽस्तमयमम्बरदीप' इन्दुर्वृन्दावनेन्दुरयमन्यत एति धीरम्।
ज्योतिर्द्वयस्य गमनागमनान्तराले, राधा सती कृशतनुर्ननु कौमुदीव॥
— आनन्द-राधम्, पृष्ठ ४४

१-३. आनन्द-राधम् ,, ३८, ३८, ८५
४. शक्ति-सारदम् ,, ५
५. विमल-यतीन्द्रम् ,, ३७

उपर्युक्त श्लोक में उपमा के चारों अंग उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म विद्यमान हैं ।

**वाचकलुप्ता उपमा**

विश्वम्भर गौरांग और विष्णुप्रिया की उपमा देते हुये कवि ने लिखा है—

विश्वम्भरोऽम्बुजदलायतनेत्र-कान्तो, विष्णुप्रिया नलिनलोचनरोचमाना ।
योगोऽनयोः सदृशयोरुपजायमानः, प्रोत्साहयेत् सपदि देशसमाजसंस्थान् ।।

— प्रीति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ ६

**धर्मलुप्ता**

प्रौढस्य पत्नी-विरहस्तुषाग्निवद् हृदि ज्वलन् देह-शमी-द्रुमं दृढम् ।
दहत्यकाण्डे बहिरप्रकाशित - स्तदेवमाजीवनमेष ताम्यति ।।

— आनन्द-राघम् पृष्ठ ६०

तुहिन-शैल - महामहिमोन्नतः सुरधुनी - सलिलामल - मानसः ।
अतलसिन्धुगभीर - बहुश्रुतः क्षितिरिवातितरां सहनोत्तरः ।।

— भारत-विवेकम्, पृष्ठ ६८

अंकः शशांक इव कीट इव प्रसूने और्वः समुद्र इव कण्टकवत् पयोजे ।
विश्वश्रुते मम तु मातुलरामकृष्ण देवे त्वमस्यकुशला परमोभिशापः ।।

— शक्ति-सारदम्, पृष्ठ २६

**रूपक**

रूपक अलंकार का प्रयोग नाट्यकार ने अधिकतर उपदेशात्मक श्लोकों में किया है । उन्होंने कवि परम्परा प्रसिद्ध 'मुखकमल' चरणारविन्द, 'विरह दहन' आदि शब्दों में उपमेय और उपमान का अभेद दिखलाने के साथ कतिपय नवीन रूपकों का प्रयोग किया है । यथा - हृद्दीप, दैवदीप, संसार दावानल, सत्य-ज्वलन, शान्तिसुशीतलाम्भ, साहित्यकैरववन आदि ।

सत्यं हि नित्यं ज्वलनस्वभावम् असत्यधूमेन वृतं कथंचिद् ।
चिरं न तिष्ठत्यवलुप्तदीप्ति प्राप्तेऽवकाशे लभते स्वरूपम् ।।

— भारत-जनकम्, पृष्ठ १२

**उत्प्रेक्षा**

करपदनखभाभिर्भाति चिते ममैषा कमलदलविहारिण्यागतेवेह लक्ष्मीः ।
द्युतिरनुवपुरस्या वैद्युती भाति लीला नरवपुषि न दृष्टं क्वापि लावण्यमीदृक् ।।

— प्रीति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ ५

**अर्थान्तरन्यास**

साधर्म्य द्वारा सामान्य से विशेष का समर्थन—

सर्वेषु धर्मेषु सहिष्णुभावः सम्यक प्रसारो वहुबोधशक्तेः ।
निगूढतत्त्वार्थविवेचनं च कर्तव्यमग्रयं खलु मानवानाम् ।।

— भास्करोदयम्, पृष्ठ २६

साधर्म्य द्वारा विशेष से सामान्य का समर्थन—

मदयति ननु चेतोऽनन्यसाधारणं यत् किमपि, न तु महत्त्वज्ञापि साधारणं यत् ।
करिणमचलसारं तालतुंगं हि हित्वा शिशुमपि पशुराजं किं जना नाद्रियन्ते ।।

— आनन्द-राधम्, पृष्ठ ५५

**दृष्टान्त**

नाट्ये नियोजितं चारु रोचतां संस्कृतं सदा ।
सितया सह संपीतं विरसं भेषजं यथा ।।

— महा० हरि०, पृष्ठ ३

यथा हि शर्कराखण्डः सजलो निर्जलोऽथवा ।
भुक्तः प्रतीयते मिष्टो ज्ञातव्यो भगवांस्तथा ।।

— भारत-विवेकम्, पृष्ठ १३

**निदर्शना**

कंसस्य हन्ता कतमः कुतो भवान् उल्लम्फनेनेच्छति तर्तुमर्णवम् ।
प्रोष्ठीव पृष्ठस्फुरणाज्जलाशये कल्लोमुत्पादयितुं समीहते ।।

— आनन्द-राधम्, पृष्ठ २४० ( प्र. पा. )

**सन्देह**

राधा को देखकर सुबल सन्देह करता हुआ कहता है—

बन्धूक - पुष्प - शरदिन्दु-समन्वितस्य किं दाडिमीफलयुगस्य हठात् प्रकाशः ।
किं फुल्लचम्पकलता चपला स्थिरा वा विद्युन्नदी किमुत कांचनकानकी वा ।।

— आनन्द-राधम्, श्लोक ६२ पृष्ठ ३०

शक्ति सारदम् में—कालु बाग्दी दस्यु सारदामणि को देखकर सन्देह करता हुआ पूछता है—

गलति किमिति मातास्त्वद्वयोभिर्ममेदं
हृदयमचलसारं दस्युवृत्तिप्रसंगात् ।
भुवि पुनरवतीर्णा राधिका जानकी वा
त्वमसि न तु तदन्या कापि सामान्यनारी ॥

शिकागो में विवेकानन्द को देखकर आश्चर्यान्वित होकर एक विदेशी कहता है—

आकाशचन्द्रमा किमु भाति पृथिवीतले ।
पारिजातं विकसितं भूतले समले ॥
देवराजो राजते नु भूशये विह्वले ।
सप्तर्षिमण्डलराजः किं जातो भूतले ॥

**भ्रान्तिमान्**

नरेन्द्र को देखकर रामकृष्ण परमहंस भारतविवेकम् में कहते हैं कि यही मेरे हृदय को आनन्दित करने वाला चन्द्रमा है, जिसकी आनन्द प्रदान कराने वाली रश्मियों का मैं पान करता हूँ—

एक एव हृदयानन्दनश्चन्द्रो यस्यानन्दरश्मींश्चकोर इवाहं पिबामि ।

**समुच्चय**

नेत्रे मीनरूचिः स कूर्म उरसि क्रोडे स्फुरद् भूतला ।
मध्यं ते नरकेसरि प्रतिभटं गुल्फस्तु ते वामनः ॥
रामाणां शिरसि स्थिता सततं कायस्तव श्रीधनः ।
शुद्धायास्तव सर्वतो विजयते माने परं कल्किता ॥

**स्वभावोक्ति**

[ गद्य ] बहिः प्रकृतिश्च याता झंझा विक्षुब्धा ।

दारुणो वज्रशब्दो नभोमण्डलं खण्डशो विदारयतीव ।
सौदामिनी क्षणचकिता मुहुर्मुहुः करोति आत्मप्रकाशम् ॥
मसीविलेपितगात्राणि कुंजानि सर्वाणि रोदनशब्दपुरःसरं ।
पत्रचक्षुभिरविरलधारं त्यजन्त्यश्रुधाराम् ॥

**उदात्त**

तुहिनशैल-महामहिमोन्नतः सुरधुनी-सलिलामल-मानसः ।
अतलसिन्धुगभीर-बहुश्रुतः क्षितिरिवातितरा सहनोत्तरः ॥

**उल्लेख**

तन्त्रेषु त्वं परा शक्तिर्महामाया सनातनी।
श्मशाने सुखसंचारा कालिका शिवभामिनी।।
सहस्रारे महापद्मे पूर्णानन्दविहारिणी।
भक्तिमुक्तिप्रदा देवी दक्षिणा बन्धहारिणी।।

श्री श्री मातृलीलातत्त्व, पृष्ठ ४७
शक्ति सारदम् पृ. ४

**श्लेष**

रवीन्द्र-परिवार के सदस्यों का नामोल्लेख करते हुये और उनके दूसरे अर्थों का बोध कराते हुये कवि ने श्लेष का प्रयोग किया है –

पुनर्द्विज-सत्य-ज्योतिः — स्वर्णनामधारिभिरनुजैः शचित्वसत्यलोक-हिरण्मय-सौन्दर्यात्मकैः सर्वतः परिवृतो सकस्य न चेतोहरणकारणम्[1]।

शक्ति-सारदम् नाटक में हेनरीरि और मेरी नामक दो व्यक्ति, पुरुष और स्त्री का वेषधारण करके अग्रेजों के दास और उनके प्रशंसक आम आयल को श्लेषमय कविता सुनाते हैं। कविता में एक अर्थ से उनकी निन्दा और दूसरे अर्थ से उनकी प्रशंसा सूचित होती है —

भवान् —व्यंगराज धराधारः परभूषासज्जकः।
पटुभाष महाप्राणः परभृच्छाव-पालकः।।
विलायत-प्रमोदिन् भो विदग्धाननशोभकः।
कलिप्रियं चिरंजीव स्वकार्योद्धारसाधकः[2]।।

प्रथम अर्थ - आप बृहस्पति, धरा के आधारस्वरूप भूषणों से सुसज्जित, भाषण पटु, महानुभाव, दूसरों का पालन करने वाले, भिक्षुकों को आनन्द देने वाले, श्रेष्ठ पंडित, कलियुग में सबके प्रिय, कर्मवीर हैं।

द्वितीय अर्थ–आप इंग्लैंड और वंगकुल में अधम, पृथ्वी के लिये कलंक विदेशी वेश-भूषा धारण करने के कारण कुलांगार, काक से समान कटुभाषी कोयल के वच्चों के पालन वाले काक, विलायत के लोगों के पद चाटने वाले, जले हुये मुख वाले बन्दर, धूर्तमर्कट बन्दर, दूसरों के धन का अपहरण कर अपनी जीविका चलाने वाले हैं।

---

१. भास्करोदयम्, पृष्ठ ९३
२. शक्ति-सारदम्, ,, ३४

## सुभाषित

यतीन्द्र ने नाटकों में सुभाषित का प्रयोग प्रायः उपदेश देने के लिये मिलता है। इन सुभाषितों में कुछ तो साहित्य के प्रचलित पदों के रूपान्तर हैं और कुछ कवि – कल्पना-प्रसूत हैं।

पथ्यानामुपदेशानां लोके दाता दुर्लभः।
श्रोता ततोऽपि विरलः पालको नावलोक्यते ॥

— शक्ति-सारदम्, पृष्ठ ८

प्रस्तुत सूक्ति वाल्मीकि रामायण की निम्न सूक्ति के समान है —

सुलभा पुरुषाः राजन्! सतत प्रियवादिनः।
अप्रिस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

विषधरस्य हरेरपि वा शिशो। न गणनापथमेति वयःक्रमः ॥

— आनन्द-राघम्, पृष्ठ ६१

प्रस्तुत सूक्ति नीति श्लोक की प्रसिद्ध 'सूक्ति तेजस्विनः न वयः समीक्ष्यते' से मिलती है।

यावत्यस्तु विपद् घोरा क्षयस्तस्या न दुर्लभः।
गगनं तमसाच्छन्नं सूचयत्यरुणोदयम् ॥

— महा० हरि०, पृष्ठ २६

कारागारं वरागार पादस्पर्शान्महात्मनः।
चामीकरायते लोहं स्पर्शात् महात्मनः ॥

— महा० हरि०, पृष्ठ २०

अचिन्तितं क्वचिदुपैति चिन्तितमपि नश्यतो अस्य।
नरस्य किं स्वातन्त्र्यं जयतीह भागवती करुणा ॥

— भारत-हृदया०, पृष्ठ ८

## सूक्ति

यतीन्द्र की भाषा में सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। ये सूक्तियाँ सार्वजनिक सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिये प्रयुक्त हुई हैं —

विवाहो नाम न सर्वरोगहरमौषधम्[१]।
प्रियेण विना गृहं काननायते[२]।
एरण्डे बल्लरो न वल्लभायते[३]।
स्थितायां मे मातरि अरण्यमपि नन्दकाननायिष्यते[४]।

छन्द

यतीन्द्र ने अपने नाटकों में आये हुये श्लोकों में तथा अन्य काव्यों में साहित्य में प्रयुक्त प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग किया है। सबसे अधिक उन्होंने अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है । उसके पश्चात् संगीत का अधिक प्रयोग किया है। मात्राच्छन्द में भी विरचित उनके कई श्लोक उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने उपजाति, गीति, तोटक, द्रुतविलम्बित, भुजगप्रयात, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, शालिनी, वसन्ततिलका, शार्दूल-विक्रीडित, स्रग्धरा, इन्द्रवंशा, इन्द्रवज्रा, पुष्पिताग्रा, शिखरिणी, सुन्दरी, उद्गीति, रुचिरा, हरिणी; पज्झटिका, पंचचामर आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

यतीन्द्र पर बंगला साहित्य का स्पष्ट प्रभाव था। उससे प्रभावित होकर उन्होंने कुछ स्थानों पर द्विजेन्द्रपद्य, रवीन्दपद्य आदि का समावेश किया है।

---

१. दीनदास-रघुनाथम्, पृष्ठ ३४
२-३. आनन्द-राघम्, ,, २६, ५१
४. शक्ति-सारदम्, ,, २९

अष्ठम अध्याय

# काव्य

यतीन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे संस्कृत नाटकों के साथ काव्यरचना में भी दक्ष थे। उन्होंने तीन काव्य लिखे हैं, जिनमें एक लघु काव्य है, एक गीतों का संग्रह है तथा अन्य चम्पू काव्य हैं। उनके काव्य निम्नलिखित हैं —

(१) शक्ति-साधनम्

(२) श्री श्रीमातृलीला तत्त्वम्

(३) श्री श्रीविवेकानन्द-चरितम् ( चम्पू काव्य )

## शक्ति-साधनम्

यतीन्द्र के द्वारा विरचित शक्ति-साधनम् राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण लघुकाव्य है। इसकी रचना कवि ने सन् १९५१ ई० में की। इसमें देश की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा भाषा संबंधी समस्याओं का विवरण तथा उनके निराकरण के उपाय वर्णित हैं। भारत में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् अनेक समस्यायें उत्पन्न हुई। पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब से शरणार्थी आकर देश भर में व्याप्त हुये। अन्य समस्याओं के साथ भाषा संबंधी समस्या उग्रतर हो गई। यतीन्द्र ने इस काव्य में दृढतापूर्वक कहा है कि इन समस्याओं का निराकरण करने के लिये अन्य उपायों के साथ-साथ संस्कृत भाषा को भारत की राष्ट्र भाषा बनाना चाहिए। संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है। संस्कृत भाषा सीखकर मनुष्य सौष्ठवपूर्वक विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। यतीन्द्र का कथन है कि भाषा के आधार पर जनता में राष्ट्रीय एकता, राज्यों में शान्ति और शरणार्थियों के पुनर्वास का प्रबन्ध होना चाहिये। इस काव्य में संस्कृत भाषा की भूमा तथा महिमा के साथ कवि के संस्कृत के प्रति अनुराग तथा हृदयोद्गार प्रकट किये गये हैं। शक्ति-साधनम् काव्य के आरम्भ में कवि शक्ति-स्वरूपा जगदम्बिका को प्रणाम करता है। काव्य का शक्ति-साधनम् विषयानुकूल है। यतीन्द्र का कथन है कि भारतीय समस्याओं का निरा-

करण तब तक नही किया जा सकता, जब तक भारतवासी शक्ति की साधना नहीं करते। भारतवासियों को तीन प्रकार की शक्तियों की साधना करनी चाहिए (१) शारीरिक, (२) आर्थिक (३) सांघिक।

कवि ने लिखा है कि प्रत्येक युग में भारतवासियों ने कष्ट सहे हैं। उन कष्टों का निवारण करने के लिये शक्ति की साधना आवश्यक है –

युगे युगे दुःखमेव सोढं भारतवासिभिः।
नाशनायास्य दुःखस्य कर्तव्यं शक्ति-सानधम्[१] ।।५३

सर्वप्रथम दैहिक शक्ति, पुनः अर्थशक्ति और तत्पश्चात् संघशक्ति की साधना करने से कोई कार्य असाध्य नहीं होता।

पुरतो दैहिकी शक्तिरर्थशक्तिश्च पृष्ठतः।
संघादिशक्तियुक्ते चेत्तत्रासाध्य न विद्यते[२] ।।५८

भारतवर्ष को सुदृढ और सम्पन्न राष्ट्र बनाने के लिये उपर्युक्त तीन शक्तियों में सर्वप्रथम शारीरिक शक्ति की आवश्यकता है। शारीरिक शक्ति ही अन्य शक्तियों की प्रकाशिका है। शारीरिक शक्ति से रहित व्यक्ति किसी कार्य को करने में समर्थ नही होता[३]। शारीरिक शक्ति की साधना के पश्चात् मनुष्य को आर्थिक शक्ति की साधना करनी चाहिये। केवल शारीरिक शक्ति से ही मनुष्य प्रत्येक कार्य करने में समर्थ नहीं होता जब तक वह आर्थिक शक्ति से सम्पन्न न हो। लक्ष्यप्राप्ति के लिये दैहिक तथा आर्थिक दोनों शक्यियों का होना अनिवार्य है। अर्थ शक्ति के अभाव में अन्य कोई शक्ति प्रकाशित नहीं होती। धन ही सबका मूल है और सर्वत्र उसी का प्रभुत्व देखा जाता है[४]। किसी कार्य की सफलता के लिये शारीरिक और आर्थिक शक्ति का समन्वय आवश्यक है। जिस व्यक्ति की देह में शक्ति नहीं है, उसके पास खाद्यान्न होने पर भी वह कुछ नहीं कर सकता। जिसके हृदय में अन्य की चिन्ता नहीं है, शरीर में बल है वही व्यक्ति कार्य-सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

यस्य नास्ति गृहे खाद्यं शक्तया किं स करिष्यति।
यस्य देहे न वा शक्तिः खाद्ययुक्ताऽपि सोऽफलः ।।७५
नास्त्यन्नचिन्ता हृदये शरीरे वर्तते बलम्।
यस्य तेनैव महती कार्यसिद्धिर्भविष्यति[५] ।।७६

---

१-४ शक्ति-साधनम् पृष्ठ ५-७
५. शक्ति-साधनम्, पृष्ठ ७

शारीरिक तथा आर्थिक शक्तियों के साथ संघशक्ति की आवश्यकता बतायी गई है। शारीरिक तथा आर्थिक शक्ति से सम्पन्न, होने पर भी अकेला व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। 'संघे शक्तिः कलियुगी, उक्ति अक्षरशः सत्य है। संघशक्ति की महत्ता दर्शित करते हुये कवि हितोपदेश की 'तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः' पक्ति उद्धृत करता है। संघशक्ति के लिये सर्वप्रथम भाषा की एकता अनिवार्य है, एकता उत्पन्न करने के लिये कवि संस्कृत भाषा को उपयुक्त समझता है। इस काव्य में स्थल-स्थल पर यतीन्द्र का संस्कृत भाषा के प्रति प्रेम प्रकट होता है। कवि का कथन है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं के होने मे विभिन्न समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। एक भाषा होने से समस्यायें उतनी जटिल नहीं होगीं। संस्कृत भाषा को सम्पूर्ण देश की भाषा होना चाहिये। वह पृथिवी पर सभी विद्याओं की जननी है।

पृथिव्यां सर्वविद्यानां जननी देवभारती[१]।

भारतवासियों को संस्कृत भाषा के प्रति ममता होना स्वाभाविक है।

ममत्वबोधो हिन्दूनां सर्वेषां यत्र दृश्यते।
त्रिभिन्नदेशसंस्थानां सेयं संस्कृतभारती[२] ।।१२६।।

कवि का कथन है कि जिस प्रकार मणियां एक सूत्र में बंधकर माला की शोभा का कारण बनती हैं, उसी प्रकार संस्कृत भाषारूपी सूत्र में मणिरूपी अन्य भाषायें बद्ध होकर सुन्दर मणिमाला का रूप धारण कर सकती हैं।[३] कवि इस बात पर बल देता है कि यदि हिन्दुस्तानी भाषा राष्ट्रभाषा होगी, तब अन्य भाषा-भाषियों का प्रबल विरोध होगा। आंग्ल भाषा को तो कवि राष्ट्र भाषा के स्थान पर कदापि आरूढ नहीं देखना चाहता है। कवि को यह देखकर दुःख होता है कि अंग्रेजो भाषा अभी भी पूर्ववत् अपने पद पर स्थित है और लोग आनन्द के साथ उसको अपनाते हैं, किन्तु वे संस्कृत भारती को नहीं अपनाते।[४] संस्कृत भाषा के प्रचार के सम्बन्ध में कवि का मत है कि जो भाषा सरल तथा सुबोध हो, प्रचार के लिये उसी भाषा का प्रयोग करना चाहिये।[५] संघ शक्ति के लिये एकता उत्पन्न करने में समर्थ संस्कृत भाषा को कवि राष्ट्र की भाषा बनाना चाहता है। उसका कथन है कि सब प्रदेशों के हिन्दुओं के मन को अच्छी लगने वालो, विमल देववाणी माला के समान सुशोभित हो—

---

१-५. शक्ति-साधनम्, पृष्ठ ११, ३, ११, १२, १३

तस्मात् सर्वप्रदेशीयहिन्दुमानसरंजिनी।
विमला देववाण्येषा स्रसूत्रमिव राजताम्[१] ।।१६८।।

संघशक्ति के लिये भाषा की एकता के साथ एकवेश की भी आवश्यकता है। सभी भारतवासियों को एक वेश-भूषा धारण करनी चाहिये और उसके प्रति अनुराग होना चाहिये। वही वेश धारण करना चाहिये, जो हमारे पूर्वपुरुषों ने धारण किया। विजातीय वेशभूषा धारण करने में आदर नहीं होना चाहिए।[२] संघशक्ति प्राप्त करने के लिये एक लक्ष्य होना आवश्यक है। लक्ष्य के ऐक्य से संघशक्ति उपार्जित की जा सकती है। जब मनुष्यों का लक्ष्य एक होगा, तब उस लक्ष्य की प्राप्ति में परस्पर विरोध की संभावना नहीं होगी—

येषां लक्ष्यमभिन्नं स्यात्तल्लक्ष्यसाधने यदि।
परस्परविरोधस्य नास्ति संभावना तदा[३] ।।१७२

उत्सव आदि के सामूहिक अनुष्ठान से भी संघशक्ति प्राप्त की जा सकती है।

अन्त में कवि आध्यात्मिक शक्ति को महत्त्वपूर्ण बतलाते हुये कहता है कि 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' इस ऋग्वेदीय मन्त्र का पाठ करते हुए प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्य में तत्पर हो जाना चाहिये। शक्ति-साधनम् यथार्थवादी काव्य है। कवि ने हमारे सम्मुख अनेक ठोस आदर्श प्रस्तुत किये हैं। शक्ति-साधनम् की भाषा सरल तथा परिमार्जित है। कथावस्तु की गम्भीरता के साथ-साथ भाषा भावों के अनुरूप और सुबोध है।

## श्री श्रीमातृलीला तत्त्वम्

यतीन्द्र कृत श्री श्रीमातृलीला तत्त्वम्[४] भक्तिपूर्ण गीतों का संग्रह है। इस पुस्तक का सर्जन कर कवि ने संस्कृत-गीत साहित्य की वृद्धि की है। पुस्तक के ६ भाग हैं—

(१) श्री श्रीशक्तितत्त्वम्
(२) श्री श्रीविष्णुप्रिया तत्त्वम्

---

१-३. शक्ति-साधनम्, पृष्ठ १४

४. यह पुस्तक बंगला लिपि में संस्कृत भाषा में लिखी गई है।

(३) श्री श्रीराधा तत्त्वम्

(४) श्री श्रीजननी तत्त्वम्

(५) श्री श्रीसारदामणि तत्त्वम्

(६) श्री श्रीमहामाया तत्त्वम्

श्री श्रीमातृलीला तत्त्व के प्रारम्भ में ९ गीतों द्वारा कवि ने मां दुर्गा, शारदा, देशमातृका, सीता, राधिका, यशोधरा, विष्णुप्रिया, सारदामणि तथा जननी को वन्दना की है। कवि ने इन सब को विश्वमाता का रूप माना है। गीतों में मातृवन्दना के साथ-साथ सभी माताओं के स्वरूप और शक्ति का परिचय दिया गया है। श्री श्रीशक्तितत्त्व में कवि ने गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती, कालिका आदि शक्तियों की स्तुति की है। गौरी की स्तुति करते हुये कवि लिखता है कि मैं स्मरारितनुशोभिनी, सहस्रों पापों को नष्ट करने वाली, हिमाचलपुत्री, सुरगणों का पालन करने वाली, कल्याणकारिणी शिवा का स्मरण करता हूँ। इस गीत में गौरी की वन्दना के साथ सती तथा दक्षयज्ञ विनाश की कथा का संकेत किया गया है। लक्ष्मी की स्तुति करते हुये कवि उनकी शक्ति का रूप मानता है। लक्ष्मी ब्रह्मा, विष्णु और महेश से पूजित हैं, सदा कमल में निवास करने वाली हैं। सरस्वती की वन्दना करते हुये कवि उनके स्वरूप का वर्णन करता है। सरस्वती तमोदल - नाशिनी हैं। वे वीणावादिनी हैं, कुन्द और कपूर के समान धवल हासवाली हैं, श्वेत कमलदलों पर विहार करनेवाली, श्वेत चन्दन से चर्चित सुन्दर वर्णवाली हैं। कालिका-स्तुति में कवि ने लिखा है कि वे शताक्षी हैं, महाशक्तिस्वरूपा हैं। उनकी शक्ति के विना शक्ति भी 'शव' हो जाते हैं। वे चण्डमुण्ड का विनाश करने वाली और शुम्भनिशुम्भ का वध करने वाली हैं। श्री श्रीविष्णुप्रिया-तत्त्व में कवि ने महाप्रभु गौरांग की सहधर्मिणी विष्णुप्रिया की स्तुति की है। महाप्रभु संन्यास लेने के लिये घर से निष्क्रमण करते हैं और विष्णुप्रिया को उनके कर्त्तव्यों का बोध कराकर; उनपर समस्त उत्तरदायित्व सौंपते हैं। विष्णुप्रिया महाप्रभु की स्तुति करते हुये कहती हैं कि मैं आपके भक्तों का भार ग्रहण करती हूँ और आपके धर्म का प्रचार करने का व्रत लेती हूँ। श्री श्रीराधा तत्त्व में कवि श्रीकृष्ण की स्तुति करता है। कवि ने रासलीला - मग्न कृष्ण के उनके कंठस्थित माला के राधा की मेखला के, कृष्ण की मुरलीध्वनि और राधा की कलकाकली के, कृष्ण का पीत उत्तरीय और राधा की वेणी तथा

इन दोनों के नूपुरों के रमणीय शब्द चित्र उपस्थित किये हैं। श्री श्रीजननी तत्त्व में कवि माता की महिमा का गान करता है। मां अमृत का सागर, जन्मदायिनी मोददात्री, करुणामयी है और लालन करने वाली है। मां ही बल, ईश मुक्ति और स्वर्ग है। जननी-स्तुति में कवि ने अपनी मां श्री नयनतारा देवी की स्तुति की है। श्री श्रीसारदामणि तत्त्व में कवि ने माता सारदामणि की स्तुति की है। श्री श्रीमहामाया तत्त्व में कवि ने मां तुलसी की स्तुति की है। इन छः भागों के अतिरिक्त कवि ने भगिनी निवेदिता, महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस की स्तुति में भी गीत लिखे हैं।

दुर्गा की स्तुति करते हुये कवि ने दुर्गा के विभिन्न नाम और रूपों का उल्लेख करते हुये उसका माहात्म्य बतलाया है। दुर्गा को विविध प्रदेशों के निवासी भिन्न-भिन्न नाम से अभिहित करते हैं —

करालो चंडिका काली राजसे पूतति०वते
हिंगुला गुजराते त्वं कल्याणी मध्यभारते।
मिथिलायामुमादेवी दक्षिणे ललिताम्बिका
काश्मीरेऽम्बबालिकाम्बा त्वं तथा वङ्गेषु कालिका ।।
आसामे त्वं हि कामाख्या, शतभुजा महाचिने[१]
कुमारिकासु कौमारी च नष्टी चासि नीपने ।।१।।

## देश-प्रेम

कवि देशनुरागी है। देशमातृका की स्तुति करते हुये उसने भारत-वन्दना की है—

जन्मभूमि भारतजननि ।
गंगा गोदावरी, नर्मदा कावेरी
पुण्यधारा पीयूषिणी ।।
दशभुजविलासिनी दशदिशोल्लासिनी
देववन्द्य भारतजननी ।।
बलसिद्धि-विधायिनी, ज्ञानघनप्रदायिनी
सुतशतकल्याणसाधिनी,
निखिल भुवन-सुरंजन, सर्वभाषा प्रभंजन—
गीर्वाणवाणी-भाषिणी ।।[२]

---

१-२ श्री श्रीमातृलीलातत्त्वम्, पृष्ठ १, १२

## प्रकृति-वर्णन

श्री श्रीमातृलीला तत्त्व के अनेक गीतों में प्रकृति का रम्य चित्र उपस्थित किया गया है। देशमातृका स्तुति में देश का प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रित करते हुये कवि लिखता है—

तारकामंडित - नीलनभः प्रान्त - पुलकितवनकुन्तलिनी।
सागरसुरवने मंजीरचरणे हिमगिरि वरकिरीटिनी॥
विन्ध्यमेखले जननि[1]!

बंग-जननी-स्तुति करते हुये डा० चौधुरी वंगभूमि का प्राकृतिक सौन्दर्य प्रस्तुत करते हैं—

आतप - विरसे निदाघदिवसे सान्ध्यसमीरण - सुसेविनीम्।
नवघनमाले वर्षणकाले नदीकल्लोलासिनीम् ॥४॥
शेफाली-शोभित-शारद-प्रभात-नृत्यत्-काशकुल-शोभिनीम्।
परम-सुकान्त-सुशान्त-हेमन्त लसद्धान्यमधु-हिल्लोलिनीम्[2] ॥५॥

## भाषा-शैली

डा० चौधुरी नाटककार के साथ-साथ कुशल गीतिकार भी हैं। उनके लिखे हुये सभी गीत गेय और मधुर हैं। इनके गीतों में जयदेव के गीत-गोविन्द के माधुर्य के साथ बंगला गीतपद्धति पर रचे गये गीतों की मधुरता है। गीतों की भाषा सरल, परमार्जित तथा प्रसादपूर्ण है। गीतों की रचना में प्रायः वैदर्भी रीति का तथा कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया गया है। मातृवन्दना, जन्मभूमि स्तुति तथा वंग-स्तुति में लिखे हुये गीत ओजपूर्ण हैं तथा गौडी रीति में लिखे गये हैं।

## अलंकार योजना

'श्री श्रीमातृलीला तत्त्व' के गीतों में स्वाभाविक रूप से आये हुये अनुप्रास, उपमा, रूपक, उल्लेख आदि अलंकार गीतों का सौन्दर्य बढ़ाते हैं।

### अनुप्रास

महाधूम्रा महागौरी महामेधा महाधृतिः।
महाशान्तिर्महाक्षान्तिर्महाश्रुतिमहास्मृतिः[3]॥

---

१-३. श्री श्रीमातृलीला तत्त्व, पृष्ठ १३, ९८, २८

## उपमालंकार

कुन्दकर्पूरधवलहासिनी सौम्यसारदे सारदायिनी।
श्वेत-कमलामल-दल-विहारिणी सित-चन्दन-चर्चित-वरर्वणिनि।
भजामि भारति भास्वति भरणि[१]!

## रूपक

हृदय - सरसिजे रश्मिसुधारां
जननीं याचे सुधामपाराम्।
विमलां करुणां कणिका-कारां
याचे 'यतीन्द्र–विमलो' नितराम्[२]॥

## उल्लेखालंकार

तन्त्रेषु त्वं पराशक्तिर्महामाया सनातनी।
श्मशाने सुखसंचारा कालिका शिवभामिनी॥
सहस्रारे महापद्मे पूर्णानन्दविहारिणी।
भक्तिमुक्तिप्रदादेवी दक्षिणा बन्धहारिणी[३]॥

## छन्दोयोजना

डा० यतीन्द्रविमल चौधुरी ने गीत रचना में मन्दाक्रान्ता मालिनी, वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, इन्द्रवंशा इन्द्रवज्रा, स्रग्विणी, चित्रपंचचामरोप-जाति, पंचचामर, तोटक, मात्रा, षोडशमात्रक आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

## श्री श्रीविवेकानन्दचरितम्

'श्री श्रीविवेकानन्दचरितम्' विवेकानन्द के जीवन-चरित पर लिखा हुआ चम्पूकाव्य है। इसकी कथावस्तु तीन खण्डों में विभक्त है।

कलकत्ते में दत्त परिवार में विश्वनाथ संस्कृत, पारसी और आंग्ल-भाषा साहित्य के प्रतिभाशाली विद्वान् थे। धर्मादि विषयों में उनका अनुराग था। उनकी पत्नी भुवनेश्वरीदेवी थीं। सन् १८६३ ई० में १२ जनवरी को विश्वनाथ के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ। विश्वेश्वर शिव की कृपा से पुत्र का जन्म मानकर माता ने उसका नाम वीरेश्वर रखा।

---

१-३. श्री श्री मातृलीलातत्त्व, पृष्ठ ४१, ११९, ४७।

अन्नप्राशन के समय शिशु का नाम नरेन्द्र रखा गया। नरेन्द्र धार्मिक बालक था। रामायण - महाभारत आदि ग्रन्थों को सुनने में उसकी रुचि थी। रामायण के श्रवण से, सीता और राम के प्रति उसको श्रद्धा हुई। उसने उनकी युगलमूर्ति लाकर अपने कक्ष में रखी। बालावस्था से नरेन्द्र को विवाह के प्रति अनिच्छा थी। इसी धारणा के कारण उसने सीता और राम की युगल मूर्ति हटाकर उसके स्थान पर शिव की मूर्ति प्रतिष्ठित की। उसको हनुमान् के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई और वह उनके दर्शन के उत्कंठित रहने लगा। पांच वर्ष की अवस्था में नरेन्द्र ने विद्याध्ययन आरम्भ किया। प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् कलकत्ते के 'मेट्रोपालिटान स्कूल' में उसने प्रवेश किया। चौदह वर्ष की आयु में उसके रुग्ण हो जाने के कारण चिकित्सा के लिये उसके पिता उसको रायपुर ले गये। रायपुर में उस समय कोई शिक्षा निकेतन न होने के कारण उसके पिता उसको घर पर पढ़ाते थे। दो वर्ष पश्चात् विश्वनाथ के कलकत्ता आने पर नरेन्द्र का उसी विद्यालय में पुनः प्रवेश हुआ। प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उसने कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रवेश किया।

विद्यार्थी नरेन्द्र के मन में ईश्वर के स्वरूप को जानने की इच्छा थी। एक दिन सुरेन्द्रनाथ मित्र के घर रामकृष्ण परहंस के साथ नरेन्द्र का साक्षात्कार हुआ। युवक नरेन्द्र को देखकर और उसका संगीत सुनकर परमहंसदेव उसकी ओर आकृष्ट हुये। उन्होंने उसको अपना उत्तर साधक मान लिया। नरेन्द्र ने उनको अपना गुरु माना। रामकृष्ण ने नरेन्द्र को ईश्वर के स्वरूप, धर्म, वेदान्त आदि के विषय में शिक्षा दी। अपने महा-तिरोधान के पूर्व उन्होंने नरेन्द्र को अपने रामकृष्ण के अवतार होने का रहस्य बतलाया। उन्होंने नरेन्द्र को धर्मप्रचार का भार दिया। रामकृष्ण के तिरोधान के पश्चात् नरेन्द्र ने गुरु-भाइयों का भार ग्रहण किया। उन्होंने तरुण संन्यासियों का नेतृत्व किया। माता सारदामणि का आशीर्वाद प्राप्त करके उन्होंने भारत-भ्रमण किया। उत्तर से कन्याकुमारी तक यात्रा करके उन्होंने खेतडी महाराज को शिकागो में होने वाले विश्व-धर्म-सम्मेलन में जाने का अपना विचार बतलाया। शिकागो जाने से पूर्व खेतडी-नरेश के आग्रह से उन्होंने अपना नाम विवेकानन्द रखा।

सन् १८९३ ई० में ३१ मई को स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के लिये प्रस्थान किया। अमेरिका पहुँचने पर अर्थाभाव के कारण उन्हें

भोजन; आवास आदि के कष्ट झेलने पड़े। एक दिन वोष्टन, नगर जाते हुये स्वामी जी का परिचय मिश्र काटे स्यान्‌वर्न से हुआ। स्वामी जी कई दिन उसके पास रहे।

एक दिन स्वामी जी को किसी 'नारी-सम्मेलन-संस्था' में भाषण देने के लिये निमन्त्रित किया गया। स्वामी जी के भाषण से अमेरिकावासी प्रभावित हुये। हर्वर्ट् विश्वविद्यालय के ग्रीक विषय के प्रधानाध्यापक श्री जे० एच० राइट ने उनसे विश्व-धर्म-सम्मेलन में भाग लेने का अनुरोध किया। उन्होंने सम्मेलन के सभापति के लिये स्वामो जी के संबन्ध में एक पत्र लिखकर दिया और स्वामो जी को शिकागो जाने के लिये टिकट खरीद दिया। परन्तु दुर्भाग्य से स्वामो जी के वे परिचय-पत्र आदि न जाने कहां गिर गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल मलिनवस्त्र पहने हुये स्वामी जी भिक्षा मांगने के लिये निकले। किसी ने उनको भिक्षा नहीं दी। प्रत्युत उनका उपहास किया। मां सारदामणि का स्मरण करते ही एक महिला उनके पास आई। उनकी कृपा से ११ सितम्बर को स्वामो जी धर्म-सम्मेलन के प्रतिनिधि निर्वाचित हुए। उस दिन दोपहर को स्वामो जी ने उस सम्मेलन में भाषण दिया। उनके ओजस्वी भाषण से सभी उनकी ओर आकृष्ट हुये। दूसरे दिन अमेरिका के सभी पत्र-पत्रिकाओं में स्वामी जो के चित्र, भाषण तथा कृतित्व प्रकाशित हुये। शिकागो धर्म-सम्मेलन में कई दिन भाषण देने के अनन्तर स्वामी जी ने अमेरिका के अन्य प्रदेशों में भाषण दिये। वहां से वे इग्लैंड और यूरोप गये और सर्वत्र रामकृष्ण के धर्म का प्रचार किया। लन्दन में मिस् मार्गरिट् नोवल् स्वामी जी की शिष्या बनी और उन्होंने भारतवष के हित में अपना जोवन उत्सर्ग करने का संकल्प किया। श्री ष्टार्डि तथा सेमियान् दम्पती उनके शिष्य बने। सन् १८९७ ई० में स्वामी जो सेमियान् दम्पती के साथ भारत लौट आये।

दक्षिण के प्रमुख स्थानों पर भ्रमण करते हुये स्वामी जी कलकत्ता पहुँचे। वहां उन्होंने श्री रामकृष्ण संघ को प्रतिष्ठा की। जनवरी सन् १८९८ ई० में मिस् मूलर तथा मिस् मार्गरेट नोवल भारत आईं। फरवरी में श्रीमती ओलिवुल् तथा मिस् जोशोफिन् म्याकल्येड् स्वामी जो से शिक्षा प्राप्त करने तथा प्रत्येक कार्य में उनकी सहायता करने के उद्देश्य से भारत आईं।

स्वामी जी के शिष्यों ने रमणीय गंगा तटपर भूमि लेकर रामकृष्ण संघ के मठ का निर्माण कार्य प्रारम्भ करवाया। स्वामी जी प्रायः नवनिर्मित मठस्थान पर आकर उन शिष्याओं को भारत के धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि विषयों की शिक्षा देते थे। मिस् मार्गरेट् महोदया को उन्होंने भारतीय-नारी-समाज का कल्याण और उनमें शिक्षा का प्रचार करने के लिये नियुक्त किया। उन्होंने उनको दीक्षा देकर उनका नाम निवेदिता रखा।

मठ की व्यवस्था और शिष्यों के शिक्षण आदि कार्यों की अधिकता से स्वामी जी रुग्ण हो गये। चिकित्सकों के परामर्शानुसार वायु-परिवर्तन के लिये उन्हें दार्जिलिग जाना पड़ा। वहां उन्होंने कलकते में विषम प्लेग रोग के फैलने का समाचार सुना। वे तत्क्षण वहां से चल दिये। कलकत्ता आकर वे रामकृष्ण–संघ के साथ जन-सेवा में लग गये। उन्होंने कहा कि आवश्यकता पड़ने पर मैं मठ के लिये ली हुई भूमि को बेच दूँगा और उस धन से पीडित जनता की सहायता करूँगा।

कुछ समय के पश्चात् स्वामी जी अलमोडा गये। उनके शिष्य सेमियान् दम्पती ने 'प्रबुद्ध-भारती' पत्रिका के संचालन का व्यय भार ग्रहण किया। अलमोडा से वे काश्मीर गये। निवेदिता उनके साथ थीं।

काश्मीर-भ्रमण के पश्चात् स्वामी जी ने बेलूर में मठ की स्थापना की। परमहंसदेव के आदर्श और उपदेशों का प्रचार करने के लिये स्वामी त्रिगुणातीतानन्द ने उद्बोधन नामक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। सन् १८९९ ई० में स्वासी जी ने द्वितीय बार पाश्चात्त्य देशों में भ्रमण करना प्रारम्भ किया। केलिफोर्निया में उन्होंने चार वेदान्तकेन्द्र स्थापित किये। यात्रा करते समय उन्होंने परिव्राजक और वर्तमान भारत नामक दो ग्रन्थों की रचना की। फ्रांस आदि देशों का भ्रमण करते हुये स्वामी जी सन् १९०१ में भारत लौट आये। संस्कृत भाषा का प्रचार करने के लिये स्वामी जी ने भारत के विभिन्न स्थानों में उपदेश दिये। उन्होंने संस्कृत भाषा की महत्ता और उसकी आवश्यकता के सम्बन्ध में जनता के समक्ष विचार प्रस्तुत किये गये। संस्कृत की उन्नति के लिये उन्होंने प्रभूत अर्थ भी व्यय किया। ४ जुलाई सन् १९०२ ई० को स्वामी जी की रुग्णावस्था बढ़ गई। मध्याह्न में उन्होंने सबके साथ भोजन करने की इच्छा प्रकट की। भोजन के पश्चात् उन्होंने सभी

ब्रह्मचारियों को संस्कृत - व्याकरण पढ़ायी। सन्ध्या के समय स्वामी जी अपने शयनकक्ष में गये। उन्होंने एक ब्रह्मचारी को अपने कमरे के दरवाजे और खिड़कियां खोलने का आदेश दिया। पूर्व की ओर मुख करके स्वामी जी बहुत देर तक श्री रामकृष्ण के लीलास्थल दक्षिणेश्वर को निर्निमेष दृष्टि से देखते रहे। तत्पश्चात् पद्मासन लगाकर माता का ध्यान करते-करते वे महासमाधि में लीन हो गये।

यतीन्द्र ने श्री श्रीविवेकानन्द-चरितम् चम्पूकाव्य की रचना की। उन्होंने इसको चम्पू काव्य के नाम से अभिहित किया। किन्तु इसमें दण्डी की चम्पूकाव्य की परिभाषा के अतिरिक्त कोई लक्षण नहीं मिलते। यह गद्य-पद्य मिश्रित ग्रन्थ है, जिसमें विवेकानन्द का जीवन चरित वर्णित है। इसमें काव्यात्मक चारुता नहीं है। इसको चरित काव्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि काव्य में चारुता होना अनिवार्य है। इसको हम विवेकानन्द के जीवन पर लिखा हुआ चरितग्रन्थ कह सकते हैं।

चरितग्रन्थ की दृष्ट से यह सफल ग्रन्थ है। विवेकानन्द के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं का इसमें उल्लेख किया गया है। लेखक ने संक्षेप में उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर प्रकाश डाला है।

'श्री श्रीविवेकानन्द-चरितम्' की भाषा सरल तथा प्रभावोत्पादक है। भाषा सरल होते हुये भी गम्भीर भावों को व्यक्त करने में समर्थ है। किसी-किसी स्थान पर लेखक ने मनोवैज्ञानिक भावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है। भुवनेश्वरीदेवी अपनी अपत्यहीनता पर शोक प्रकट करते हुये कहती हैं—

लतेव पुष्पप्रकरेण हीना शशांकहीना च यथा त्रियामा।
हीना यथार्थैर्मधुराऽपि वाणी न शोभते तद्वदपत्यहीना ॥५



नवम अध्याय

# अनुसन्धान-प्रवृत्तियां

यतीन्द्र संस्कृत नाटककार ही न थे, अपितु उच्चकोटि के अनुसन्धान-कर्ता भी थे। विद्यार्थीकाल से उनकी प्रवृत्ति अनुसन्धान की ओर थी। सन् १९३० ई० से उन्होंने अनुसन्धानकार्य प्रारम्भ किया। बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जब वे उच्च शिक्षा के लिएलन्दन विश्वविद्यालय गये तो एम० ए० की समानान्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिये उन्होंने 'वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति'[1] नामक शोध-प्रवन्ध लिखा। अनुसन्धानकार्य की ओर रुचि बढ़ती गई। तत्पश्चात् पी-एच० डी० उपाधि के लिये उन्होंने 'वैदिक धार्मिक कृत्यों में स्त्रियाँ'[2] विषय लेकर, लन्दन विश्वविद्यालय के संस्कृत के प्रोफेसर डाक्टर सी० आर० रायलैण्डस के निरीक्षण में शोध-कार्य किया। सन् १९३४ ई० में उक्त विषय पर पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् वे सदा शोध-कार्य में निरत रहे।[3] अपनी गवेषणात्मक प्रतिभा के सहारे उन्होंने अनेक ग्रन्थ रचकर जनता का ध्यान ऐसे विषयों की ओर आकृष्ट किया, जिनकी ओर लोगों की प्रवृत्ति अभी तक नहीं हुई थी। उन्होंने सम्पादन की वैज्ञानिक प्रणाली को अपनाया। वे सम्पादन करने के लिये सभी प्राप्य प्रतियों का गहरा अध्ययन करते थे तथा उनमें पाये जाने वाले विभिन्न पाठों की टिप्पणी करते थे। वे हस्तलिखित प्रतियों से समीचीन मूलपाठ को संशोधन-पद्धति से निकालने में विशेष श्रम करते थे। ग्रन्थ के प्रारम्भ में विस्तृत प्रस्तावना तथा प्राक्कथन देकर उन्होंने पुस्तकों से सम्बद्ध विषयों का अंग्रेजी के माध्यम से स्पष्टीकरण किया है। ग्रन्थ के अन्त में उन्होंने परिशिष्ट तथा सन्दर्भ-

---

1. The Position of Women in Vedic Age.
2. Women in Vedic Ritual
३. डा० चौधुरी का शोध-प्रवन्ध सन् १९३९ ई० से सन् १९४१ ई० तक Indian Historical Quarterly तथा New Indian Antiquary के अङ्कों में प्रकाशित हुआ और १९४५ में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ।

ग्रन्थसूची दी है।[1] इन सबके अतिरिक्त सम्पादित ग्रन्थों में उन्होंने उन सभी पाठों का उल्लेख किया है, जो हस्तलिखित प्रतियों में पाये गये हैं। इन प्रतियों में आये हुये समस्त ऐतिहासिक, भौगोलिक स्थलों और व्यक्तियों के विषय में यह शोध किया कि वे वास्तविक हैं या कल्पनाप्रसूत।

यतीन्द्र मातृशक्ति के उपासक थे। उनके हृदय में स्त्रियों के प्रति सम्मान था। उनके नाटकों, गीतिकाव्यों और शोध-निबन्धों में प्रायश: नारीगरिमा की विज्ञप्ति है। "वैदिक धार्मिक कृत्यों में स्त्रियां नामक शोध-प्रबन्ध में उन्होंने लिखा है कि वैदिक काल से हमारे देश में स्त्रियों का स्थान उच्च रहा है। स्त्रियां परामर्शदात्री, पावन और दिव्य गुणों की साकार प्रतिमा मानी गई है। अन्य शोध-ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ करते समय उन्होंने सर्वप्रथम नारी-विषयों को लिया। सन् १९३९-४० ई० तक उाहोंने 'संस्कृतसाहित्य में नारियों का दान'[2] नामक ग्रन्थ सात भागों में लिखा। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९४० ई० में हुआ उक्त ग्रन्थ की रचना करके यतीन्द्र ने यह सिद्ध किया कि संस्कृत कभी भी मातृभाषा नहीं रही। इस दिशा में पुरुषों का ही नहीं, अपितु स्त्रियों का भी योगदान रहा है। संस्कृत ग्रन्थों की रचयित्री विदुषियों की सभी शताब्दियों की रचनायें काव्य के अतिरिक्त ज्योतिष, स्मृति, पुराण आदि गूढ़ विषयों पर भी हैं। इन की प्रतिभा बहुक्षेत्रीय थी। नारियां काव्य-रचना के साथ-साथ गायन, वादन तथा नृत्य आदि ललित कलाओं में निष्णात होती थीं।

---

1. "So far as the editing is concerned, we must say that it leaves nothing undone. Dr. Chaudhuri has already edited so many unpublished manuscripts that he may well be looked upon as an expert in this line of work. He has thoroughly mastered the technique of dealing with manuscript matereails......Dr. Chaudhuri's edition is so helpful to the reader that even if one does not care to read the original Sanskrit, one can easily be acquainted with the subject-matter of the book by glancing at a full summary of it given in the beginning of the book. Dr. Chaudhuri possesses a place in the world of research and scholarship and we congratulate him on his rapid rise."

—The Modern Review, 1941, July.

2. Contribution of Women to Sanskit Literature, 7 Vols.

'संस्कृत-साहित्य में नारियों का दान' प्रथम भाग में यतीन्द्र ने संस्कृत कवियित्री सुन्दरी और कमल द्वारा रचित 'चमत्कार-तरंगिणी' को संकलित करके इन कवियित्रियों को संस्कृत साहित्य के इतिहास में प्रतिष्ठित किया। 'चमत्कार तरंगिणी राजेशेखर को विद्‌-शाल-मंजिका पर लिखी गई आलोचना है।

'संस्कृत-साहित्य में नारियों का दान' द्वितीय भाग में यतीन्द्र ने प्राचीन-काल तथा मध्यकाल की ३३ संस्कृत कवियित्री और उनकी श्लोकवद्ध रचनाओं का परिचय दिया है। उन्होंने संस्कृत-कवित्रियों के साथ-साथ प्राकृत भाषा की कवियित्रियों का भी नामोल्लेख किया है। इस कृति में संस्कृत कविवित्रियों द्वारा विरचित १४० श्लोकों का संकलन मिलता है।

यह ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में यतीन्द्र की पत्नी डा० रमा चौधुरी ने आंग्ल भाषा में प्रस्तावना लिखी है, जिसमें कवियित्रियों का जन्म-काल, वंश-परम्परा, कृतियों तथा विचार-धारा के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। द्वितीय भाग में सस्कृत तथा प्राकृत कवियित्रियों की रचनाओं को मुख्य पंक्तियां उल्लिखित हैं। तृतीय भाग में डा० रमा चोधुरी ने श्लोकों का आंग्ल भाषा में अनुवाद किया है। पुस्तक के अन्त में परिशिष्ठ शब्द-सूची आदि दी हैं। इस ग्रन्थ के सम्पादन से यतीन्द्र को विद्वानों से बहुत प्रशस्ति प्राप्त हुई है।[1]

'संस्कृत-साहित्य में नारियों का दान तृतीय और चतुर्थ भाग में यतीन्द्र ने बीनाबाई रचित 'द्वारका पत्तल तथा विश्वासदेवी रचित 'वाक्यावली का संग्रह किया है। 'द्वारका पत्तल' सन्‌ १५१८ ई० में लिखा गया है। यह एक पौराणिक ग्रन्थ है। इसके सम्पादन में यतीन्द्र का ध्येय था कि भारत तथा विश्व के सभी विद्वान्‌ यह जान सकें कि भारतीय स्त्रियां, धार्मिक तथा पौराणिक विषयों में अभिज्ञ थीं। 'गंगा-वाक्यावली शक संवत्‌ १५९६ में मिथिला के राजा शिवसिंह के भाई पद्मसिंह की पत्नी विश्वास-

1. "We congratulate Dr. Chaudhuri and his eminent paıtner in life Dr. Mrs. Roma Chaudhuri on the production of this scholarly volume edited in a scientific manner which should attract not only lay readert but also sanskritists to the enchanting field of their study."
Review published in the Annuals of the Bhandarker Oriental Research Institute, Vol. XX, perts III, IV, PP. 331-333.

देवी के द्वारा लिखा हुआ स्मृतिग्रन्थ है। उक्त ग्रन्थ का सम्पादन यतीन्द्र ने सर्वप्रथम किया। इसमें मूलपाठ के साथ-साथ प्रारम्भ में प्रस्तावना दी गई है। ग्रन्थ में उल्लिखित नदी, पर्वत और नगरों के ऐतिहासिक नामों के साथ-साथ टिप्पणी में उनके नवीन नाम भी दिये हैं। पुस्तक के अन्त में अनुक्रमणिका तथा पांच शब्द सूचियाँ और संक्षिप्त शब्द रूप दिये हैं।

'संस्कृत-साहित्य में नारियों का योगदान' पंचम भाग में यतीन्द्र ने प्राणमंजरी द्वारा विरचित 'तन्त्रराजतन्त्रम्' का 'सुदर्शन व्याख्या' के साथ सम्पादन किया है। इस ग्रन्थ की रचना करके यतीन्द्र ने यह प्रतिपादित किया है कि स्त्रियों का न केवल काव्य, महाकाव्य नाटक आदि के क्षेत्र में ही अधिकार था अपितु तन्त्र जैसे गूढ़ विषयों को भी उन्होंने काव्य का विषय बनाया। इस ग्रन्थ के सम्पादन की वैज्ञानिक प्रणाली को विद्वानों ने प्रशंसा की है।[1]

'संस्कृत साहित्य में नारियों का योगदान' के षष्ठ भाग मे यतीन्द्र ने देवकुमारिकाकृत 'वैद्यनाथप्रसादप्रशस्ति' तथा लक्ष्मीराज्ञीविरचित 'सन्तानगोपाल' काव्य का सम्पादन किया है। 'वैद्यनाथप्रसाद-प्रशस्ति' काव्य की रचना संवत् १७७२ में हुई। इसकी लेखिका देवकुमारिका राजा अमरसिंह की पत्नी, जयसिंह की पुत्र वधू और चित्तौड़ के राजा जयसिंह की मां थीं। 'सन्तानगोपाल' काव्य सन् १६०० ई० में लिखा गया। 'वैद्यनाथप्रसादप्रशस्ति' और 'सन्तानगोपाल' काव्य की हस्तलिखित प्रतियां क्रमशः रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल तथा इंडिया आफिस लाय-

---

1. ,,.........In a word, we have got a scholarly and scientific edition, I cannot help stressing a particular point which has greatly impressed me. The editor has access only to a singlens, and that again not free from imperfections. The readings I found to be embarrasing, have not escaped the editor's vigilant eye and the amendations he has suggested in the appendix are singularly happy and apt. I congratulate Dr. Chaudhuri on his success and the sound and extensive scholarship he has brought to bear on his task."

Review published in "The Indian Historical Quarterly" Vol. XVI, No. 4, Dec., 1940.

ब्रेरी लन्दन से प्राप्त हुई । 'सन्तानगोपाल' काव्य की हस्तलिखित प्रतियां न्यून हैं ।[१]

'संस्कृत-साहित्य में नारियों का दान' षष्ठ भाग का सम्पादन करते समय यतीन्द्र ने ग्रन्थ में आयी हुई विशेष घटनाओं के सम्बन्ध में टिप्पणी दी हैं । मूलग्रन्थ में पाये जाने वाले समासयुक्त शब्दों को सम्पादित ग्रन्थ में समस्त चिन्ह देकर लिखा है जिससे पढ़ने में सरलता हो । ग्रन्थ में आये हुये व्यक्तियों के नामों को बड़े-बड़े स्पष्टाक्षरों में अंकित किया है । 'संस्कृत-साहित्य में नारियों का दान' सप्तम भाग में यतीन्द्र ने लक्ष्मीदेवी पाघगुण्डा रचित 'काल-माधव-लक्ष्मी' का सम्पादन किया है । इस प्रकार यतीन्द्र ने 'संस्कृत-साहित्य में नारियों का दान' नामक शोध-ग्रन्थ की रचना करके भारत में भिन्न-भिन्न काल में प्रादुर्भूत होने वाली संस्कृत-कवियित्रियों और उनकी रचनाओं का विवरण दिया है जिनका उल्लेख संस्कृत-साहित्यकारों के रूप में कभी नहीं हुआ । संस्कृत-साहित्य में इनका उल्लेख न करना एक त्रुटि थी । यतीन्द्र का ध्यान संस्कृत साहित्य की इन उपेक्षित कवयित्रियों की ओर गया और उन्होंने उनके नाम और रचनाओं को काव्यजगत् के समक्ष प्रस्तुत करके संस्कृत साहित्य में उनका योगदान का निर्णय किया ।

'संस्कृत-साहित्य में नारियों का दान' नामक शोध-ग्रन्थ लिखने के साथ-साथ यतीन्द्र का ध्यान मुसलमान संस्कृत-साहित्यकारों की ओर आकृष्ट हुआ । इस विषय में निरन्तर शोध-कार्य में रत रहकर उन्होंने सन् १९४०-४५ तक में 'संस्कृत साहित्य में मुसलमानों का दान'[२] नामक ग्रन्थ की तीन भागों में रचना की । इस ग्रन्थ की रचना करने में यतीन्द्र का ध्येय मुसलमान साहित्यकारों का संस्कृत में योगदान दिखलाने के साथ ही साथ संस्कृत-भाषा की व्यापकता तथा लोकप्रियता को सिद्ध करना है । संस्कृत साहित्य में स्त्रियों तथा मुसलमानों का योगदान दिखलाकर उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि संस्कृत कभी भी दुरुह भाषा

१. यह कहा जाता है कि 'सन्तानगोपालकाव्य' एक वार दक्षिण में प्रकाशित हो चुका है किन्तु इस सम्वन्ध में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं होते क्योंकि किसी भी पुस्तकालय में इसकी प्रकाशित प्रति नहीं प्राप्त हो सकी ।

2. Contribution of Muslims to Sanskrit Literature, 3 Vols.

नहीं रही। मुसलमान साहित्यकारों ने भी इसका अनायास प्रयोग किया। इस प्रकार संस्कृत कुछ गिने चुने लोगों की भाषा न होकर जनता की भाषा थी।

'संस्कृत-साहित्य में मुसलमानों का दान' प्रथम भाग में यतीन्द्र ने मुहम्मदशाह रचित 'संगीत-मालिका' का सर्वप्रथम आलोचनात्मक सम्पादन किया है। मूलपाठ के साथ उन्होंने आवश्यक टिप्पणी और व्याख्या भी दी है। पुस्तक के प्रारम्भ में आंग्ल भाषा में भूमिका दी है। 'बीकानेर स्टेट लायब्रेरी' से इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति प्राप्त करके यतीन्द्र ने उसका सम्पादन किया। इस ग्रन्थ का सम्पादन कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसको पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि भारत में मुसलमान राजाओं ने संस्कृत-कवियों को अपने राज्य में केवल आश्रय ही नहीं दिया वरन् अनेक मुसलमान संस्कृत कवि भी इस देश में हुये जिन्होंने संस्कृत-ग्रन्थों की रचना करके संस्कृत का महत्व प्रतिपादित किया।

मुहम्मदशाह-विरचित 'संगीत - मालिका' संगीत-शास्त्रीय ग्रन्थ है। नृत्य की विधाओं का भी इसमें समावेश किया गया है। संस्कृत-साहित्य में नृत्य और संगीत सम्बन्धी ग्रन्थ थोड़े ही हैं। इस दृष्टि से इस पुस्तक का सम्पादन संस्कृत साहित्य के लिये विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाता है। 'संस्कृत - साहित्य में मुसलमानों का दान' द्वितीय भाग में यतीन्द्र ने अब्दुर्रहीम खानखाना द्वारा संस्कृत भाषा के लिये किये गये प्रयासों तथा तत्कालीन संस्कृत साहित्य की अवस्था का विशद् रूप से चित्रण किया है। संस्कृत वांङ्मय की वृद्धि में मुसलमान कवियों का बहुमूल्य योगदान रहा। खानखाना हिन्दी और संस्कृत के महान् कवि थे। उन्होंने संस्कृत साहित्य की उन्नति के लिये आजीवन प्रयत्न किया तथा समकालीन अन्य जिज्ञासुओं को भी इस दिशा में कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया।

'संस्कृत-साहित्य में मुसलमानों का दान' तृतीय भाग में मुहम्मदीय कवि दाराशिकोह द्वारा रचित 'समुद्र संगम' का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ में यतीन्द्र ने 'समुद्रसंगम' पुस्तक को प्रकाशित करके उसपर व्याख्यात्मक टिप्पणी दी है। यह ग्रन्थ ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। मुसलमान सम्राट्, अकबर के प्रपौत्र दाराशिकोह द्वारा रचित यह ग्रन्थ हिन्दु-मुस्लिम धर्म के तत्वों में प्रतिपादित समान

तत्त्वों को प्रस्तुत करता है। साम्प्रदायिक ऐक्य और सद्भावना उत्पन्न करने के कारण यह ग्रन्थ संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि है।

गवेषणात्मक कार्य में लीन रहते हुये यतीन्द्र ने न केवल महम्मदीय संस्कृत साहित्यकारों को ही इतिहास में प्रमुख स्थान दिया, अपितु 'सस्कृत साहित्य को मुसलमान राज्य में प्राप्त आश्रय'[1] नामक ग्रन्थ की रचना करके उन्होंने संस्कृत-परायण महम्मदीय सम्राटों का उल्लेख करके उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है, जिन्होंने अपने राज्य में संस्कृत-कवियों को आश्रय देकर संस्कृत - साहित्य को संवर्धित किया।

'संस्कृत - साहित्य को मुसलमान राज्य में प्राप्त आश्रय' प्रथम भाग में यतीन्द्र ने पंडितराज जगन्नाथ द्वारा रचित 'आसफ - विलास - आख्यायिका' के मूलग्रन्थ के साथ उसका अनुवाद करते हुये सम्पादन किया है। इस ग्रन्थ में उन्होंने क्रम से उन महम्मदीय सम्राटों के नाम और उनके द्वारा किये गये संस्कृत के अभ्युदय संबधी कार्यों का वर्णन किया है, जिन्होंने अपने राज्य में संस्कृत - कवियों को आश्रय दिया।[2] 'संस्कृत - साहित्य को मुसलमान राज्य में प्राप्त आश्रय' में यतीन्द्र ने श्रीकृष्णदेवज्ञ कृत 'जातक-पद्धत्युदाहरणम्' का सम्पादन किया है। यह ज्योतिष ग्रन्थ है। इसमें मुसलमान राजा, राजकुमारों तथा समृद्ध लोगों के द्वारा संस्कृत भाषा में फलित तथा गणित ज्योतिष साहित्य के विकास के लिये किये गये प्रयत्नों का उल्लेख है। अब्दुर्रहीम खानखाना ने फलित ज्योतिष तथा गणित ज्योतिष के साहित्य की वृद्धि करने के लिये जिन-जिन ग्रन्थों की रचना की तथा जिन कवियों को उसने इन ग्रन्थों का निर्माण करने के लिये आश्रय दिया, उन सभी का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक मे मिलता है।

---

1. Muslim Patronage to Sanskrit Learning.
2. Muslim Patronage to Sanskrit Learning के तीनों भागों को हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण समझकर संयुक्त बंगाल की सरकार ने इसकी कई प्रतियां खरीदकर सम्पूर्ण भारत तथा विदेशों में वितरित कीं। भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने इस ग्रन्थ की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का आधा व्यय भारत सरकार ने वहन किया।

फलित तथा गणित ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ संस्कृत भाषासाहित्य में बहुत अधिक नहीं हैं। अतएव यतीन्द्र ने इसका सम्पादन करके संस्कृत में फलित तथा गणित ज्योतिष साहित्य को प्रकाश में ला दिया।[१] 'संस्कृत-साहित्य को मुसलमान राज्य में प्राप्त आश्रय' तृतीय भाग में यतीन्द्र ने रुद्र कवि और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है। रुद्र कवि यद्यपि राणा प्रतापसिंह के राजकवि थे, किन्तु उन्होंने मुसलमान सम्राटों, राजकुमारों तथा सम्मानित पुरुषों की स्तुति में अनेक मनोरंजक ग्रन्थ लिखे हैं। अब्दुर्रहीम खानखाना के जीवन चरित पर उन्होंने खानखाना-चरित लिखा है। 'संस्कृत साहित्य को मुसलमान राज्य में प्राप्त आश्रय' तृतीय भाग में लेखक ने उन सभी मुसलमान शासकों, राजकुमारों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों के प्रयत्नों का उल्लेख किया है, जिन्होंने संस्कृत रचनाकारों को आश्रय देकर संस्कृत साहित्य को संवर्धित किया।[२] 'संस्कृत-साहित्य को मुसलमान राज्य में प्राप्त आश्रय' नामक ग्रन्थ की तीन भागों में रचना करके यतीन्द्र ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को प्रतिपादित किया है। अपने मत की पुष्टि करते हुये उन्होंने लिखा है कि मुहम्मद शाह, अर्ब्दुरहीम खानखाना, दाराशिकोह आदि प्रसिद्ध सस्कृत साहित्यकार हुये, जिन्होंने स्वयं संस्कृत भाषा में रचनायें कीं और संस्कृत साहित्यकारों को राज्याश्रय भी दिया। इनके अतिरिक्त संस्कृत साहित्यकारों को राज्याश्रय देने वाले सम्राटों में शेरशाह, निजामशाह, अकबर, शाहजहाँ, शाहाबुद्दीन, बुरहान खां तथा शायस्ता खां के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनके राज्य में संस्कृत-कवि भानुकार, गोविन्द भट्ट (अकबरीय कालिदास) पंडितराज जगन्नाथ, अमृतदत्त, पुण्डरीक बिट्ठल, तथा चतुर्भुज आदि कवि निर्बाधगति से संस्कृत-साहित्य का सर्जन करते रहे।

यतीन्द्र के इन ग्रन्थों को पढ़कर मुसलमानों को हिन्दुओं के प्रति प्रेम और गौरव उत्पन्न होता है। हिन्दु-मुसलमान-संस्कृत साहित्यकारों तथा सम्राटों के प्रति श्रद्धानत होते हैं। इन ग्रन्थों से हिन्दु-मुसलमानों का

---

१. इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियां सम्पादक ने 'भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुना, 'ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट लायब्रेरी' बड़ौदा और ओरियण्टल मैन्सक्रिप्ट्स लायब्रेरी' मद्रास से प्राप्त की थीं।

२. रुद्र कवि कृत रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियां डा० चौधुरी ने इण्डिया आफिस लाइब्रेरी लन्दन से प्राप्त कीं।

पारस्परिक त्रिद्वेष छोड़कर एक साथ मिलकर रहने की प्रेरणा मिलती है। आधुनिक युग में जब साम्प्रदायिकता का बोल-बाला है, ये ग्रन्थ राष्ट्र के लिये हानिकर साम्प्रदायिकता की भावना को दूर करने में सहायक हैं। स्मृति-साहित्य में बंगाल का योगदान दर्शित करते हुये यतीन्द्र ने सन् १९४०-४५ ई० तक 'स्मृति-सहित्य में बंगाल का योग दान'[1] नामक शोध-प्रबन्ध को तीन भागों में रचना की। इसके अन्तर्गत उन्होंने शूलपाणि कृत 'सम्बन्ध-विवेक' रघुनंदन भट्टाचार्य कृत 'शान्तितत्त्व' का सम्पादन किया है तथा मूल-ग्रन्थ के साथ-साथ भूमिका, आंग्ल भाषा में अनुवाद तथा समालोचनात्मक टिप्पणी भी दी हैं। तिथि-विवेक के प्रारम्भ में उन्होने आचार्य चूडामणि कृत व्याख्या भी दी है। यतीन्द्र ने 'संस्कृत-कोष-काव्य-संग्रह' नामक शोधग्रन्थ की चार भागों में रचना की। इसमें उन्होंने हरिभास्कर कृत 'पद्यामृत-तरंगिणी', वेणीदत्त द्वारा रचित 'पद्यवेणी' सुन्दरदेव द्वारा विरचित 'सूक्ति सुन्दर' तथा गोविन्दजित कृत सम्यालंकरण का संकलन किया है। इन चारों ग्रन्थों के आरम्भ में उन्होंने आंग्ल भाषा में कवि का परिचय भूमिका तथा ग्रन्थ की समालोचना दी है। संस्कृत-कोष-काव्य-संग्रह की रचना करने में यतीन्द्र का उद्देश्य ३०० वर्ष पूर्व सस्कृत की अवस्था का परिचय देना है। इसको पढ़ने से ज्ञात होता है कि उस समय भी हमारे देश में कितने बड़े-बड़े कवि हुये। साथ ही मुसलमान राज्यकाल में मुसलमान सम्राटो ने संस्कृत को जो प्रोत्साहन दिया, उसका भी यतीन्द्र ने सन् १९४०-५० ई० तक 'संस्कृतदूतकाव्यसंग्रह' सात भागों में लिखा। इसमें रुद्रन्यानपंचानन कृत भ्रमरदूतकाव्य, वीरेश्वर द्वारा रचित 'वांगमण्डन-गुणदूतकाव्य' जम्बू कवि कृत चन्द्रदूत काव्य, वामनट्ट वाण विरचित हंसदूत काव्य, भोलानाथ कृत पान्थदूत काव्य घटखर्पर कवि द्वारा रचित 'घटखर्परयमककाव्य' तथा श्रीकृष्णसार्वभौम कृत 'पदांकदूत काव्य' का संकलन किया है। उन्होंने इन सभी ग्रन्थों को आंग्ल भाषा में भूमिका, कठिन शब्दों की व्याख्या तथा आलोचनात्मक टिप्पणी दी हैं। यतीन्द्र ने भ्रमरदूतकाव्य के साथ मेघदूत की समानता दिखलाई है। इसकी भाषा और शैली मेघदूत को भाषा-शैली के समान है। इसको पढ़ते-पढ़ते पाठक मेघदूत का स्मरण करने लगता है। इसमें सर्वत्र मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया गया है। इतना सुन्दर काव्य भी संस्कृत प्रेमियों को दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। इस काव्य का सम्पादन करके यतीन्द्र ने

1. Contribution of Bengal to Smrti Literature.

संस्कृत भाषा-भाषियों के प्रति महान् कार्य किया[1]। 'वाङ्मण्डल गुण-दूत काव्य का सम्पादन कर यतीन्द्र ने नवीन दिशा में प्रवृत्त हुये दूतकाव्य को संस्कृत काव्य-जगत् से परिचित कराया। संस्कृत दूत-काव्यों में प्रायः जड या चेतन किसी पदार्थं को दूत बनाकर भेजा गया। किन्तु वाङ्मण्डन-गुण-दूत-काव्य दूत काव्यों की प्रचलित परम्परा से विपरीत नवीन दिशा पर सर्जित हुआ है। इसमें एक कवि ने राज्याश्रय प्राप्त करने के लिये अपनी विशेषतायें दूत के रूप में भीमसेन राजा के पास कहलाई हैं। चन्ददूतकाव्य में पति से विमुक्त प्रिया ने चन्द्र को दूत बनाकर अपने पति के पास सन्देश भेजा है। ऐतिहासिक क्रम तथा आलंकारिक सौन्दर्य की दृष्टि से यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। हंसदूत-काव्य मेघदूत के आदर्श पर लिखा हुआ काव्य है। मेघदूत की कथावस्तु से इसमें केवल दो बातें भिन्न हैं। प्रथम हंसदूत काव्य का यक्ष रामगिरि पर्वत पर निवास न करते हुये दक्षिण भारत के के किसी पर्वत पर निवास करता है। द्वितीय इसमें दूत मेघ न होकर हंस है। भौगोलिक दृष्टि से यह महत्त्व पूर्ण काव्य है। यह भारत की नदी, नहर, पर्वत ग्राम तथा नगरों के विविध चित्र उपस्थित करता है। पान्थदूतकाव्य में गोपियां वृन्दावन से श्रीकृष्ण के पास जाते हुये एक पथिक द्वारा सन्देह भेजती हैं। घटखर्परदूतकाव्य में यमक का चमत्कार विशेष है। यह काव्य मेघदूत के आधार पर लिखा गया है। इसमें पत्नी मेघ को दूत बनाकर पति के पास भेजती है। यही मेघदूत से भिन्नरूप है। पदांक-दूत-काव्य में राधा कृष्ण के पदांक को दूत मानकर उनके पास संदेश भेजती है। यतीन्द्र ने इस ग्रन्थ का सम्पादन भास्वती टीका तथा बंगला अनुवाद के साथ किया है। सन् १९५१ ई० में यतीन्द्र ने बंगीयदूतकाव्येतिहास की रचना की। इसकी रचना करके उन्होंने यह सिद्ध किया है कि कालिदास की समस्त रचनाओं में मेघदूत ने भारतीय जीवन को अधिक प्रभावित किया है। मेघदूत के अनुकरण पर अनेक दूत काव्यों की रचना हुई।

---

1. "This excellent edition of the, भ्रमरदूत, is sure to commend itself to all the lovers of Sanskrit Poetry and particularly, to those who are interested in the contribution of Mediaeval Bengal to Sanskrit Litorature."

Review publiahed in 'The Indian Historical, Quarterly, Vol. XVI, No. 4, Dec., 1940.

बंगीय-दूत-काव्येतिहास के अध्ययन से बंगोय साहित्यकारों का दूत-काव्य के साहित्य में विशेष योगदान ज्ञात होता है। इस ग्रन्थ में लेखक ने घोयी कवि कृत पवनदूत; विष्णुदास कृत मनोदूत, रामरामशर्म कृत मनोदूत, माधवकवीन्द भट्टाचार्य कृत उद्धवदूत, रूपगोस्वामि कृत उद्धव सन्देश, रूपस्वामि कृत हंसदूत रूद्रन्यायवाचस्पति कृत भ्रमरदूत, पिकदूत श्रीकृष्ण सार्वभौम द्वारा रचित पदांकदूत श्रीकृष्णतर्कालंकार कृत चन्द्रदूत लम्बोदर वैद्य कृत गोपीदूत, त्रिलोचन कृत तुलसीदूत, बैद्यनाथद्विज कृत तुलसीदूत, हरिदास रचित कोकिलदूत, सिद्धनाथ विद्यावागीश कृत पद्दूमत, कृष्णनाथ न्यायपंचानन कृत वातदूत, भोलानाथ कृत पान्थदूत, रामदयाल-तर्करत्न रचित पपिकदूत, गौरगोपाल रचित काकदूत, गोपेन्द्रनाथ स्वामी कृत पादपदूत, त्रैलोक्यमोहन द्वारा रचित मेघ दौत्यम्, कालीप्रसाद कृत भक्तिदूत, रामगोपाल कृत कीरदूत, अजितनाथ न्यायरत्न द्वारा रचित वकदूत, रघुनाथदास कृत हंसदूत काव्यों का वर्णन किया है।

यतीन्द्र ने इन दूतकाव्यों के अतिरिक्त कालिदास कृत मेघदूत का भरतमल्लिक की सुबोघ टीका देते हुये सम्पादन किया है। विद्वानों की यह एकमत घारणा है कि मेघदूत की १३ टीकाओ में से भरतमल्लिक की सुबोघ टीका सर्वोत्तम है। फिर भीं संस्कृताचार्यो का घ्यान इस ओर आकृष्ट नहीं हुआ था, यतीन्द्र स्वसम्पादित पुस्तक में भरतमल्लिक तथा मल्लिनाथ की टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके उसकी विशेषताओं का उल्लेख किया है[1]। जिन शब्दों पर दोनों टीकाकारों के मत समान

1. "From a comparative study of the commentaries of Mallinath and Bharata Mallika, one cannot but arrive at the conclusion that Bharata Mallika's commentary is more informative, instructive and exhaustive than Mallinatha's, Mallinath seldom explains variant readings and does not furnish many alternative explanations given by Bharata mallik. Even a single particle of the Magha-duta has not escaped the attention of the latter. His copious quotations from the rhetorical and Lexicographical works in particular throw open a flood of light not visualized by anybody else before. In short, Bharat Mallika's is by far the best of all the commentaries on the Meghaduta." From — Introduction — Meghduta, J. B. C.

नहीं हैं, उन शब्दों को लिखकर उनकी व्याख्या करते हुये यतीन्द्र ने उनपर अपना मत दिया है।

सम्पादित ग्रन्थ की भूमिका में यतीन्द्र ने मेघदूत की कथा संक्षेप में लिखकर उसकी लोक-प्रियता के कारण दिये हैं। मेघदूत में आये हुये विभिन्न स्थान जैसे विन्ध्यगिरि, माल, चित्रकूट, आम्रकूट, रेवा, दशार्ण; विदिशा, वेत्रगन्धवती, गम्भीरा, देवगिरि, चमण्वती, दशपुरनगर, ब्रह्मावत, सरस्वतादेवी, कनखल, क्रौंचरन्ध्र, कैलास, मानस तथा अलका आदि के सम्बन्ध में व्याख्यात्मक भौगोलिक टिप्पणीं दी हैं। जिन स्थानों का पौराणिक और ऐतिहासिक महत्त्व है, उनपर तत्ससम्बन्धो कथायें दी हैं। मेघदूत की अन्य टीकाओं में उल्लिखित अधिक श्लोकों का विवरण भी उन्होंने दिया है।

'वंगीयदूतकाव्येतिहास' की रचना के साथ-साथ यतीन्द्र का ध्यान संस्कृत के ऐतिहासिक महाकाव्यों के सम्पादन की ओर गया। उन्होंने सन् १९४६-५६ ई० तक ऐतिहासिक महाकाव्यों का चार भागों में सम्पादन किया। इनके अन्तर्गत उन्होंने लक्ष्मीपति कृत अब्दुल्ला-चरित, गौड चन्द्रशेखर कृत सुरजन-चरित, पद्मनाथ कृत वोरभद्रचम्पू तथा वाणीनाथ द्वारा चरित जामविजयकाव्य का संकलन किया। इन ग्रन्थों के सम्पादन में यतीन्द्र ने कई संशोधन किये हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में अंग्रेजी तथा संस्कृत में भूमिका दी गई है। कठिन शब्दों की व्याख्या दी गई है। आवश्यक स्थलों पर टिप्पणीं दी गई हैं।

ऐतिहासिक महाकाव्यों के अतिरिक्त यतीन्द्र ने राजा जगच्चन्द्र के राजकवि लक्ष्मीपति द्वारा रचित नृपति-नीति-गर्भित-वृत्त श्रीकृष्ण भट्ट कृत ईश्वरविलास काव्य, वैद्यनाथ मैथिल कृत 'तारा-चन्द्रोदय काव्य, हरिकवि कृत शम्भुराज चरित, पंडितराज जगन्नाथ कृत रामचन्द्र यशः प्रबन्ध अमरेश्वरशर्म-कृत धूर्तविडम्बना तथा राघव वाचस्पति भट्टाचार्य विरचित भूपशतक आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों का सम्पादन किया। ग्रन्थों के सम्पादन में उन्होंने सर्वत्र वैज्ञानिक प्रणाली को अपनाया है।

इस प्रकार यतीन्द्र ने संस्कृत ने ग्रान्थों की साहित्यिक समालोचना के क्षेत्र को विकसित किया।

---

# सांस्कृतिक चेतना

# अनुसंधान-प्रवृत्तियां

यतीन्द्र के नाटक सांस्कृतिक चेतना से निर्भर हैं। समाज को उन्नतिशील बनाने के लिये जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उनका विशद चित्रण इनके नाटकों में मिलता है। यतीन्द्र के नाटकों में नारी-गौरव, देश-प्रेम, और विश्व-प्रेम का सन्देश मिलता है तथा साम्प्रदायिकता, छूआछूत, जातिप्रथा आदि कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है, जिनसे समाज का सांस्कृतिक स्तर गिरता है और वह अधःपतन की ओर प्रवृत्त होने लगता है।

## नारी-गौरव

यतीन्द्र मातृशक्ति के भक्त थे। जननी के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। श्री श्री मातृलीला तत्त्व में उन्होंने मातृदेवत्व का स्पष्ट परिचय दिया हैं। इस गीत-संग्रह में उन्होंने दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, वंग-जननी, भारत-जननी आदि की उपासना में इनका गौरव गान करते हुये अनेक गीत लिखे हैं। इसके अतिरिक्त इनके सभी नाटकों में नारी-महिमा का वर्णन है। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः की उक्ति के अनुसार इनके सभी नाटकों में सन्देश मिलता है कि नारी की पूजा से देश का उत्थान होता नारी की पूजा विश्व में श्रेष्ठतम पूजा है। समाज को समृद्ध बनाने के लिये नारियों को उचित स्थान प्रदान करना चाहिये।

## जननी

यतीन्द्र के नाटकों से हमें यह सन्देश मिलता है कि जननी और जन्मभूमि की उपासना करना मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य है। जननी को संसार-सागर से पार कराने वाली, भव-तारिणी, मनुष्यों के दुखों को दूर करने वाली मोक्ष-दायिनी ममता और करुणा की मूर्ति, शान्ति प्रदान करने वाली और अकारण कृपा करने वाली कहा गया है[1]। पिता की अपेक्षा मां

---

१. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ४

सहस्त्रगुनी श्रेष्ठ है। सन्तान अन्धी, कानी, लंगड़ो कैसी भी क्यों न हो, पर माता का प्रेम एक-सा रहता है[१]। मातृ शब्द की व्याख्या करते हुये लिखा है कि मां शब्द अमृतसागर को उत्पन्न करने वाला है।[१] यह शब्द अतुलनीय है। मां अक्षर कल्मष दहन करने वाला है[१]। और 'तृ' अक्षर भवसागर से पार कराने वाला है माता के मन की महत्ता प्रतिपादित करते हुये अथर्वा ऋषि कहते हैं कि मां का मन निरन्तर सन्तान के हित की कामना करता है। माता का हृदय अनुपम स्नेह से पूर्ण और विश्व का हित करने वाला होता है[२]। जननी के विषय में कहा गया है कि मनुष्य-सृष्टि में प्राणी श्रेष्ठ हैं, उनमें भी मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में भी नारी श्रेष्ठ हैं और नारी में भी मातायें श्रेष्ठ हैं[३]। माता का हृदय नवनीत के समान कोमल होता है। वह अतुलनीय है। वह माया, ममता और आदर का पारावार और ससार के सभी स्नेह का निष्कर्ष है[४]। भारतीय धर्मशास्त्रों में माता की तुलना नहीं है। वह सभी धर्मों के ऊपर स्थित है[५]। माता शब्द की व्याख्या करते हुये राम-कृष्ण कहते हैं।

मधुरतमं, कोमलतम, स्निग्धतमं, शीतलतम, पवित्रतमं नाम माता[६]। माता ही आदिशक्ति है। वह आनन्दरस से परिपूर्ण है। उसी के आनंद तथा माधुर्य से जगत् मधुर है[७]। मां से बढ़कर कोई गुरु नहीं है[८]। राम-कृष्ण परमहंस कहते हैं–

किमिह मधुरमास्ते मातृनाम्नो धरायां
किमिह च कमनीयं वर्तते मातृचित्तात्।

मां परम तप, ध्यान, ज्ञान, तथा मोक्ष है। मां की गोद में बालक स्वर्ग-सुख का अनुभव करता है[९]। पितृहीन बालक किसी प्रकार जीवनयापन

---

२. भारत-विवेकम् पृष्ठ ४१

१-२. भारत-विवेकम्, पृष्ठ ४१, मेंम्लनतीर्थ-भारतम्, ५

३-४. निष्किंचन-यशोधरम्,, ४, ,, ,, ५५

५-६. ,, ,, ६९ शक्ति-सारदम् ,, २

७-८. ,, ,, ४१ भक्ति-विष्णुप्रियम्,, २

९-१०. शक्ति-सारदम् ,,४१ भक्ति-विष्णुप्रियम्,, २

कर लेता हैं। माता से रहित होने पर वह प्राण और धन सभी से वंचित हो जाता है[१]। जिसकी मां नहीं होती, उसके लिये सारा संसार सूना हो जाता है। जगत् अरण्य के समान हो जाता है। जननीमय जीवन ही धन्य जीवन है[२]। मां का स्नेह पाकर अरण्य में घर जैसा आनन्द आता है[३] मां संसार के सभी प्राणियों के लिये मंगल-कामना करती है। वह सन्तान को अनुपम स्नेह प्रदान करती है। विश्वमाता ही जननी का रूप धारण करके इस संसार में विचरण करती है[४]। सन्तान के द्वारा किये गये दुष्कर्मों को धोने के लिये जननी निरन्तर अश्रुपात करती है[५]।

## नारी

यतीन्द्र के नाटकों में जननी-महिमा के साथ-साथ नारी-महिमा भी अपूर्व बताई गई है। सभी नारियां विश्वमाता का एक अंश हैं। अतः उसी के समान पूज्य हैं[६]। नारी विधाता की अपूर्व सृष्टि है[७]। सभी देवताओं ने मिलकर पुण्यों का समुच्चय करके रत्न के समान नारी के चित्र को बनाया। नारी ममता की मूर्ति है, सौम्य है। वह पीयूषवाहिनी है और पापों का क्षालन करने वाली गंगा की धारा के समान पावन है[८]। नारी के चित्त के विषय में कहा गया है कि वह सरस और मधुर है। उसके गाम्भीर्य को थाह कोई नहीं पा सकता[९]। नारियों के कारण हमारी सभ्यता स्थिर है[१०]। धर्म के संरक्षण में नारियां तत्पर होती हैं[११]। नारियों के ऊपर अत्याचार होने से देश का अधःपतन होता है[१२]। गांधी जी का कथन है कि स्वाधीनता प्राप्ति में नारियाँ पुरुषों से अधिक प्रशंसा का पात्र हैं। अहिंसा के कार्यों में उनका सहयोग महान् फल देने वाला है। नारियों में आत्मसमर्पण की भावना अनुपम है। समयानुसार और यथाविधि कार्य करने में नारियां दक्ष हैं[१३]। नारी के आंसू अग्नि होकर देश को भस्म कर सकते हैं।[१४]

---

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | भक्ति-विष्णु प्रियम्, | पृष्ठ ६ | २. | भास्करोदयम् | पृष्ठ ३३ |
| ३. | निष्किंचन-यशोधरम् | ,, ७ | ४. | भारत-जनकम् | ,, ८ |
| ५. | आनन्द-राधम् | ,, १९ | ६. | विमल-यतीन्द्रम् | ,, २३ |
| ७. | भास्करोदयम् | ,, ५५ | ८. | भास्करोदयम् | ,, ५५ |
| ९. | दीनदास-रघुनथम् | ,, ३४ | १०. | निष्किंचन-यशोधरम् | ,, ४ |
| ११. | निष्किंचन-यशोधरम् | ,, ७० | १२. | भारत-जनकम् | ,, ३३ |
| १३. | भारत जनकम्, | पृष्ठ ४५ | १४. | भारत-जनकम् | पृष्ठ ४६ |

सम्राट् अशोक की मान्यता है कि सभी धर्म नारी के द्वारा पोषित होते हैं। नारी के अनुरंजन बिना धर्म तथा देश की श्रीवृद्धि नहीं हो सकती[१]।

पुरुष अपराध करता है। नारी उसकी रक्षा करती है। पुरुष किसी कार्य को करने का विचार करता है, नारी उसको सार्थक रूप प्रदान करती है। पुरुष मार्ग पर कांटों से बचता हुआ चलता है किन्तु नारी मार्ग के कण्ठकों को दूर करती हुई चलती है। पुरुष युद्ध का आह्वान करता है, नारी सेवाधर्म से विजय प्राप्त करती है पुरुष संघर्ष के द्वारा मनुष्यों का वश में करना चाहता है, नारी स्नेह, ममता और माधुर्य के रस से विश्व को वश में करती है[२]।

नारी के अश्रु बाहुल्य का कारण बतलाते हुये लिखा गया है कि प्रत्येक प्रत्येक युग में नारी पुरुष के अश्रुओं को पोंछती है। इसी कारण पुरुषों के नेत्रों में आंसू स्वल्प और नारियों के नेत्रों में आंसुओं का बाहुल्य होता है[३]। नारी का कोमल हृदय अवसर आने पर शिला बन जाता है। शिला टूट सकती है, किन्तु नारी का हृदय उससे भी दृढ़ है[४]। नारी को कुल, समाज तथा विश्व का परम आभूषण माना गया है। नारी ही संसार में शान्ति, दान्ति; क्षान्ति, लावण्य, माधुर्य और सौष्ठव से पूर्ण है। पुरुष के गुणहीन तथा पतित होने पर व्यक्तिविशेष का ही ध्वंस होता है, परन्तु नारी के गुणहीन और पतित होने पर देश का अधःपतन हो जाता है। नारी का अधोगमन देश की पराधीनता और आत्मद्रोह का प्रबल कारण है[५]।

यतीन्द्र के नाटकों में नारियों को केवल घर की चतुर्भित्ति तक ही सीमित नहीं बतलाया गया गया है। उनकों समाज तथा देश कीं रक्षा करने वाली घोषित किया गया है।[६] भारत-लक्ष्मीः नाटक की रचना से नाटककार ने यह सिद्ध कर दिया कि नारी अबला नहीं है अपितु आवश्यकता पड़ने पर वह चण्डी का विकराल रूप धारण करती है।

---

१. मेलनतीर्थ-भारतम्,, १९
२. निष्किंचन-यशोधरम् ७१
३. आनन्द-राघम् ,, १९
४. ,, ,, ५०
५. प्रीति-विष्णु,, १६१
६. भारत-लक्ष्मी :, पृष्ठ ४७

नारी गौरवात्मक नाटकों के अन्तर्गत यतीन्द्र ने निष्किंचनयशोधरम्,' "शक्ति-सारदम्", मुक्ति-सारदम्, प्रीति-विष्णुप्रियम्, "भक्ति-विष्णुप्रियम्"; "अमर-मीरम्, भारत-लक्ष्मीः, आनन्द-राधम्", रुदित-राधम्[१], घृति-सीतम्[१] आदि नाटकों की रचना इनकी रचना में नाटककार का यह उद्देश्य था कि मनुष्य नारी को महत्ता को समझकर, उसका सम्मान करे और उसको समाज में उचित पद दे। तभी समाज का, देश का और विश्व का कल्याण हो सकता है। अन्यथा मानवता का विनाश है।

संस्कृत-साहित्य में नारियों का योग दान सप्तभागात्मक ग्रन्थ की रचना करने में भी यतीन्द्र का लक्ष्य साहित्यिक समाज में नारियों का उचित स्थान निर्धारित करना था।

इस प्रकार यतीन्द्र ने राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक सभी क्षेत्र में स्त्रियों की महिमा-प्रतिष्ठित की है और सभी मनुष्यों को नारी का सम्मान करने की प्रेरणा और उपदेश दिया है।

## देश-प्रेम

यतीन्द्र मातृभूमि के उपासक हैं। भारत के कण-कण से उन्हें स्नेह है। उन्होंने अपने नाटकों में यह घोषणा की है कि देश-प्रेम और भगवत्प्रेम एक ही मुद्रा के दो पहलू हैं[२]। देश-प्रेम ही श्रेष्ठ धर्म है[३]। महिममय-भारतम् के नान्दी पाठ में की गई भारत की वन्दना में कवि का देशानुराग प्रकट होता है। इसमें भारत को ज्योति में रत संस्कृति से सुसज्जित और देवताओं से पूजित बताकर भारत का गुणगान किया गया है[४]। मंजुलादेवी के कथन में भारत के अभ्युदय, उसके विपुल गौरव और स्थिर यश की कामना की गई है[५]। मेलनतीर्थ भारतम् में नान्दीपाठ में भारत का गौरव गान किया गया है —

---

१. रुदित-राधम् और घृति-सीतम् नाटक उपलब्ध नहीं हैं और न ही इनकी हस्तलिखित प्रतियां प्राप्य हैं।

२. भारत-हृदयारविन्दम्, पृष्ठ ३

३. " " ११

४. महिममय-भारतम् पृष्ठ १

५. " " १५

विश्वे शाश्वतसूत्रधारपदवीमाधाय यो बालवन्-
नित्यं स्वप्रतिबिम्बकैरिव नरैः क्रीडत्यमुं सन्नुमः
आसीद् यस्य निराकुलं गुरुकुलं शिक्षार्थमाविशते-
र्वर्षाणां परतस्तु संयमधनः पुण्यो गृहस्थाश्रमः ।
यस्यासन् वनभूमयो बहुमता वार्धक्यकालोचिता-
स्तज्जीयाद् भरतस्य वर्षमतुलं ज्ञानोज्ज्वलं त्वंदशम्[1] ।।

यतीन्द्र के नाटकों में भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य, भारत की संस्कृति, भारतवासियों की देशभक्ति, प्रेम और श्रद्धा का विशद वर्णन मिलता है।

## प्राकृतिक सौन्दर्य

यतीन्द्र के नाटकों में भारतजननी तथा उसके वन, नदी, लता, पर्वत, वृक्ष आदि सभी की प्रशंसा की गई है। अथर्वा ऋषि का कथन है कि भारत वर्ष के नैसर्गिक सौन्दर्य ने विदेशियों को आकर्षित किया[2]। वे भारत में आकर बस गये[3]। अथर्वा कहते हैं कि हमारा देश अपूर्व श्रीसम्पन्न है। जहाँ-जहाँ दृष्टि डालते हैं, वहां-वहां पर ही श्री दृष्टिगोचर होती है। यहां ऊंचे-ऊंचे पर्वत, अगाध जल से पूर्ण सागर, सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओं से युक्त गहन अरण्य और शोभा-सम्पन्न बड़े-बड़े नगर हैं। दिगन्तवाहिनी नदियां माता के समान पयप्रदान करके देश की सन्तान को संवर्धित कर रही हैं[3]। अथर्वा की पत्नी का कथन है कि यहां की न केवल नदियां, पर्वत आदि महान् हैं, प्रत्युत प्रत्येक धूलिकण ही महामाहात्म्य से पूर्ण है।

तज्जनीत देशस्य न केवलं नद्यः, न केवलं हिमाचल-विन्ध्याचल-नीलाचलाद्याः पर्वतश्रेष्ठा न च केवलं महान्ति सरांसि, परन्तु प्रतिधूलिकणमेवास्य वर्तते महामाहात्म्यसंपुष्टा भगवदाशीर्जुष्टा पुण्यविजृम्भिता स्वस्वगोष्ठी गरिष्ठता।[4]

लोपामुद्रा कहती हैं कि भारतजननी अनुपम रूप सम्पन्न है, हिमालय जिसके माथे के मुकुट के समान सुशोभित हो रहा है, विन्ध्याचल जिसकी मेखला है, समुद्र कोटि ऊर्मिमाला से जिसके पैर धोता है। शतशत जनपदों और नगरों में विभक्त भारतभूमि सतत पुण्य और आनन्द प्रदान करने वाली है। वह किसी के लिये दुःख या उद्वेग का कारण नहीं है। नित्य

१. मेलनतीर्थ-भारा ,, १–प्रथमाङ्क १–२
२-४. ,, ,, ४–७

ही विश्ववासियों का हित करती हुई यह भारतभूमिरिव सम्पूर्ण जगत् के ब्रह्ममन्दिर के रूप में सुशोभित हो रही है । यह निखिलविश्व का योगसूत्र है और शाश्वत मंगलदायिनी है[१] । भारत के उत्तर में प्रहरी के समान स्थित हिमालय भारत की स्निग्धा उज्जवल प्रकृति अविच्छिन्न गति से बहती हुई नदियां; ताल की पक्तियों से सुशोभित सागर सब भारत मां की विजय का घोष करते है[२] । चन्द्र बोस सुभाषसुभाषम् नाटक के भरतवाक्य में भारत की स्वातन्त्रच और उसकी समृद्धि तथा भारतम् के शस्यश्यामल होने की कामना करते हैं[३] । विवेकानन्द कहते हैं कि इंग्लैंड आने के पूर्व मेरी भारतवर्ष से भक्ति और प्रीति थी और इंग्लैंड़ त्याग से पूर्व भारतवर्ष के धूलिकणों में भी मेरी पवित्रता की बुद्धि हो गई है । भारत की वायु मुझे पावित्रच से परिपूर्ण प्रतीत होती है । भारतवर्ष मेरे लिये अब तीर्थ हो गया है ।

भारतत्यागात् प्राग् ममासीद् भारतवर्ष प्रति भक्तिः प्रीतिश्च । इंगलैंडत्यागात् प्राक्पुनर्जाता भारतवर्षस्य घूलिकणेष्वपि पवित्रता-बुद्धिः । भारतस्य स्मरणीय मम प्रतिभाति पावित्रय-परिपूणः । भारतवर्षं मम तीर्थ-भूमिः साम्प्रतम्[४] ।

## संस्कृति

यतीन्द्र के नाटकों में यह घोषणा की गई है कि भारत की संस्कृति विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति है । सर्वप्रथम भारत में ही सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ । वैदिक काल से अभी तक अनेक देशों की संस्कृतियाँ यहां आईं और वे परस्पर मिल गईं । हिन्दु-मुस्लिम-सिख-ईसाई आदि विभिन्न धर्मावल-म्बियों को भारत-भू ने अपनी क्रोड़ में निर्विशेष भाव से पाला । सृष्टि के आरम्भ से भारत सभी संस्कृतियों का महामेलन क्षेत्र रहा है[५] ।

आसृष्टेर्महामेलनक्षेत्रमिदं यत् सत्यं कदापि न कमपि तत्याज; शरणा-पन्नं पर सर्वथा वासयामास स्वविशालवक्षः पञ्जरे । आयाता भारतेवर्षे-ऽस्मिन्ननार्याः ततश्च शकहूणपारसीकादयः । कदा नु के त्यक्ताः ? समायाता

१-२. मेलनतीर्थ—भारतम्, १२—५७

३. सुभाषसुभाषम् ,, २४ (हस्तलिखित प्रति)

४. श्रीश्रीविवेकानन्दम्—चरितम् पृष्ठ ९९—१००

५. मेलनतीर्थ—भारतम् पृष्ठ १२, २०

भूयश्च देशेऽस्माकं महम्मदीयाः। तेषामर्थें वा का चिन्ता ? सत्यानुसन्धान-तत्परं मानवचैतः[१]।

विभिन्नता के मध्य एकता विचित्रता के मध्य एकरूपता ही भारतवर्ष का अन्तर्निहित धर्म है। ऐक्य-सम्पादन भारतवर्ष का प्रधानतम कार्य है। भारतवर्ष कदापि किसी को दूर करना नही चाहता। एक दिन भारतवर्ष ही जगत् के समक्ष सभी को प्रधान प्रतिष्ठा की उपलब्धि के लिये सबके ग्रहण करने योग्य मार्ग दिखलायेगा[२]।

नेहरू कहते हैं कि मैं भारतवर्ष को और भारत के जनगण को जानता हूँ। मुझे आत्मविश्वास है कि संसार की कोई भी शक्ति भारत को पराजित करने में समर्थ नहीं होगी—

"अहं जानाभि भारतवर्षं, भारतस्य जनगणञ्च। निःसन्दिग्धात्म-प्रत्ययेन ध्रुवं विश्वसिमि किल जगतः काऽपि शक्तिर्न भारतं पराजेतुं शक्ष्यतीति। बृहत्तराष्ट्रद्वयसम्मिलितशक्तिस्तयोराणविकमारणास्त्रस्य ध्वंसकारिताऽपि वा न भारतवर्षस्यात्मसमर्पणं विधास्यते[३]।

अनेक आसुरो शक्तियों ने लूटमार करने वाले आक्रमणकारियों ने भारत को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया। भारतवासियों ने प्राणोत्सर्ग करके इसकी रक्षा की। विदेशियों ने इसकी संस्कृति को नष्ट करना चाहा, किन्तु वह अक्षुण्ण रही[४]।

भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता को घोषित करता हुआ वामन अगस्त्य ऋषि से कहता है—

भगवन्! या कृष्टिर्विश्वामित्रप्रभृतिभिः संप्रसारितार्या वर्तभूभागे सैव सम्प्रसारिता न केवलं निखिले दाक्षिणात्यभूभागे, परन्तु द्वीपमय-भारतसागर-मण्डलेष्वपि भवतैवास्माकं गुरुवर्येणेत्यतोऽधिक किं न स्याद् गौरवकारणम्? अद्य वयं दाक्षिणात्यास्तत्र प्राणाप्रशिष्यास्तारस्वरं प्रोद्घोषयामो यद् बहुभाषामयस्य देशस्य शाश्वतभाषा भविष्यति देवभाषा प्रतिमानवहृदयं भविष्यति भागवतमन्दिरं नारीमात्रं भविष्यति निजजननी आत्मचरित्रोत्कर्षो भविष्यति जीवनस्य मूललक्ष्यं विश्वसेवा च भविष्यति

---

१-३, मेकनतीर्थ—भारतम्, पृष्ठ २०, ४०, ६१
४. भारतलक्ष्मी पृष्ठ १

जीवनस्य चरमसार्थक्यम् । सर्वो भेदो यास्यति चिराय लोपम्[1] ।

अरविन्द भारतमाता को विश्व का कल्याण करनेवाली एकमात्र शक्ति मानते हैं[2] । भारत-भूमि को परतंत्रता के पाश से जकड़ी देखकर अरविन्द का हृदय विदीर्ण हो जाता है। वे आर्त स्वर में कहते हैं कि विज्ञान, धर्म दर्शन और कला की श्रेष्ठ उपलब्धियों से सम्पन्न भारत आज पराधीनता की बेड़ी में निगडित है। वे भारत को स्वाधीन करने के तथा भारत माता के अश्रुओं को पोंछने की प्रतिज्ञा करते हैं[3] । वे केम्ब्रिज में लोट्स-डेगर नाम की समिति की स्थापना करके भारत को स्वतंत्र कराने का व्रत लेकर अन्य भारतवासियों को भी व्रत लेने के लिये प्रेरित करते हैं।[4] भारत आकर वे अपने भाई वारीन्द्र को मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये अग्नि-साक्षिक शपथ ग्रहण कराते हैं[5] । अरविंद के अनुसार देशप्रेम की भावना से वासित मनुष्यों का ही जीवन सार्थक है[6] । अरविन्द की बहिन सरोजिनी भी पराधीनता को दूर करने का प्रयत्न करती है[7] भास्करोदयम् नाटक में सभी पात्र मिलकर पुण्यवान्, रत्नों की खान, भारत का यशोगान करते हैं[8] । मनमोहन कहता है कि हिमालय की गुहा ध्वनि-प्रतिध्वनि करता हुई भारत को जयकार करती हैं और आकाश भारत के जयनाद से निनादित होता है[9] ।

भारत-जनकम् नाटक में गांधी जी भारत के राजनीतिक स्वातन्त्र्य को आवश्यक समझते हैं। वे भारत को स्वतंत्रा के लिये प्रयत्न करते हैं[10] । भारत की स्वतन्त्रता के लिये वे अनेक बार जेल जाते हैं। वे धैर्य नहीं छोड़ते और अन्त में अपने प्रयत्न में सफल होते हैं। भारत-राजेन्द्रम्, सुभाष-सुभाषम् देशबन्धु-देशप्रियम् नाटकों में क्रमशः राजेन्द्र प्रसाद, सुभाषचन्द्र बोस और देशबन्धु चितरंजनदास का देश के प्रति अनुपम प्रेम का वर्णन किया गया है। ये नेता भारत को स्वतन्त्र कराने की शपथ ग्रहण करते हैं और तन, मन, धन से राष्ट्र की सेवा करते हैं। देश-सेवा के लिये ये अपनी ऊंची-ऊंची नौकरियों को छोड़कर, परिवार के सदस्यों का विरोध सहकर भी जन-सेवा में लग जाते हैं।

१. मेलनतीर्थ—भारतम्, पृष्ठ १२

२-७. भारत-हृदयारविन्दम् पृष्ठ ५, ६, ७, १८, १२,

८. भारत-हृदयारविन्दम्, पृष्ठ १३

९-१०. भास्करोदयम् ३५, ३८

भक्ति-विष्णुप्रियम् नाटक में विष्णुप्रिया कहती हैं कि भारतवर्ष अनुपम है। यहां युग-युग के पाखण्ड का विनाश करने और धर्म की रक्षा करने के लिये भगवान् अवतार लेते हैं[१]। दीनदास-रघुनाथ में स्त्रियों को देश-प्रेम से प्रेरित करती हुई पल्लोवासिनी कहती है कि देश घोर अंधकार से आच्छन्न है। इस अंधकार को दूर करने के लिये अपने व्यक्तित्व का दीपक जलाना चाहिये[२]।

## विश्व-प्रेम

यतीन्द्र वसुधैव कुटुम्बकम की भावना के समर्थक थे। उनके नाटकों में केवल देशप्रेम का सन्देश ही नहीं मिलता, अपितु मनुष्यमात्र को विश्व-के लिये भी सन्देश है। अरविन्द के हृदय में विश्वप्रेम तथा जनहित की भावना है। वे ईश्वर से संसार के सभी प्राणियों के सुखी होने की याचना करते हैं[३]। महात्मा गांधी विश्व को एक कुटुम्ब बनाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते है[४]। अफ्रीका में जुलु जनों के कष्टों को देखकर वे पीडित होते हैं और उनकी सेवा करते हैं[५]। विश्व का कल्याण करने की कामना करते हुये गांधी जी मनुष्यों की हिंसावृत्ति को रोकने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। वे कहते हैं संसार के सभी प्राणी एक समान हैं। भारत में रहने वाले भारतीय और विदेशों मे निवास करने वाले विदेशी सभी भाई-भाई हैं। सभी के शरीरों में एक-सा रक्त बहता है, सभी हाड़-मांस के बने हुये हैं, फिर विद्वेष क्यों[६]? गांधी जी के जीवन का लक्ष्य न केवल भारतवासियों की सेवा करना है, अपितु विश्व के सम्पूर्ण मानवों की सेवा करना है[७]।

गांधी जी कहते हैं कि मेरा कोई शत्रु नहीं है। चाहे वह आंग्ल देशवासी हो या अन्य देश का रहने वाला हो, वह श्वेत हो या काला। मैं सभी के हृदय में भगवान् की पुण्य छवि देखता हूं। सभी मेरे भाई हैं।

---

१. भारत-जनकम् पृष्ठ २४
२. भक्ति-विष्णुप्रियन् ,, १
३. दीनदास-रघुनाथन् ,, ६
४. भारत-हृदयारविन्दम्, पृष्ठ ११
५. भारत-जनकम् ,, १०
६. ,, ,, १०
७. ,, ,, १०

स्त्रियां भी विश्वकल्याण के प्रति प्रत्यनशील हैं। राधा कहती हैं कि पृथ्वी का दुखः भार अवश्य दूर करना चाहिये। कृष्ण जब कंस के पास जाते हैं तब राधा व्याकुल होती हैं किन्तु उनको सन्तोष है कि कृष्ण पापियों को मार कर संसार का दुःख दूर करेगें। इसलिये वे कृष्ण के मार्ग में बाधक नहीं होती हैं[१]। यशोधरा, विष्णुप्रिया, सारदामणि सभी का हृदय विश्व-कल्याण की भावना से परिपूर्ण है। सारदामणि दिवंगत रामकृष्ण से नरेन्द्र के विदेशगमन की अनुमति मांगती है। उनको रामकृष्ण की वाणी सुनाई पड़ती है–

जनताहिताय तस्य विदेशगमनमनुमोदस्व[२]।

रामानुज के गुरु उनको मुक्ति देने वाला रहस्यमन्त्र सिखलाते हैं। गुरु का आदेश है कि उस मंत्र को किसी अन्य को न सिखाया जाये परन्तु रामानुज कहते हैं कि भले ही गुरु रुष्ट हो जायें परन्तु जनकल्याण के लिये मैं वह मंत्र सबको सिखाऊंगा। वे कहते हैं—

'न हि, न हि निश्चितमेवाहं सर्वजनमुक्तये मंत्रमेतं सर्वान् श्रावयिष्यामि—

वरमस्तु तमो गहनो निरयो गुरवोऽभिशपन्तु वरं च रुषा।

न तथापि नृणां तरणैकतरीं बत गोपयितास्मि नृशंस इव ।।११०।।[३]

रामानुज सभी को वह मंत्र सिखलाकर अपने गुरु के क्रोधभाजन बनते हैं।

संसार के कष्टों को देखकर महाप्रभु दुःखी होते हैं। वे कहते हैं कि संसार दुःख से व्याप्त है। वह अज्ञान के अन्धकार से ढका हुआ है। हिंसा और द्वेष से यह संसार मलिन हो रहा है। महाप्रभु भगवान् से शक्ति मांगते हैं, जिससे वे प्राणियों के कष्टों को दूर करने में समर्थ हो सकें[४]। वे विष्णु-प्रिया को संसार के कष्टों को दूर करने का उपदेश देते हैं[५]। सारदामणि संसार में द्रोह-विद्वेष-हिंसा दूर होने की प्रार्थना करती हैं[६]।

स्वामी विवेकानन्द विश्वकल्याण की भावना से धर्म, सत्य और अहिंसा

---

१. आनन्द-राधम् ,, २२४

२. मुक्ति-सारदम् ,, ३१

३. विमल-यतीन्द्रम्, पृष्ठ ५०

४. भक्ति-विष्णुप्रियम्, पृष्ठ ३

५. ,, ,, ७

६. शक्ति-सारदम् ,, ५१

का प्रचार करने के लिए विदेश जाते हैं। उनका कथन है कि सभी प्राणी हिंसा और द्वेष को छोड़कर प्रेम के सूत्र में बंध जायें। विश्वबन्धु की भावना से सार्वलौकिक कल्याण हो सकता है।

'मेलनतीर्थं-भारतम्' के अनुसार अगस्त्य ऋषि, सम्राट् अशोक, अकबर, गुरुनानक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू सभी विश्वमैत्री के लिये प्रयत्नशील हैं। अगस्त्य ऋषि कहते हैं कि मनुष्य, पशु, स्वेदज, और अण्डज सभी मेरे लिये समान हैं। मेरे लिये उनमें कोई भेद नहीं है। मैं सबके लिये हूँ और सब मेरे हैं। सम्पूर्ण विश्व मेरा घर है[1]।

न मेऽस्ति भिन्नो मनुजः पशुर्वा
न स्वेदजो वा न तथाण्डजो वा
अहं हि सर्वं ननु सर्वमप्यहं
सर्वं च विश्वं किल गेहकम् मम[2] ॥१७॥

सम्राट् अशोक कहते हैं कि मेरा राज्य केवल भारतवर्ष में ही नहीं है। मेरा राज्य निखिल जगद्व्यापी है। मानव मात्र मेरे भाई हैं। प्राणिमात्र मेरे स्नेह और ममत्व का स्थान है। सम्पूर्ण विश्व हिंसा से रहित हो–

राज्यं मम न भारतवर्षं सीमाबद्धम्। मम राज्यं निखिलजगद्व्यापि- यत्र वायुर्धावति, अग्निर्ज्योतिर्वितरणं करोति, सूर्याचन्द्रमसौ भातश्च। मानवमात्रं मम भ्रातृस्थानमाधत्तेः; प्राणिमात्रं शाश्वतस्नेहममत्वस्थानम्। हिंसाविनर्जितं भवतु निखिलं विश्वम्[3]।

## जातिभेद और अस्पृश्यता निवारण

यतीन्द्र के नाटकों में जातिगत विषमता से होने वाली सामाजिक क्षति का उल्लेख मिलता है। अपने नाटकों द्वारा नाटककार ने इस कुरीति को दूर करने का प्रयत्न किया है। रामानुज, विवेकानन्द, गांधी आदि इस कुरीति का उन्मूलन करने में प्रयत्नशील बतायें गये हैं।

विमल-यतीन्द्रम् के अनुसार रामानुज भगवान् का कीर्तन कर रहे हैं। उनके कीर्तन को सुनकर एक चण्डाल रमणी प्रसन्न होकर मन्दिर में प्रवेश

---

१. मेलतीर्थं भारतम् ,, ११
२. मेलन-तीर्थं-भारतम् पृष्ठ ११
३. ,, ,, १४

करना चाहती है। रामानुज के भक्तगण उसको रोकते हैं। यह देखकर रामानुज उसको बुलाकर अपने धर्म में आश्रय देते हैं और कहते हैं कि धर्म में प्रवेश करने का सभी को अधिकार है। वे कहते हैं, हरिभक्ति-परायण चण्डाल भी श्रेष्ठ ब्राह्मण है— चण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठो हरिभक्ति-परायणः[१]।

गांधी का कथन है कि पृथ्वी पर पैदा हुये सभी प्राणी एक समान हैं। सभी से प्रेम करना चाहिये अस्पृश्यता ऐसी व्याधि है, जो किसी वैद्य के द्वारा दूर नहीं की जा सकती। जिसके वेग को सहस्रों विद्वानों के वचन मन्द नहीं कर सकते, यदि उस व्याधि को शीघ्र दूर नहीं किया गया तो हिन्दुधर्म का लोप हो जायेगा[२]।

यासावस्पृश्यताधीर्मनसि कृतपदा सर्वदा मानवानाम्।
एषोऽवैद्यापनेयऽप्रसरणचरितो व्याधिरेको दुरन्तः।
मन्दीकर्तुं न शक्यो बुधवचनशतैरप्यहो यस्य वेगो,
नोत्साद्येताशु चेत्स प्रचयमुपगतो हिन्दुधर्मं विलुम्पेत्[३] ॥७३॥

अतः सभी वर्ण के हिन्दुओं को पूर्वसंचित महापाप के क्षालन के लिये शीघ्र ही हरिजनों को अपने गले लगाना चाहिये। मन्दिर में प्रवेश करने के अधिकार की तो बात ही क्या[४] ?

## साम्प्रदायिकता-निवारण

यतीन्द्र के अनुसार देश का उत्थान करने के लिये साम्प्रदायिकता का अन्त होना चाहिये। गांधी जी का कथन है कि सभी मनुष्यों को एक ईश्वर ने पैदा किया है। इसलिये उनमें भ्रातृवत् प्रेम होना चाहिए। वे हिन्दु मुस्लिम एकता के लिये प्रयत्न करते हैं। वे २१ दिन का उपवास करते हैं और अपने प्रयत्नों से हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य सम्पादित करने में सफल होते हैं[५]।

मेलनतीर्थ-भारतम्, महिममय-भारतम् दोनों नाटक समाज की साम्प्रदायिकता की विषम भावना का उन्मूलन करने के लिये प्रेरणा देते हैं। गुरुनानक हिन्दु-मुसलमान का भेद-भाव न रखकर बाला नामक हिन्दू और मर्दाना नामक मुसलमान युवक को साथ लेकर संसार के पापों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।[६] युवक मर्दाना कहता है कि यद्यपि मैं जाति

---

१. विमल-यतीन्द्रम् ,, ७२·७३

२-५. भारत जनकम् ,, ४८, ५८    ६. मेलनतीर्थ-भारतम् २६

से मुसलमान हूँ तथापि मेरे गुरु कदापि हम लोगों में भेद-बुद्धि नहीं रखते। युवक सम्राट् अकबर हिन्दु और मुसलमान दोनों को एक समान समझते हुये दोनों के लिये कल्याणकारी कार्य करते हैं।[१] महाप्रभु मुसलमान भक्त हरिदास को गले लगाते हैं[२]। शाहजहां की पुत्री जहांनारा यमुना के सौन्दर्य की प्रशंसा करती हुई गीत गाती है[३]। नाटक के अनुसार राम और रहीम दो श्रमिक मिलकर भारत के सार्वजनिक निर्माणकार्य में रत हैं। ये दोनों गांधी जी की बन्दना करते हैं[४]। गांधी जी हिन्दु और मुसलमान दोनों को एक समान समझते हैं[५]। वे गोत गाते हैं –

रामो भवतु नाम, अथवा रहमानः कृष्णोऽथवा महादेवो रे।
वद पार्श्वनाथमथवा ब्रह्माणं सर्वं खल्विदं ब्रह्म स्वयं रे[६]।।६४।।

गांधी जी के साथ हिन्दु-मुस्लिम कन्यायें कुरान का पाठ तथा ईश्वर प्रार्थना करती हैं[७]।

विमल-यतीन्द्रम् नाटक के अनुसार रामानुज वैष्णवधर्म के प्रति आकृष्ट लचिमार नामक यवन युवती को अपने धर्म में प्रविष्ट करते हैं[८]। 'अमर-मीरम्' नाटक के अनुसार सम्राट् अकबर संन्यासी का वेष बनाकर मीरा के पास जाते हैं और कृष्ण भगवान् के लिये सोने का हार अर्पित करते हैं[९]।

इन नाटकों के अतिरिक्त 'संस्कृत-साहित्य में मुसलमानों का योगदान', 'संस्कृत कवियों के लिये मुसलमान राजाओं द्वारा दिया गया आश्रय' आदि शोधग्रन्थों की रचना करके नाटककार ने साम्प्रदायिकता की भावना को को मिटाने का प्रयत्न किया है। उनका कथन है कि साम्प्रदायिकता का विष समाज को दूषित कर देता है और उससे शीघ्र ही समाज के उदात्त तत्त्वा का ह्रास हो जाता है। अतः साम्प्रदायिकता को मिटाना चाहिये।

## अवगुण्ठन-विरोध

नाटककार ने अपने नाटकों में अवगुण्ठन (पर्दा) का विरोध करते हुये इस कुरीति के उन्मूलन का प्रयास किया है। लम्बकूर्च कहता है कि

---

१-२ मेलनतीर्थं–भारतम्, २८, २९, ३०, ३२ महाप्रभु-हरिदासन्, पृष्ठ ६४
३-४. महिममय-भारतम् ८, ११–१२
५-७. भारत-जनकम् ४६, ६१-६२
८. विमल-यतीन्द्रम् ७६-७७
९. अमर–मीरम् १२

अवगुंठन धारण करने में कोई औचित्य नहीं है। उसी प्रथा को मानना चाहिये; जिसमें सार्थकता हो[१]। यशोधरा कहती हैं कि स्त्रियों का अगुण्ठन-रहित होना युगोचित है। उनका कथन है कि सर्वत्र हाहाकार मच रहा है स्त्रियाँ घर के अन्दर कैसे बैठी रहें, अवसर आने पर उनको भी घर से बाहर निकलकर देश-हित में पुरुषों के समान अपने प्राणों का उत्सर्ग करना चाहिये।

भूयोऽपि तारस्वरेण मया उद्घोष्यते - नारीणामवगुण्ठनराहित्यं युगोचितम्। युगसन्धिक्षणे वयं जाताः। सर्वत्र नानाविधो हाहाकारो दिग्दिगन्तं व्याप्नोति, अहर्निशं च वर्धत इव। तस्मात् कथं नार्यः केवलं भवनस्य अन्तस्तिष्ठेयुः। प्रयोजने समायाते नार्योऽपि देशहिताय प्राणांस्तथा उत्सृजेयुर्यथा पुरुषाः। निरन्तरकर्मसम्पादनतत्परा दिग्दिगन्तगन्तप्रचारिण्यो नार्यः कथं वा अवगुण्ठनपरिहिताः स्युः[२]?

यशोधरा का कथन है कि स्वभाव से पवित्र नारियों को अवगुण्ठन की क्या आवश्यकता है[३]?

इस प्रकार यतीन्द्र ने नाटकों द्वारा अवगुण्ठन-व्यवहार की कुरीति को दूर करने का सन्देश दिया है। यतीन्द्र ने अपनी रचनाओं में राष्ट्र के अभ्युदय की दृष्टि से जनता को सामाजिक समस्याओं के प्रति एक अभिनव दृष्टिकोण प्रदान किया और सांस्कृतिक मानदण्डों की स्थापना की।

**संस्कृत की महनीयता**

संस्कृत का प्रचार करना यतीन्द्र के नाटकों का अन्यतम उद्देश्य था। उन्होंने अपने नाटकों में लिखा है —

नाटकसंगीतादिमाध्यमेन संस्कृतस्य भूयसा प्रचारं वयं वाञ्छामः[४]। जिस प्रकार शर्करा के साथ कड़वी औषधि पी जा सकती है, उसी प्रकार नाटक में नियोजित संस्कृत रुचिकर होगी।

नाट्ये नियोजितं चारु रोचतां संस्कृतं सदा।
सितया सह संपीतं विरसं भेषजं यथा[५] ॥५॥

यतीन्द्र के सभी नाटकों में स्थान-स्थान पर संस्कृत भाषा का महत्त्व वर्णित है।

अहो महामाहात्म्यं संस्कृतसाहित्यस्य। यद्यपि पुरा जैना बौद्धाश्च स्वस्वधर्मप्रचारणाय संस्कृतभाषां न स्वीकृतवन्तः तथापि कालक्रमेण तेऽपि

---

१-३. निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ २५ ३० ३१

५-४. महा० हरि० पृष्ठ ३, ३

भारतीयत्वात् भारतवर्षस्य शाश्वतभाषां जननीं संस्कृतभाषां स्वस्वसाहित्य-पुष्टिसंवर्धनार्थं स्वधर्ममाहात्म्यं सम्प्रचारार्थं च अङ्गीचक्रुः[१]।

यतीन्द्र की दृष्टि में एक परिवार में जिस प्रकार वृद्ध मां होती है, उसी प्रकार वृहत् परिवार के समान भारतवर्ष में वाग्देवी संस्कृत भाषा है[२]। इसी भाषा की गरिमा से हम गौरवान्वित हैं[३]। संस्कृत भाषा में एकीकरण की अद्भुत शक्ति है। इसके माध्यम से सभी के हृदय एक हृदय के समान प्रतीत होते हैं। संस्कृत भाषा के उन्नयन से जातीय ऐक्य सूत्र दृढ होता है[४]। इस भाषा के गौरव को न समझने के कारण भारत दुःखी है[५]। यतीन्द्र ने संस्कृत भाषा को जननी कहकर उसकी स्तुति की है –

संस्कृतभाषाजननि ब्रह्मेन्द्ररुद्रवरुणमनोहारिणि।
त्वं निखिलविश्वभाषाजननी सत्यरूपधारिणी[६] ॥५॥

संस्कृत भाषा सुधाधारा को प्रवाहित करने वाली है। वह सर्वपावनी है[७]

अरविन्द आंगल भाषा की निन्दा और संस्कृत भाषा की विश्व में व्यापकता की कामना करते हैं[८]। संस्कृत भाषा की महिमा के विषय में किसी को तनिक भी सन्देह नहीं है तथापि दैवदुर्विपाक से वह आज भी राजभाषा के पद पर आसीन नहीं है[९]। बहुभाषाशाली इस देश में देवभाषा संस्कृत देश की शाश्वत भाषा होनी चाहिये[१०]। जिस प्रकार मणियां एक सूत्र में बँधकर माला की शोभा को प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार संस्कृत भाषारूपी सूत्र में मणिरूपी अन्य भाषायें बद्ध होकर सुन्दर मणिमाला का रूप धारण कर सकती हैं।[११]

संस्कृत भाषा सर्वतोमुखी है। उसमें अपूर्व आनन्द है, जो हमारे मन को आनन्दित करता है। इसकी अनिर्वचनीय गंभीर वाणी है, जो विश्व प्रकृति के समान अनिर्वचनीय शान्ति देती है।

भारतवर्षस्य शाश्वतचितस्याश्रयः संस्कृतभाषा। अस्या भाषायास्तीर्थपथेन वयं देशस्य चिन्मयप्रकृतेः स्पर्शं प्राप्नुम, तं स्पर्शम् अन्तरेण गृह्णीमः। शिक्षाविषयकम् एतल्लक्ष्यं मम मनस्यासीद् दृढम्। संस्कृतभाषैव सर्वतोमुखी। तस्यामास्ते कश्चन विशेष आनन्दः, योऽस्माकं मनोनमः करोति रंजितम् अनिर्वचनीयां शान्तिं जनयति चिन्तां च करोति महिमशालिनीम्[१२]।

१-७ निष्किंचन-यशोधरम्, पृष्ठ १,३,३,३,४,४,४
८, भारत–हृदयारविन्दम्, पृष्ठ ८ ९. महा० हरि० पृष्ठ २
१०. मेलनतीर्थ-भारतम्, पृष्ठ १२ ११. शक्ति-साधनम् ;; ११
१२. भास्करोदयम् ३

# उपसंहार

बीसवींशती में संस्कृत साहित्य अनेक मनीषियों के कृतित्व से मण्डित रहा। संस्कृत के कवि तथा नाट्यकार युग की समस्या और चेतना से सम्पृक्त रहकर निरन्तर साहित्य की सर्वतोमुखी अभिवृद्धि में संलग्न रहे। इस सत्य को प्रमाणित करने के लिये स्वर्गगत डा० यतीन्द्र विमल चौधुरी की कृतियाँ पर्याप्त हैं। हमने पूर्व के अध्यायों में उनका जीवनवृत, जीवन-दर्शन, साहित्य की बहुमुखी सेवा और उसका मूल्यांकन किया है।

संस्कृत-प्रचार की आन्तरिक भावना को सफल बनाने में डा० चौधरी ने आजीवन प्रयत्नशील रहकर संस्कृत-साहित्य को विशेष रूप से समृद्ध किया है। उससे देश की परतन्त्रता का बन्धन दूर हुआ। वह युग विश्वव्यापी प्रबल सम्भावना से त्रस्त है। यतीन्द्र ने संस्कृत की परम्परा का भार वहन करते हुये अपने साहित्य में नवीन आदर्शों को प्रभावशाली रूप में उपस्थित किया। उनकी कृतियों के आधार पर हम नये निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

संस्कृत भाषा इस शैली में सर्जनात्मक साहित्य का आधार ही नहीं बनी रही किन्तु योग्यतम सिद्ध हुई है। प्रधानतः नाटकों की रचना के कारण ख्याति पाने वाले यतीन्द्र ने अपनी कृतियों से यह प्रमाणित कर दिया कि भारतीय जनता आज भी संस्कृत नाटकों के रसास्वादन का अधिकारी है।

यतीन्द्र प्रगतिशील साहित्यकार थे। उन्होंने संस्कृत-साहित्य को एक अभिनव दिशा में प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने नाटक, और अनेक काव्य विधाओं में रचना की किन्तु नाटककार के रूप में वे विख्यात हैं। संस्कृत में सामाजिक नाटक, नेताओं के जीवन चरित पर लिखे गये नाटक, स्त्रियों की महनीयता पर लिखे गये नाटक न्यून थे। यतीन्द्र ने संस्कृत साहित्य के इस अभाव को दूर किया।

महिममय-भारतम् तथा मेलनतीर्थ-भारतम् की रचना करके नाट्यकार ने यह सिद्ध किया कि संस्कृत के नाट्यकार युग की समस्याओं के प्रति

जागरूक ही नहीं, प्रत्युत उनको सुलझाने के लिये प्रयत्नशील हैं। ये रचनायें भारतवर्ष की उत्कृष्टता से विदेशियों को निर्भर करती हैं तथा भारतवासियों को देश-प्रेम और देश-भक्ति की ओर प्रेरित करती हैं।

भारत-जनकम्, भारत-राजेन्द्रम्, सुभाषसुभाषम्, देशबन्धु-देशप्रियम्, और भारत-हृदयारविन्दम् नाटक भारतीय नेताओं के आदश, त्यागपूर्ण जीवनचरित को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। इन नाटकों में नाट्यकार ने युग की समास्याओं–जातिभेद, अस्पृश्यता, और साम्प्रदायिकता को प्रस्तुत कर उनके निराकरण के उपाय हमारे समक्ष रखे हैं। हमारे नेता इन समस्याओं के प्रति जागरूक ही नहीं, अपितु उन्होंने देश-प्रेम, विश्वमैत्री, सत्य, और अहिंसा के विस्तार के लिये प्रयत्न करके अपने जीवन से आदर्श प्रस्तुत किये हैं। ये आदर्श प्रत्येक भारतीय के लिये अनुकरणीय हैं।

विमल-यतीन्द्रम् दीनदास-रघुनाथम्, महाप्रभु-हरिदास नाटकों की रचना केवल वैष्णवधर्म के प्रचार के लिए ही नहीं हुई किन्तु इन रचनाओं में भी उनका उद्देश्य जातीय उत्थान रहा है। इन के द्वारा नाटककार ने साम्प्रदायिकता और अस्पृश्यता की कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया है।

भारत-विवेकम् और विश्वविवेकम् की रचना कर यतीन्द्र ने भारत की उदात्त संस्कृति को विश्व विख्यात कर दिया। विवेकानन्द केवल भारत को ही विवेक देने वाले न होकर विश्व को विवेक देने वाले हैं। विवेकानन्द विषयक नाटक और जीवनचरित लिखकर नाट्यकार ने धर्म का सच्चा स्वरूप हमारे समक्ष रखा। विवेकानन्द, गांधी, महाप्रभु चैतन्य, और रामकृष्ण परमहंस के जीवन को प्रस्तुत कर नाटककार ने विश्व-बन्धुत्व का पाठ पढ़ाया है।

निष्किंचन-यशोधरम्, प्रीति-विष्णुप्रियम्, भक्ति-विष्णुप्रियम्, शक्ति-सारदम्, मुक्ति-सारदम्, अमर-मीरम् और भारत-लक्ष्मीः नाटकों की रचना कर नाटककार ने भारत की महिमान्वित नारियों के जीवनादर्श प्रस्तुत कर विश्व को उनके प्रति श्रद्धानत कराया है। नारियों का त्याग, हमारे देश के इतिहास में अद्वितीय है। इन नाटकों में नाटककार ने यह प्रमाणित किया है कि स्त्रियों का क्षेत्र केवल घर की चहारदीवारी तक ही सीमित नहीं

है अपितु वे सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में वे पुरुषों के साथ कार्य कर सकती हैं।

इन नाटकों में नाटककार ने हिन्दु-समाज में फैली हुई कुरीति, अव-गुण्ठन व्यवहार का विरोध किया है और नारी प्रगति का समर्थन किया है।

यतीन्द्र के सभी नाटक ऐसे आदर्श उपस्थित करते हैं, जो नवीन होते हुये भी चिरन्तन सत्य के प्रतिरूप हैं। ऐतिहय के उदात्त आदर्शों के सार हमें इन संस्कृत नाटकों में दृष्टिगोचर होते हैं।

साहित्य की शैलो की दिशा में भी यतीन्द्र ने विशिष्ट योगदान दिया है। नाटकों के कथा-संविधान में, दृश्यकल्पना में, हास्यरस के नये ढंग के संयोजन में और संलाप की सरलताओं में यतीन्द्र के नये प्रयोग प्राचीन का उल्लंघन न करते हुये नवीन के समन्वय के प्रशस्य उदाहरण प्रस्तुत करते हैं

यतीन्द्र ने अभिनय की दृष्टि से नाटकों के अंकों का दृश्यों में विघान किया है। दृश्यविधान के अतिरिक्त नाटककार ने इनमें विदूषक के हास्य का समावेश नहीं किया। यतीन्द्र ने हास्य उत्पन्न करने वाले विविध पात्रों का प्रवेश कराया है। प्रचीन नाट्य परम्परा के अनुसार यतीन्द्र ने नाटकों-में नान्दी, प्रस्तावना, नही, सूत्रधार, विष्कम्भक, प्रवेशक, भरतवाक्य आदि प्रयोग किया है।

प्राचीन नाटकों में स्त्रियां; निम्न वर्ग के लोग तथा विदूषक प्राकृत भाषा का प्रयोग करते थे। यतीन्द्र ने अपने नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग कहीं नहीं किया है, क्योंकि आजकल इसके बोलने और समझने वालों की संख्या नगण्य है।

यतीन्द्र के नाटकों में गीत तथा गेय तत्त्वों का बाहुल्य है। गीतों के समावेश से नाटकों की काव्यात्मक चारुता बढ़ गई है। प्राचीन नाटकों में कुछ श्लोकों का गान होता था, परन्तु यतीन्द्र ने मधुर गीतों की रचना कर नाटकों को अधिक प्रभावोत्पादक और मनोरंजक बनाया है।

यतीन्द्र ने प्रचलित हिन्दी पदों का संस्कृत में रूपान्तर करके तथा रवीन्द्र पद्य और द्विजेन्द्र पद्य का रूपान्तर करके संस्कृत गीत साहित्य को समृद्ध किया। अमर-मीरम् और आनन्द्र-राधम् में नाटककार ने मीरा के पदों तथा भ्रमर गीत के पदों का संस्कृत में रूपान्तर किया है। इन पदों का रूपान्तर करने से संस्कृत गीत साहित्य को वृद्धि के साथ-साथ नाटक की प्रभावोत्पादकता वढ़ गई है। लोग सरलतया इसे समझ सकते हैं।

यतीन्द्र के नाटकों में किसी स्थान पर तनिक भी अश्लीलता नहीं पाई जाती। संस्कृत नाटकों में अश्लीलता का पाया जाना नाटकों के लोकप्रिय होने में बाधक होता है। यतीन्द्र ने इस दोष को दूर किया। यतीन्द्र ने आंग्ल से रूपान्तरित संस्कृत नाटकों में भी अश्लीलता तथा श्रृंगारित दृश्यों का समावेश नहीं किया है।

नाटकों को अधिक लोकप्रिय बनाने और संस्कृत का अधिक प्रसार करने के उद्देश्य से यतीन्द्र ने कतिपय विदेशी शब्दों को संस्कृत का रूप दिया है, जैसे सुपरिण्टैण्डैंट, आलाक्जाम्दार, पुलिस, स्टेशन आदि।

यतीन्द्र ने नाटकों के माध्यम से भक्ति धर्म का प्रचार किया। उनका कथन था –

भक्तिसुखं सुखान्मुक्तेः सर्वथा हि विशिष्यते।
भक्ता मुक्तिं न वांछन्ति भक्तेस्तेषां हि याचनम्॥

महाप्रभु-हरिदासम्, पृष्ठ १४

यतीन्द्र के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी अभिनेयता है। नाटक देखने के लिये रचे जाते हैं। अतः यदि उनमें अभिनय तत्त्व सफल मात्रा में न हों तो वे व्यर्थ हो जाते हैं। यतीन्द्र स्वयं सफल अभिनेता थे। अतः इनके नाटकों में प्रचुर मात्रा में अभिनय-तत्त्व विद्यमान हैं।

यतीन्द्र के नाटकों का मुख्य उद्देश्य संस्कृत का प्रचार करना था। जो लोग संस्कृत को मातृभाषा कहकर उसकी अनुपयोगिना सिद्ध करते थे तथा जो उसकी दुरूहता के कारण उसको पढ़ना नहीं चाहते थे, यतीन्द्र ने अपने नाटकों के माध्यम से उन सबका भ्रम दूर किया। भारत तथा भारत के बाहर अपने संस्कृत नाटकों का सफल अभिनय करके उहोंने लोगों की यह धारणा दूर की कि संस्कृत मृत भाषा है। अभी भी उनके नाटकों का सफल अभिनय भारतवर्ष के विभन्न स्थानों में सफलता के साथ होता है और जनता संस्कृत का आनन्द्र उठाती है।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि आधुनिक युग में संस्कृत-साहित्य का सर्जन नहीं हो रहा है। यतीन्द्र का साहित्य उनकी इस धारणा को निमूंल बनाता है। आधुनिक युग में अनेक ऐसे प्रगयिशील संस्कृन साहित्यकार हो रहे हैं, जिवका अनुसधाव करके हमें काव्य जगत् प्रकाशित करना है।

# यतीन्द्र-साहित्य

## संस्कृत-नाटक

१. अमर -मीरम्; प्राच्यवाणी, ३, फेडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता-६, १६६५ ई०
२. अग्निमंत्रसाधनम्; अप्रकाशित, रचनाकाल १६५७ ई०
३. आनन्द-राधम्; प्राच्यवाणी प्रकाशन, कलकत्ता-६ १६६२ ई०
४. ओथेलो " १६६७ ई०
५. दीनदास-रघुनाथम् " १६६२ ई०
६. देशबन्धु-देशप्रियम् अप्रकाशित रचनाकाल १६६३ ई०
७. धृति-सीतम् " " १६६० ई०
८. निष्किंचन-यशोधरम्, प्राच्यवाणी प्रकाशन, कलकत्ता-६ १६६० ई०
६. भक्ति-विष्णुप्रियम् " १६५६ ई०
१०. भक्ति-विष्णुप्रियम् " १६५६ ई०
११. भारत-हृदयारविन्दम् " १९६१ इ०
१२. भास्करोदयम् " १६६१ ई०
१३ भारत-विवेकम् " १६६३ ई०
१४. भारत-जनकम् " १९६५ ई०
१५. भारत-राजेन्द्रम् अप्रकाशित रचनाकाल १६६३ ई०
१६. भारत-लक्ष्मीः प्राच्यवाणो प्रकाशन, कलकत्ता १६६७ ई०
१७. वेनिस्-वाणिजम् " १६६७ ई०
१८. महाप्रभु-हरिदासम् " १६६० ई०
१६. महिममय-भारतम् " १६६१ ई०
२०. मुक्ति-सारदम् " १६६७ ई०
२१. मुक्ति-यज्ञ अप्रकाशित रचनाकाल १६६० ई०
२२. मेलनतीर्थं-भारतम् प्राच्यवाणी प्रकाशन, कलकत्ता-९ १६६६ ई०
२३. रक्षक-श्रीगोरक्षम् अप्रकाशित रचनाकाल १९६३ ई०
२४. रुदित-रा म् "
२५. विमल-यतीन्द्रम् प्राच्यवाणी प्रकाशन, कलकत्ता-६ १६६२ ई०
२६. विश्वविवेकम् अप्रकाशित रचनाकाल १६६३ ई०
२७. शक्ति-सारदम्. प्राच्यवाणी, ३ फेडरेशन स्टोट; कलकत्ता-६ १६६० ई०
२८. स्वप्न-रघुवंशम् अप्रकाशित रचनाकाल १६५६ ई०
२६. सुभाप-सुभाषम् " " १६६३ ई०

## पालि-नाटक

१. बिम्बसुन्दरीप्रतिबिम्बनम् : अप्रकाशित रचनाकाल १९५९ ई०

## काव्य

१. शक्ति-साधनम्, प्राच्यवाणी, ३ फेडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता-९ १९५१ ई०
२. श्री श्री मातृलीला तत्त्वम् ;; १९५६ ई०
३. श्री श्री विवेकानन्द-चरितम् (चम्पूकाव्यम्)
स्वामी-विवेकानन्द-शतवर्ष-जयन्ती-प्रकाशनम्, कलकत्ता १९६३ ई०

## स्फुट रचना

१. संस्कृत-लिपि-शिक्षा : प्राच्यवाणी, ३ फेडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता-९ १९५० ई०

## बंगला ग्रन्थ

१. पंडित ईश्वरचन्द विद्यासागर : प्राच्यवाणी, ३ फेडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता-९ १९५० ई०
२. श्री श्री चण्डी ;; १९५० ई०
३. श्री श्री बुद्ध-यशोधरा ,, १९६३ ई०

## शोध-ग्रन्थ

### संस्कृत-ग्रन्थ

वंगीयदूतकाव्येतिहासः प्राच्यवाणी, ३ फेडरेशन स्टीट, कलकत्ता-९ १९५३ ई०

## अंग्रेजी ग्रन्थ

### प्राच्यवाणी-प्रकाशन

1. Women in Vedic Ritual (Thesis for Ph.D. 1945.
2. Contribution of women to Sanskrit Literature. 7 Vols. 1940.
3. Contribution of Muslims to Sanskrit Literature, Vol. I. 1948.
4. Contribution of Muslims to Sanskrit Litereature, Vol.II. 1954,
5. Contribution of Muslims to Sanskrit Literature, Vol. I II 1954.
6. Muslim Patronage to Sanskrit Learning, 3 Vols. 1641-46.
7. Contribution of Bengal to Smrti Literature, 3 Vols. 1941-46.
8. Historical Kavyas, 4 Vols. 1947-53.

## बंगला-ग्रन्थ

१. गौडीय वैष्णवदेर संस्कृत साहित्यें दान, प्राच्यवाणी, ३ फेडरेशन स्ट्रीट कलकत्ता-९ १९५१

२ प्रबन्धावली – ८ भाग ,, १९४५-५५ई०

## सम्पादित-ग्रन्थ

संस्कृतकाव्यसंग्रह : ७ भाग —

१. संस्तकाव्यसंग्रह भाग १, घटखर्परकाव्यम् प्राच्यवाणी ३ फेडरेशन स्ट्रीट स्ट्रीट कलकत्ता –९ १९६३ ई०

२. भाग २ चन्द्रदूतकाव्यम् १९६१ ई०

३. भाग ३ पवनांकदूतकाव्यम् १९५५ ई०

४. भाग ४ पान्थदूतकाव्यम् १९४९ ई०

५ भाग ५ भ्रमरदूतकाव्यम् १९४० ई०

६. भाग ६ वाङ्मण्डनगुणदूतकाव्यम् १९४१ ई०

७. भाग ७ हंसदूतकाव्यम् १९४१ ई०

१. मेघदूतकाव्म् १९५० ई०

संस्कृत-कोशकाव्य-संग्रह । ४ भाग —

१. संस्कृत-कोशकाव्य-संग्रह, भाग (पद्यामृततरंगिणी)-प्राच्यवाणी, ३ फेडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता १९४१ ई०

२. ,, भाग २ (पद्यवेणी) ,, १९४४ ई०

३. ,, भाग ३ (सूक्तिसुन्दर) ,, १९४३ ई०

४. ,, भाग ४ (सभ्यालंकरण) ,, १९४७ ई०

# सहायक ग्रन्थ


१. अभिनवगुप्त: अभिनव भारती, प्रकाशन–हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९६०

२. आनन्दवर्धन: ध्वन्यालोक व्या० डा० रामसागर त्रिपाठी मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, १९६३ ई०

३. उपाध्याय रामजी: संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण, बेनीमाधव, इलाहाबाद, वि० २०१८

४. कृष्णदास: हमारी नाट्य परम्परा : प्रयाग १९५६ ई०

५. गुलाबराय: काव्य के रूप : प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, १९५७ ई०

६. गुप्त मैथिलीशरण : यशोधरा, साहित्य सदन, चिरगाँव

७. गोखले, पं० कृष्ण रमाकान्त: झांसी की रानी ( लक्ष्मी बाई ) चौधरी एण्ड सन्स, बनारस सिटी, १९३९ ई०

८. चतुर्वेदी, आचार्य सीताराम : अभिनव नाट्यशास्त्र, बनारस सं २००८ वि०

९. चतुर्वेदी आचार्य सीताराम : भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, १९६४ ई०

१०. चतुर्वेदी परशुराम : मीराबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २०१२ वि०

११. चौधरी बाल्मीकि : राजेन्द्र बाबू का व्यक्तित्व, आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली—६, १९५८ ई०

१२. टोलीवाल डी० आर० : भारतवर्ष की विभूतियां, प्रेस इण्डिया पब्लिशर्स, सीतावर्डी, नागपुर, १९५४ ई०

१३. दण्डी: काव्यादर्श : व्या० रामचन्द्र मिश्र, चौखम्वा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९५८ ई०

१४. द्विवेदी हजारीप्रसाद : मृत्युंजय रवीन्द्र; हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, प्रा० लि० गिरगांव, बम्बई-४, सन् १९६३ ई०

१५. दीक्षित अप्पय : कुवलयानन्द : भोलाशंकर व्यास; चौखम्बा विद्याभवन, बनारस—१, १९५५ ई०

१६. धनंजय : दशरूपक, व्या० भोलाशंकर व्यास, चौखम्भा विद्याभवन, बनारस–१. १९५५ ई०

१७. नगेन्द्र : विचार और विश्लेषण
१८. परमार डा० श्याम : लोकधर्मी नाट्यपाम्परा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी - १९५९ ई०
१९. परमात्माशरण : भारतीय शासन और राजनीति का विकास
२०. ब्रजरत्नदास (सं०) : मीरा माधुरी, हिन्दी साहित्य कुटीर काशी, सं० २००५ वि०
२१. ब्रजरत्नदास (सं०) : भारतेन्दु गंथावली, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं २०१० वि०
२२. भरत : नाट्यशास्त्र, विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी, १९२९ ई०
२३. भरतिया, कान्तिकिशोर : संस्कृत नाटककार, प्रयाग, १९५६ ई०
२४. भट्टाचार्य, विवेक : ग्रामप्रेमी रवीन्द्रनाथ ठाकुर, १ नेताजी सुभाष रोड; दरियागंज, दिल्ली।
२५. भामह : काव्यालंकार व्या० देवेन्द्रनाथ शर्मा : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९६२ ई०
२६. मजूमदार : भारत का बृहद् इतिहास
२७. मम्मट : काव्यप्रकाश व्या० विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी १९६० ई०
२८. काव्यप्रकाश व्याख्याता डा० हरिदत्त शास्त्री, डा० श्री निवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, २०१७ वि०
२९. मिश्र, भागीरथ : काव्य-शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, १९५७ ई०
३०. मिश्र, भुवनेश्वरनाथ : मीरां की प्रेम-साधना, श्री अजन्ता प्रेस, पटना –४; १९५७ ई०
३१. राजशेखर : काव्यमीमांसा,
३२. रामपाल विद्यालंकार : क्षेमेन्द्र की औचित्य दृष्टि, १९६० ई०
३३. राजेन्द्रप्रसाद : आत्म-कथा, सत्साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली, १९५७ ई०
३४. राधाकृष्णन् : आज का भारत, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९५० ई०
३५. राधाकृष्णन् आज का भारतीय साहित्य : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
३६. रांगेय राघव : रामानुज, किताब महल, इलाहाबाद, १९५२ ई०

३७. राबर्टस्, पी० ई० : ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास
३८. वर्मा वृन्दावनलाल : झांसी की रानी, मयूर प्रकाशन, झांसी, १९५९
३९. विश्वनाथ : साहित्य-दर्पण, व्या० सत्यव्रतसिंह,
चौखाम्भा विद्या भवन वाराणसी-१, १९६३ ई०
४०. शबनम, पद्मावती : मीरां एक अध्ययन : लोक
सेवा प्रकाशन, बी २०।४७, ए. भेलूपुर बनारस, सं २००७ वि०
४१. ब्रह्मानंद : संस्कृत साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का विकास,
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९६४ ई०
४२. श्रीकृष्णलीला : मीराबाई : हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग। २००६ वि०
४३. शुक्ल, डा० भानुदेव : भारतेन्दुयुगीन हिन्दी नाट्य-साहित्य,
वाराणसी १९६२ ई०
४४. सुकुल, ललिताप्रसाद (सं०) : मीरांबाई का जीवन-चरित्र,
बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, १९५४ ई०
४५. क्षेमेन्द्र : औचित्य विचार चर्चा
४६. त्रिपाठी, डा० छबिनाथ : चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐति-
हासिक अध्ययन, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी-१ १९६५ ई०

## संस्कृत-ग्रन्थ

१. अपूर्वानन्द । वेदमूर्ति : श्रीरामकृष्ण
१६३, लोअर सरकुलर रोड कलकत्ता-१४, १९६३ ई०
२. अपूर्वानन्द : युगाचार्य विवेकानन्द
१६३, लोअर सरकुलर रोड, कलकत्ता-१४, १९६३ ई०
३. अग्रवाल हंसराज : भारतविभूतयः
शक्ति प्रकाशन-माडल टाउन लुधियाना १९६६ ई०
४. अश्वघोष : बुद्धचरितम्
५. कालिदास : मेघदूतम्
६. कुतंक : वक्रोक्तिजीवितम्
७. चौधुरी डा० रमा : यतीन्द्र-यतीन्द्रम् (अप्रकाशित)।
८. छत्रे विश्वनाथ केशव : सुभाषचरितम्

जोगलेकर-सदनम् कल्याणनगरम् ।
९. जयदेव : गीतगोविन्दम्
१०. दांड़ेकर रा० ना० (व्या०) - रसरत्नप्रदीपिका
भारतीय विद्या भवन, मुंबई १९४५ ई०
११. दीक्षित मथुराप्रसाद : काव्यकला
१२. नागराजन् के० एस० : श्रीविवेकान्दचरितम्
वि० वि० सुव्वयूया अंड संस प्रिंटर्स वंगलौर १९४७ ई०
१३. भट्ठ केदारनाथ : वृत्तरत्नाकार चौखम्भा विद्या भवन
वाराणसी २००४ वि०
१४. भवभूति : उत्तररामचरितम्
१५. मिश्र भानुदत्त : रसमंजरी हरिकृष्ण निवन्ध-भवनम् वाराणसी–१
१६. राजशेखर : विद्धशा लाभ मंजिका-सरस्वती प्रेस, कलकत्ता १९८३ ई०
१७. राव, पं० क्षमादेवों : सत्याग्रह गीता
१८. " मीरा लहरी
१९. विशाखदत्त : मुद्राराक्षसम्
२०. व्यास सोमेश्वर शर्मा : भारतीय-नवरत्न-समुच्चय
शारदा पुस्तक मन्दिर राघोगढ़ (गुना)
२१. शास्त्री वासुदेव : रवीन्द्रनाथः, शास्त्रिसदन ७९६ दक्षिण बसवा-
शोलापुर १९६१ ई०
२२. शास्त्री श्रीमदकृष्णमूर्ति : राजेन्द्रप्रसादाम्युदय;
एस० आर० पी० वर्क्स राजहमहेन्द्रो १९६२ ई०
२३. शास्त्री सूर्यनारायण : विवेकानन्दम् अजन्ता प्रिन्टर्स, सिकन्दराबाद
१९६० ई०
२४. शुक्ल भूदेव रस-विलासः; पूना ओरियण्टल बुक हाउस
३३० ए सदाशिव पूना–२
२६. हरीदास : छन्दोमंजरी चौखम्भा वाराणसो १९५९ ई०

## मराठी-ग्रन्थ

१. वर्णेकर श्रीधर : अर्वाचीन संस्कृत साहित्य १९६३ ई०

## बंगला-ग्रन्थ

१. यतीन्द्रविमल चौधुरीर उद्देश्ये श्रद्धांजलि : ब्राह्मसमाज प्रकाशन,
कलकत्ता १९६४ ई०

## ENGLISH BOOKS

1. Archer, William : The Old Drama and the New, William Hienomann Ltd., London, 1923.
2, Arun (Ed.) : Testament of Subhash Bose. Rajkamal Publication Delhi 1948.
3. Bhattacharya, Haridas : The Cultural Horitage of India, The Ramkrishna Institute of Cultture, Calcutta, 1956.
4. Burges, Dr. James : The Chronology of Modern Indis, Edinburgh, John Grant, 1913.
5. Boulton, Marjorie ; The Anatomy of Drama, Broadway House, 60-74 Carter Lane, 68-74 London.
6. Chandrasekhar, K. Shastri & V. Subrahmaniam : History of Sanskrit Literature, International Book House, Bombay, 1951.
7. Chhabra G. S. : Advance Study in the History of Modern India.
8. Clark, Barret, H. & Fredley, George (Ed.) : A History of Modern Drama, New York, 1947.
9. Das Gupta : Deshabandhu Chittarnjan Das. published by the Director, Publication Division, Delhi-8, 1960.
10, Das Gupta : Subhash Chandra, Bharat Book Agency. 206, Cornwallis Street, Calcutta, 1946.
11. Dixit, Ratanamaji Devi : Women in Sanskrit Literature. Meherchand Lachhmandas, Delhi-6.
12. Dutta, Bhupendra : Swami Vivekananda - Patriot, Prophet- Nava Bharat Publishers, 1931, Radha Bazar Street, Calcutta, 1954.
13. Eastern and Western Disciples : Life of Swami Vivekananda, Advaita Ashram, Mayavati, Almora.
14. Eaton, Jeanette : Gandhi, Fighter Without a Sword, William Morrow and Company, New York, 1950.
15. Gascoigne, Bamber : Twentieth Century Drama Hutchinson & Co., 178-202 Great Portlland Street, London W.1, 1962
16. Ghosa, M.M. : History of Indian Drama
17. Ghosh, J. C. : Bengali Literature, Oxford University Press, London, Geoffrey Cumberlege, 1948.

18. Indushekhar : Sanskrit Drama, Its Origin and Decline, Leiden; 1960.

19. Jagirdar,, R. V. : Drama in Sanskrit Literature, Bomday-7, 1947.

20. James, H. R. : Education and Statesmanship in India, Longmans Green & Co., London, 1911.

21. Keith, A.B. : History of Classical Sanskrit Literature, 1936. Y. M. C. A. Publishing House, Calcutta, 1936.

22. Keith A. B. : Sanskrit Drama, Oxford University Press. Great Britain 1954.

23. Krishnamchariar, M : History of Classical Sanskrit Literature. Motilal Banarsidas Delhi 1974

24. Lahiri, Amar : Said Sudhash Bose, The Book House, 15 College Square, Calcutta, 1947-

25. Lumley, Frederick - Trends in 20th Century drama, Rockliff Salisbury Square- London. 1956-

26 Majumdar R.C. : British Paramountcy and Indian Renaissance, Vol. X- Pt II, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay 1965-

27. Nicoll, Allardyce : The Theatre and Dramatic Theory. George G- Harrap & Go- Ltd-' 182- High Holburn- London, W-C-I-

28. Nikhilananda- Swami : Holy Mother (Life of Saradamani Devi) George Allen & Unwin Ltd. London- 1963-

29. Nikhilananda- Swami : (Translation) Ramkrishna, Prophet of New India- Published by Rider & Co,- 47- Prince Gate, London S-W-7 1951

30- Nikhilananda Swami : Vivekanada-A Biography-Ramkrishna Vivekanada Centre- New York- 1953-

31- Nivedita : The Master I Saw him- Udbodban Office- Calcutta-3. 1959-

32- Ohsawa- J.G- : The Two Great Indians in Japan- Kusa Publication- 123/1- Upper Circular Road- Calcutta-1954-

33- Priestley- J.B- : The Art of Dramatist. William Hienemann Ltd- Melbourne- London, Toronto, 1957-

34. Raghavan, V- : Number of Rasas-

35- Raghavan- V : Modern Sanskrit writings-

36- Rolland Romain : Ramkrishna – The Mangod and the Universal Gospel of Swami Vivekananda, Advaita Ashram- 4- Wellington Lane, Calcutta-13-

37- Sen Prof. Dinesh Chandra : History of Bengali Language and Literature- Calcutta Univeraity Press- 48 Hazard Road Ballygunge. Calcutta, 1954

38- Shakespeare : The Merchant of Venice

39- Shakespeare : Othello

40- Sharma, Beni Shankar : Swami Vivekananda, Oxford Book and Stationery Co. 17, Park Street Calcutta 16

41. Shastri, S.N The Laws and Practice of Sanskrit Drama, Vol. 1, Varanasi, 1961.

42- Shean, Vincent Mahatma Gandhi, Alfred A, Knopf, New York, 1955

43- Wilson, H. H. : The Threatre of the Hindus, Calcutta 1955

44. Winternitz, M. A. History of Classical Sanskrit Literature, Vol III Pt. I Delhi, 1963.

## ENGLISH JOURNALS

1- Annals of the Bhandarkar Oriental Researcuh Instt. Pune, Vol XX, parts III, IV pp 331-333.

2- Indian Historical Quarterly 1941

3- Modrn Review 1941.

4. New Indian Antiquary, 1939-1941

5- Prachyavani Calcutta 1945–1953








